

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ६३

प्रधान सम्पादक
प्रो० सागरमल जैन

श्री रामचन्द्रसूरिविरचितम्

नलविलासनाटकम्

अनुवादक
डॉ० धीरेन्द्र मिश्र

सम्पादक
प्रो० सुरेशचन्द्र पाण्डे



पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी

पार्श्वनाथ विद्यापीठ ग्रन्थमाला : ८३

प्रधान सम्पादक
प्रो. सागरमल जैन

कविरामचन्द्रसूरिविरचितं
नलविलासनाटकम्
(‘रेणुका’-हिन्दी व्याख्या)

व्याख्याकार

डॉ. धीरेन्द्र मिश्र

सम्पादक

प्रो. सुरेशचन्द्र पाण्डे

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

वाराणसी

१९९६

पुस्तक : नलविलासनाटकम्

प्रकाशक : पार्श्वनाथ विद्यापीठ
आई. टी. आई. रोड
करौंदी, वाराणसी - २२१००५
दूरभाष - ३११४६२

प्रथम संस्करण - १९९६

मूल्य - रुपये ६०.००

Book : Nalavilāsanātakam

Publisher : Parśvanātha Vidyāpītha
I.T.I. Road, Karaundi
Varanasi - 221005
Telephone - 311462

First Edition : 1996

Price : Rs. 60.00

प्रकाशकीय

संस्कृत साहित्य में 'महाभारत' की नल-दमयन्ती कथा को उपजीव्य बनाकर अनेक काव्यग्रन्थों की रचना हुई है, महाकवि श्रीहर्ष का 'नैषधीयचरितम्' महाकाव्य तो सुप्रसिद्ध है ही इसके अतिरिक्त अनेक कवियों द्वारा बहुत से काव्य नाटकादि भी लिखे गए हैं। इसका कारण नल-दमयन्ती के पावन चरित के प्रति कवियों का विशेष आकर्षण रहा है। महाभारत में नलकथा को कलिमलनाशन माना गया है—

ककौटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च ।

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ॥

वनपर्व ७९/१०

इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि नलचरित के कथन एवं श्रवण करने वाले को लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती—

ये चेदं कथयिष्यन्ति नलस्य चरितं महत् ।

श्रोष्यति चाप्यभीक्ष्णं वै नालक्ष्मीस्तान् भजिष्यति ॥

वनपर्व ७९/१५

जैन कवियों को भी नल के चरित ने विशेषरूप से आकर्षित और प्रभावित किया है क्योंकि महाभारत में वर्णित राजा नल को भी अहिंसा, सत्य, तप, क्षमा आदि गुणों से समन्वित बताया गया है—

अहिंसानिरतो यश्च सत्यवादी दृढव्रतः ।

यस्मिन् दाक्ष्यं धृतिर्ज्ञानं तपः शौचं दमः क्षमा ॥

प्रस्तुत नाटक 'नलविलास' के रचयिता रामचन्द्रसूरि हैं जिनका समय ईसा की १२वीं शताब्दी है। कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्य के ये प्रमुख शिष्य रहे हैं। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी जिनमें से ३९ ग्रन्थ ही अद्यावधि उपलब्ध होते हैं। ये केवल कवि ही नहीं आचार्य भी थे, गुणचन्द्र के साथ मिलकर इन्होंने प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय ग्रन्थ 'नाट्यदर्पण' की रचना की थी।

हिन्दी अनुवाद तथा विस्तृत भूमिका के साथ प्रकाशित यह 'नलविलास' सुधीजनों के समक्ष उपस्थित है। इसके गुण दोषों का वे ही विचार कर सकते हैं। अनुवाद और भूमिका लेखक डॉ. धीरेन्द्र मिश्र (शोध अध्येता, संस्कृत विभाग, काशी

हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी) हैं। ये संस्कृत भाषा एवं साहित्य के विद्वान् एवं उदीयमान लेखक हैं। उन्होंने यह कृति हमें प्रकाशनार्थ दी इसके लिए हम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञताज्ञापन करते हैं। आशा है उनकी लेखनी से भविष्य में भी इसी प्रकार के अनेक ग्रन्थ अनुदित होकर प्रकाशित हो सकेंगे।

ग्रन्थ का सम्पादन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष, सम्प्रति पार्श्वनाथ विद्यापीठ के प्राकृत विभागाध्यक्ष एवं संस्कृत के बहुश्रुत विद्वान् प्रोफेसर सुरेशचन्द्र पाण्डे ने किया है। इस कुशल सम्पादन के लिए हम उनके बहुत ही आभारी हैं।

सम्पादन एवं प्रकाशन में सहायक रहे हैं— डॉ. अशोक कुमार सिंह एवं डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय (प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ), वे भी अवश्य ही धन्यवाद के पात्र हैं। ग्रन्थ का प्रूफ संशोधन डॉ. जयकृष्ण त्रिपाठी (शोध सहायक) ने किया है एतदर्थ हम उन्हें भी धन्यवाद देते हैं।

उत्कृष्ट कम्पोजिंग के लिए श्री अजय कुमार चौहान, सरिता कम्प्यूटर्स एवं सुरुचि पूर्ण मुद्रण के लिए वर्द्धमान मुद्रणालय, वाराणसी के भी हम आभारी हैं।

भूपेन्द्रनाथ जैन

मानद सचिव

पार्श्वनाथ विद्यापीठ

वाराणसी

लेखकीय

संस्कृत साहित्य में नाटकों के निर्माण की परम्परा बहुत पुरानी है और आदिकाल से ही भारतीय जन-जीवन के मनोरञ्जन के लिए इन नाटकों को श्रेष्ठ माध्यम के रूप में अपनाया जाता रहा है। अभिनेय काव्य (नाटक) ही एक ऐसा काव्याङ्ग है, जिससे रङ्गमञ्च के वातावरण, पात्रों के आङ्गिक, वाचिक, आहार्य और सात्त्विक अभिनय एवं क्रिया-व्यापार के द्वारा हृदयहीन सामाजिक भी सहृदय सामाजिक की भाँति अलौकिक आनन्द का रस प्राप्त कर लेता है। संस्कृत के नाटकों की उपयोगिता का दूसरा कारण यह है कि इसमें जनभावना की प्रधानता है। संस्कृत के नाटककारों ने अपने नाटकों की कथावस्तु धर्मग्रन्थों, पुराणों या काव्यों से उधार लेकर उसको जनता की रुचि में ढालकर देश, काल और परिस्थितियों के अनुसार जन-रंजन की दृष्टि से ऐसे नाटकों की योजना की जो विद्वत्समाज तथा जनसामान्य के लिए एक जैसी उपयोगिता अर्जित कर सकते थे। स्पष्ट है कि एक काव्यकार की अपेक्षा एक नाटककार अधिक दायित्व अनुभव करता है। यद्यपि काव्यकार और नाटककार दोनों कवि हैं, तथापि दोनों में मौलिक अन्तर है। कवि की निष्ठा वर्तमान की अपेक्षा भविष्य के प्रति अधिक होती है और नाटककार के समक्ष भविष्य की अपेक्षा वर्तमान का तकाजा अधिक बलवान होता है।

भरतमुनि का कथन है कि नाट्यवेद तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है, जिसके अन्तर्गत धर्म, अर्थ, शान्ति, युद्ध, क्रीड़ा, हास्य आदि सभी बातों का समावेश रहता है। अर्थात् इसमें न केवल धर्मात्मा या ज्ञानियों की ही चर्चा रहती है या उसका निर्माण न केवल विशिष्ट वर्ग के लिए किया गया है, वरन् कामुकों के लिए कामसेवन, दुर्विनीतों के लिए निग्रह की सामग्री, क्लीबों के क्लीबत्व तथा शू-वीरों के उत्साह की भी उसमें व्यवस्था रहती है; उसमें मूर्खों की मूर्खता, विद्वानों की विद्वता, धनिकों के विलास, दुःखार्तों के लिए आश्वासन, अर्थलिप्सुओं को अर्थोपलब्धि के उपाय, आर्तजनों के लिए त्राण आदि ऐसे विभिन्न विषयों का समावेश एक साथ रहता है, जिसमें असमान प्रकृति के लोग अपने-अपने भावों तथा अपनी-अपनी रुचियों, समस्याओं एवं अवस्थाओं का पूरा चित्र अपनी आँखों से देख सकें।

वस्तुतः, मानवीय सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं की जिस अनुभूति को कवि दृश्यकाव्य के रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है, काव्य के उस भाव को स्पष्ट करना सारस्वत-साधना के बिना सम्भव ही नहीं है। और इसका सम्पूर्ण श्रेय मैं अपनी

सहधर्मिणी को देता हूँ। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैंने अपने लेखन-कार्य का मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। इसका प्रमुख कारण है कि मैं स्वयं को किसी के द्वारा बाँधी गई सीमा में समेट कर अपने भावों को संकुचित करने तथा 'परोपनीतशब्दार्थाः स्वनाम्ना कृतकीर्तयः' इस कथन से अपने आपको सर्वथा दूर रखना चाहता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्पादक पूज्यपाद गुरुवर प्रो. सुरेशचन्द्र पाण्डेय जी, जिन्होंने इसके पूर्ण होने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है, उनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ। साथ ही गुरुवर प्रो. सागरमल जैन जी (निदेशक, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी), डॉ. अशोक कुमार सिंह जी और डॉ. श्रीप्रकाश पाण्डेय जी (प्रवक्ता, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी) के प्रति भी कृतज्ञ हूँ, जिनकी सतत् प्रेरणा से यह कार्य यथाशीघ्र सम्पन्न हुआ।

मेरा पूरा प्रयास रहा है कि यह प्रथम-संस्करण सर्वातिशायी बने। तथापि प्रमाद, अनवधान, अज्ञान या अन्य किसी कारण से कुछ त्रुटि रह जाना सम्भव है। निर्मत्सर विद्वान् उन्हें सूचित करके अनुगृहीत करें।

विनीत

धीरेन्द्र मिश्र

भूमिका

रूपक (दृश्यकाव्य) इसका अर्थ है जिसका आनन्द साक्षात् नेत्रों के द्वारा भी लिया जाय। दृश्यकाव्य की परिधि में उन काव्यरूपों की परिगणना होती, जो नाट्य हों। नाट्य केवल दृश्य ही नहीं होता, श्रव्य भी होता है। आङ्गिक वाचिक, सात्त्विक और आहार्य अभिनयों के माध्यम से राम या सीता आदि की अवस्था के अनुकरण या सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं के प्रतिफलन आदि के द्वारा नाट्य को रूप प्राप्त होता है। 'नाट्य' शब्द से केवल यह अर्थ नहीं लेना चाहिए कि इसके द्वारा नायक या नायिका का रूप ही रूपायित होता है, अपितु उसका सम्पूर्ण जीवन रस आत्मलीनता की स्थिति से आस्वाद्य या अनुभवगम्य होता है। यह रस वह अलौकिक चमत्कार या चरम आनन्द है, जो नाट्य के माध्यम से आस्वाद्य होता है।

नाट्य प्राचीन भारतीय वाङ्मय का बहुत ही लोकप्रिय शिल्प रहा है। वैदिक काल में नाट्य तो नहीं, किन्तु 'नृत्त' शब्द का प्रयोग वैदिक ऋषियों द्वारा किया गया है— (क) आगमनृत्तये (ऋग्वेद १०/१८/३) (ख) नृत्ताय सूतम् (यजुर्वेद, ३०/६०)। 'नट' शब्द का प्रयोग पाणिनि द्वारा ही सम्भवतः सर्वप्रथम किया गया है। नट-सूत्रों में नाट्य का विधान था (द्रष्टव्य अष्टाध्यायी, ४/३/११०)। नृत्त और नट दोनों शब्द नृत्य और अभिनय के बोधक थे जैसा कि भारतीय नाट्यशास्त्र के सन्दर्भ ग्रन्थों से पता चलता है। 'मालविकाऽग्निमित्रम्' नाटक के आरम्भिक दो अङ्कों में कालिदास के द्वारा नाट्य शब्द का प्रयोग नृत्य और अभिनय दोनों के लिए किया गया है। इसमें मालविका ने दुष्प्रयोज्य चतुष्पदी 'छलिक' का अभिनय किया है। इसमें आहार्य अभिनय को छोड़कर शेष आङ्गिक, सात्त्विक, वाचिक अभिनय, गीत एवं नृत्य का समन्वित प्रयोग हुआ है। वस्तुतः नृत्य नाट्य का निकटवर्ती है, किन्तु नाट्य में नृत्य की अपेक्षा सर्वाङ्गपूर्णता रहती है। अभिनय के मूल में नानावस्थात्मक लोक चरित वर्तमान रहता है। इसीलिए तो नाट्य में नानाविध-रसमयता भी रहती है।

श्रव्य के साथ-साथ —दृश्य होने के कारण नाट्य को दृश्य रूप भी कहा जाता है। (रूपं दृश्यतयोच्यते- दशरूपक) अभिनवगुप्त के अनुसार नाटक शब्द नमनार्थक 'नट' शब्द से व्युत्पन्न होता है। इसमें पात्र अपने भाव को त्यागकर पर-भाव को ग्रहण करता है (अभिनवभारती, भाग ३, पृ. ८०, दशरूपक, १/७)। जिस प्रकार रूपक अलंकार में मुखादि में चन्द्रादि के आरोप द्वारा एक सौन्दर्य-विशेष का अनुभव होता है, उसी प्रकार नट में राम आदि की अवस्था का आरोप होता है, इसलिए नाट्य को रूपक शब्द से भी अभिहित किया जाता है—

‘यथा मुखादौ पद्मादेरारोपोरूपकं मतम्।
तथैव नायकारोपो नटे रूपकमुच्यते ॥

मन्दारमरन्दचम्पू, पृ. ५९।

रूपक, नाट्य, अभिनेय और नाटक शब्द भी दृश्य काव्यों के लिए प्रचलित रहे हैं। नाट्य से मानवीय सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं का अनुभावन करते हैं। इस प्रकार नाट्य और रूपक दोनों ही एक दूसरे के अत्यन्त निकट हैं। धनञ्जय के अनुसार इनका प्रयोग पर्यायवाची शब्द के रूप में होता है। वास्तविकता तो यही है कि रूप, रूपक, नाट्य और अभिनेय आदि सभी शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में दृश्य-काव्य के लिए ही होता है।

नाटक— नाटक रूपकों में प्रधान है। नाटक के मूल में मनुष्यमात्र की सुख-दुःखात्मक संवेदनाएँ वर्तमान रहती हैं—

‘नृपतीनां यच्चरितं नानारसभावसंभृतं बहुधा ।
सुखदुःखोत्पत्तिकृतं भवति हि तत्राटकं नाम ॥

नाट्यशास्त्र, १९/१२।

अभिनेय काव्य के समुदाय में से मुख्य धर्मादिपुरुषार्थचतुष्टय में प्रवृत्त, उपदेश योग्य राजा आदि को शिक्षा प्रदान करने वाला होने से नाटक अन्य नाट्य प्रकारों से अलग है। नाना प्रकार के सौन्दर्य द्वारा सहृदय के हृदय को जो आनन्दातिरेक से नचाता है, उसे नाटक कहते हैं—

‘नाटकमिति नाटयति विचित्रं रञ्जनाप्रवेशेन सम्यानां हृदयं नर्तयतीति नाटकम्
(नाट्यदर्पण, पृ. १७४)।

नाटक की यह भी विशेषता है कि नाटक प्रधान पुरुषार्थ में राजा अर्थात् मुख्य नायक और उसके अङ्गरूप में अमात्यादि बहुतों को व्युत्पन्न करने वाला होता है। अतः इनसे भिन्न कुछ ही को व्युत्पत्ति प्रदान करने वाले प्रकरणादि ‘नाटक’ नहीं हो सकते। यद्यपि कथादि भी श्रोताओं के हृदय को प्रसन्न करते हैं, किन्तु वे उपाय, अङ्क, सन्धि आदि वैचित्र्य के न होने से इतने आनन्ददायक नहीं हो सकते। अतः इन्हें नाटक भी नहीं कहा जा सकता है।

नाटक की सर्वाङ्गपूर्णता— धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिविध फलों वाला अङ्क, उपाय, दशा, सन्धि से युक्त, देवता आदि जिसमें प्रधान नायक के सहायक हों, इस प्रकार का पूर्व काल के प्रसिद्ध राजाओं के चरित से युक्त नाटक होता है—

‘ख्याताद्यराजचरितं धर्मकामार्थसत्फलम् ।
साङ्गोपाय-दशा-सन्धिदिव्याङ्गैः तत्र नाटकम् ॥’

नाट्यदर्पण, १/३।

नाटक-विवेचन में भरतमुनि ने स्पष्ट कर दिया है कि लोक के सुख-दुःख से समुत्पन्न अवस्था तथा नाना पुरुषों के जीवन की घटनाओं का चित्रण नाटक में होता है—

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः ।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते ॥

नाट्यशास्त्र १/११९

नाटक में इतिहासादि में प्रसिद्ध चरित का ही नट के द्वारा अनुकरण किया जाता है। अर्थात् अवस्थाओं का अनुकरण ही ‘नाट्य’ है—

‘अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्.....। दशरूपक १/७

इसमें समस्त ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला और कर्म का योग होता है—

‘न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न तत्कर्म न योगो वा नाटके यन्न दृश्यते ॥’

नाट्यशास्त्र १/११६

कैशिकी, सात्वती, भारती, आरभटी वृत्तियाँ नाट्य की मातृरूपा होने से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। लेकिन यह आवश्यक नहीं कि नाटक में चारों वृत्तियाँ हों, इनमें से एक या दो या तीन या सभी हो सकती हैं—

‘सर्वास्तु वृत्तयस्तत्र सर्वे तत्र तथा रसाः।’

विष्णुधर्मोत्तर पुराण, ३/७/९।

‘मुद्राराक्षस’ में कैशिकी वृत्ति नहीं है तथा ‘वेणीसंहार’ में केवल सात्वती और आरभटी वृत्तियाँ हैं। नाट्य इतिवृत्त को सुशृङ्खल एवं सरस बनाने के लिए मुख, प्रतिमुख आदि पाँच सन्धियों सहित सन्ध्यङ्गों की योजना अत्यन्त ही आवश्यक है। प्रत्येक सन्ध्यङ्ग की योजना हो यह आवश्यक नहीं, अपितु (कथावस्तु) इतिवृत्त को ध्यान में रखकर। केवल काव्य के शास्त्रीय पक्ष को पूरा करने के लिए सभी सन्ध्यङ्गों का प्रयोग उचित नहीं। साथ ही, अवस्था, अर्थप्रकृति अर्थोपक्षेपक से युक्त नाट्य-इतिवृत्त का निबन्धन करना कवि का कर्तव्य है। इतिवृत्त का विभाजन अङ्कों में करना चाहिए।

धर्मस्वरूप कुछ कार्य विधिरूप होते हैं, जिनका हमें पालन करना होता है, दूसरे कार्य निषेध रूप होते हैं जिनका आचरण करना निषिद्ध होता है। नाटक में विधिरूप कार्यों का प्रतिपादन होता है। जैसे— सत्य, दया त्याग, परोपकार आदि का आचरण। जो निषेधपरक कार्य है— जैसे— सब व्यापारों से उपरति आदि इनको नाटक का प्रतिपाद्य विषय नहीं बनाया जा सकता, क्योंकि इनका फल लोक में साक्षात् नहीं देखा जाता है। इसलिए जिन कार्यों के प्रदर्शन से सामाजिक को साक्षात् फल का दर्शन न हो उस प्रकार के कार्य नाटक में ग्राह्य नहीं हैं।

नाटक के विधि-निषेध के प्रसंग में भरत मुनि ने नाटक के नायक के विषय में कहा है— नाटक में नायक राजर्षि हो और उसके उच्च वंश का चरित वर्णित हो। राजर्षि शब्द पर विचार करते हुए अभिनवगुप्त ने प्रतिपादित किया है कि नाटक का नायक जीवित राजर्षि नहीं हो सकता। **अभिनवभारती** में उद्धृत एक अज्ञात आचार्य के मत में चन्द्रगुप्त और बिन्दुसार आदि समसामयिक राजा नायक हो सकते हैं। अभिनवगुप्त के अनुसार मर्त्यचरित की प्रधानता नाटक में रहती है, परन्तु देवचरित का भी वर्णन किया जा सकता है। भरत मुनि का दिव्यपात्र से अभिप्राय है ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, इन्द्र, वरुण और कामदेव आदि देवता (**नाट्यशास्त्र**, १८/१०-१६, पर **अभिनवभारती**)। धनञ्जय ने नाटक में दिव्यपात्र का भी नायक होना स्वीकार किया है।

परन्तु नाटक में दिव्यपात्र का प्रधान नायक होना उचित नहीं। नाटक का प्रधान उद्देश्य है यह उपदेश देना कि राम के समान आचरण करना चाहिए रावण के समान नहीं। अभिनवगुप्त के अनुसार दिव्यपात्र को नायक मानने में यह कठिनाई होगी कि मर्त्यचरित न होने के कारण उन सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं का सामाजिक में प्रतिफलन नहीं होगा। दिव्यपात्रों में दुःख का अभाव होता है। अतः दिव्यपात्र को नायक स्वीकार करने से नाट्य में दुःख दूर करने के लिए प्रतिकार भी नहीं होगा। दिव्यपात्र तो अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न होते हैं। अलौकिक-शक्ति-सम्पन्न होने के कारण देवताओं को दुष्प्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति इच्छा मात्र से हो जाती है। उनके चरित के अनुसार आचरण सम्भव न होने से वह मनुष्यों के लिए उपदेश योग्य नहीं हो सकता। अतः नाटक का नायक दिव्य नहीं, मर्त्य होता है।

नाटक में ऐसे इतिवृत्त का विधान नहीं करना चाहिए जो प्रधान नायक के चरित का और रस का अकर्षक हो। यदि वह वस्तुतः यथार्थ हो तो भी उसकी अन्यथा रूप से कल्पना कर लेनी चाहिए। (द्रष्टव्यः **दशरूपक**, ३/२४-२५, **नाट्यदर्पण**, १/१८)। यथा धीरललित नायक का परस्त्री-सम्भोग अनुचित है और उसमें धीरोद्धतत्व के गुण-स्वभाव का वर्णन विरुद्ध है। अतः दोनों परित्याज्य हैं। इसी प्रकार प्रत्यक्ष बोध्य आलिङ्गन, चुम्बन शृङ्गार रस के लिए उचित नहीं है। तथा बीभत्स रस

का वर्णन शृङ्गार रस के विरुद्ध है। नाटककार उसकी योजना चरित्र-चित्रण अथवा रस के अनुकूल करे या मूलवृत्त के उस अंश को छोड़ ही दे। जैसे— इसी 'नलविलास' में धीरोदात्त नायक के लिए बिना दोष के सहधर्मिणी का परित्याग अनुचित है। इसलिए कापालिक के प्रयोग के कारण नल ने दमयन्ती का परित्याग किया है। मायुराज ने 'उदात्तराघव' में राम के छल से बालि-बध की घटना को छोड़ दिया। भवभूति ने 'महावीरचरित' में इस घटना को इस प्रकार परिवर्तित कर दिया कि सुग्रीव से मित्रता के कारण जब बालि राम के वध के लिए आता है, तब राम उसे मारते हैं।

अलंकारादि का भी समुचित प्रयोग ही करना चाहिए। अलंकारादि के वर्णन द्वारा प्रधान रस को तिरोहित नहीं करना चाहिए। इससे प्रधान रस का उच्छेद हो जायेगा जो रसास्वाद में बाधक है। पहले कहा जा चुका है कि शृङ्गार और बीभत्स में नैरन्तर्य-निमित्त विरोध है। एक काल में शृङ्गार और बीभत्स परस्पर विरोधी हैं। अतः किसी अन्य रस के व्यवधान से ही इनके विरोध का परिहार किया जाता है—

'रसान्तरेणान्तरितो नैरन्तर्येण यो रसः। काव्यप्रकाश, ७/६४।

नाटक का विभाजन अङ्कों में होना चाहिए अङ्क पाँच से दश तक ही हों, अधिक होने पर वे महानाटक होंगे। जैसे— **हनुमानाटक**। इसके अतिरिक्त इतिवृत्त की सुशृङ्खलता के लिए प्रवेशक और विष्कम्भक की योजना करनी चाहिए। युद्ध-राज्य-भ्रंश, मरण, नगरोपरोध आदि का वर्णन केवल सूच्य होने से प्रवेशकादि के माध्यम से प्रस्तुत करना चाहिए। प्रधान नायक का वध प्रवेशकादि के माध्यम से भी कभी प्रस्तुत नहीं करना चाहिए। फल की इच्छा से प्रधान नायक का युद्ध से पलायन, सन्धि आदि नाटक में प्रदर्श्य हैं—

'बन्धः पलायनं सन्धिः योज्यो वा फललिप्सया।। नाट्यदर्पण, १/२१।

अङ्कों में अधिक पात्रों का भी वर्णन वर्जित है। जैसे— सेतुबन्ध आदि में। नाटकीय घटनाओं की समाप्ति गोपुच्छाग्र की भाँति होनी चाहिए।

नाटक की भाषा सरल, सुबोध अर्थात् मृदुललित पदाढ्य, गूढ़शब्दार्थ से रहित और जनपद सुखबोध्य होनी चाहिए। जैसे— कमण्डलधारी सन्यासियों से घिरी वेश्या अशोभनीय होती उसी प्रकार क्लिष्ट भाषायुक्त नाटक अशोभन मालूम पड़ता है—

'तदेवं लोकभावानां प्रसमीक्ष्य बलाबलम् ।

मृदुशब्दं सुखार्थं च कविः कुर्यात्तु नाटकम् ।।

चेत्क्रीडिताद्यैः शब्दैस्तु काव्यबन्धा भवन्ति ये।

वेश्या इव न शोभन्ते कमण्डलुधरैर्द्विजैः ।।

नाट्यशास्त्र, २१/१३१-३२।

इसलिए नाटक में चूर्णक गद्य का प्रयोग ही उचित एवं श्लाघनीय है।

उक्त नाटकीय लक्षणों से समन्वित प्रस्तुत कृति 'नलविलास' नाटक है। 'नलविलास' नाटक की कथावस्तु का उपजीव्य महाभारत के वनपर्व में वर्णित नलोपाख्यान है। महाभारत में वर्णित नलोपाख्यान बहुत विस्तृत है अतः उसे यहाँ संक्षिप्तरूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

'निषधाधिपति वीरसेन के पुत्र का नाम नल था। राजा नल सर्वगुण सम्पन्न, रूपवान्, अश्वविद्या में पण्डित, ब्राह्मणों के पूजक, वेदज्ञ, द्यूतक्रीड़ा के प्रेमी, सत्यवादी, अनेकों अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी और श्रेष्ठ स्त्रियों के प्रिय, उदार, इन्द्रियजित्, रक्षा करने वाले, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ साक्षात् मनु के समान थे।'

दूसरी तरफ विदर्भदेश के महापराक्रमी शूरवीर, सर्वगुण सम्पन्न राजा भीम को दमन नामक महर्षि की कृपा से एक कन्या रत्न दमयन्ती और महायशस्वी एवम् उदार दम, दान्त और दमन नामक तीन पुत्र हुए। रूप, तेज, यश, लक्ष्मी और सौभाग्य से लोक में विख्यात, युवावस्था में सैकड़ों दासियाँ और सखियों से इन्द्राणी की तरह घिरी हुई वह दमयन्ती लक्ष्मी के समान शोभित होती थी।'

साक्षात् कामदेव सदृश, पुरुषों में श्रेष्ठ पृथिवी पालक राजा नल के सामने दमयन्ती के रूप-सौन्दर्य का तथा दमयन्ती की सखियाँ दमयन्ती के आगे राजा नल के रूप का वर्णन करती थीं, फलस्वरूप बिना देखे ही नल और दमयन्ती का परस्पर प्रेमानुराग बढ़ने लगा। कामबाण की पीड़ा को सहने में असमर्थ राजा नल रनिवास के समीप उद्यान में अकेले रहने लगे। वहाँ स्वर्ण-पंखों वाले हंसों को देखकर— उसमें से एक हंस को उन्होंने पकड़ लिया। नल द्वारा पकड़ लिए जाने पर उस हंस ने नल से कहा कि हे राजन्! मैं आपका अति प्रिय कार्य सिद्ध करूँगा अतः आप मुझे न मारें। मैं यहाँ से जाकर दमयन्ती के समक्ष आपकी इस प्रकार से प्रशंसा करूँगा कि वह दमयन्ती आपको छोड़कर किसी अन्य पुरुष का वरण ही नहीं करेगी। राजा ने हंस की उक्त बात को सुनकर उसे छोड़ दिया। तब वे सभी हंस उड़ते हुए विदर्भ देश जाकर दमयन्ती के समीप पहुँचे। जिन्हें देखकर सखियों से घिरी हुई दमयन्ती उन अद्भुत रूपवाले हंसों को पकड़ने के लिए दौड़ी। पकड़ने की इच्छा वाली दमयन्ती को जब एक हंस ने अपने पास देखा तो वह मनुष्यों की वाणी में नल के रूप सौन्दर्य का वर्णन करने लगा। और बोला कि यदि तुम उस पुरुष श्रेष्ठ नल की स्त्री बन जाओ तो तुम्हारा यह जन्म और रूप दोनों सफल हो जाएँ। क्योंकि मैंने सब देवों, गन्धर्वों, सर्पों और राक्षसों को देखा है, परन्तु 'नल' जैसा सुन्दर पुरुष मैंने पहले

१. महाभारत, गीताप्रेस गोरखपुर, छठा संस्करण, वि. सं. २०५१, वनपर्व ५३/१-४।

२. महाभारत, वनपर्व ५३/५-१२।

कभी नहीं देखा। तुम भी स्त्रियों में रत्न हो और नल भी पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, उत्तम से उत्तम ही का संयोग विशेष गुण युक्त होता है। हंस मुख से नल के रूप सौन्दर्य और गुणों को सुनकर वह दमयन्ती हंस से बोली कि हे हंस! तुम जाकर पृथिवीपालक नल से भी इसी प्रकार से कहो। इतना सुनकर उस हंस ने दमयन्ती के पास से उड़कर राजा नल से सब बात कही।^१

इसके बाद राजा नल में आसक्त हृदय वाली, दीन-अवस्था को प्राप्त हुई दमयन्ती की सखियों के मुख से अपनी पुत्री की शोचनीय अवस्था को सुनकर राजा भीम ने समस्त राजाओं को निमन्त्रण दिया और कहला भेजा कि हे वीर लोगो! दमयन्ती के स्वयंवर में आकर आप लोग आनन्द का अनुभव करें। तत्पश्चात् सभी राजा दमयन्ती के स्वयंवर के विषय में सुनकर भीम की आज्ञा के अनुसार हाथी, घोड़े और रथों के शब्दों से पृथिवी को गुञ्जायमान करते हुए तथा विचित्र मालाओं को धारण करने वाले, उत्तम रीति से सजे धजे होने के कारण सुन्दर दिखाई देने वाले सैनिकों से घिरकर दमयन्ती के स्वयंवर में पधारे। दमयन्ती के स्वयंवर-वृत्तान्त को जानकर नारद और पर्वत घूमते हुए इन्द्रलोक पहुँचे। वहाँ इन्द्र ने दोनों का विधिवत् आतिथ्य सत्कार करके कुशल-क्षेम के प्रसङ्ग में नारद से पूछा— हे नारद! जो क्षत्रिय धर्मज्ञ, पृथिवी के स्वामी, प्राण देकर भी युद्ध करने वाले हैं, जो समय पर युद्ध में बिना पीठ दिखाये शस्त्र से मृत्यु को प्राप्त होते हैं, यह लोक जिस तरह मेरे लिए अक्षत और कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, उसी प्रकार उनके लिए भी है। उन अपने प्रिय शूरवीर क्षत्रियों को जो अतिथि होकर मेरे यहाँ आते थे, आजकल नहीं देखता हूँ, वे सब शूरवीर क्षत्रिय कहाँ हैं?^२

^३इन्द्र के वचन को सुनकर नारद मुनि ने अपने रूप-सौन्दर्य से पृथिवी की समस्त स्त्रियों को पराजित करने वाली दमयन्ती का स्वयंवर-वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि उसे प्राप्त करने की इच्छा से समस्त राजा और राज-पुत्र विदर्भदेश को जा रहे हैं। नारद के मुख से दमयन्ती स्वयंवर का वृत्तान्त सुनकर उस स्वयंवर में जाने की प्रबल इच्छा वाले अग्नि, वरुण तथा यम ने इन्द्र के साथ अपने-अपने उत्तम वाहनों पर आरूढ़ होकर विदर्भदेश के लिए प्रस्थान किया। किन्तु मार्ग में साक्षात् कामदेव की रूप सम्पत्ति को धारण करने वाले, सूर्य के समान तेजस्वी नल के रूप से विस्मित होकर देवों ने अपने-अपने विमानों को अन्तरिक्ष में छोड़कर पृथिवी पर आकर नल से अपनी सहायता करने के लिए नल को अपना दूत बनने के लिए कहा। नल द्वारा

१. महाभारत, वनपर्व ५३/१३-३१।

२. महाभारत, वनपर्व ५४/१-१८।

३. महाभारत, वनपर्व ५४/२०-३१।

उक्त कार्य हेतु दूत बनने की प्रतिज्ञा करने पर देवों ने अपना परिचय दिया और कहा कि दमयन्ती से जाकर आप कहिए कि वह दमयन्ती हममें से किसी एक को अपने पति रूप में वरण कर ले। पश्चात् नल ने इन्द्र से यह वरदान प्राप्त कर कि— “आपको वहाँ प्रवेश करते समय कोई नहीं देख सकता” ‘तथास्तु’ कहकर देवों के वचन को स्वीकार करके दमयन्ती के प्रासाद में गया।

वहाँ अन्तःपुर में अपने समक्ष उपस्थित नल को देखकर मन में विभिन्न प्रकार से विचार करती हुई दमयन्ती ने नल से पूछा— हे पापरहित! हे उत्तम शरीरवाले! हे मेरे काम को बढ़ाने वाले! यहाँ देवता के समान आप आये हैं, आप कौन हैं? यह मैं जानना चाहती हूँ। क्योंकि यहाँ आते हुए आप को किसी ने क्यों नहीं देखा?^१

दमयन्ती के वचन को सुनकर नल ने कहा— हे कल्याणि! मुझे नल समझो। मुझे देवताओं ने तुम्हारे पास भेजा है। वे देव तुम्हें प्राप्त करना चाहते हैं। अतः तुम इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम में से किसी एक देव का अपने पति रूप में वरण करो।^२

उक्त वचन को सुनकर देवताओं को श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर दमयन्ती नल से कहने लगी कि— हे राजन्! आप ही मुझसे विवाह कीजिए। हंसों ने आपके विषय में जो भी प्रशंसात्मक वचन कहे थे, वह मुझे जला रहे हैं। मैंने केवल आप ही को बुलाने की इच्छा से इन सब राजाओं को बुलाया है। यदि आपको भजने वाली मुझको ग्रहण करने से आप विरत होंगे, तो मैं आपके कारण, विष, अग्नि, जल अथवा रस्सी के प्रयोग से मर जाऊँगी।^३

यह सुनकर नल ने कहा हे दमयन्ति! महात्मा ईश्वर लोकपालों की चरणधूलि के समान भी मैं नहीं हूँ। अतः उन्हीं लोकपालों में तुम्हें अपने चित्त को लगाना चाहिए। क्योंकि देवताओं का अप्रिय करने वाला पुरुष नष्ट हो जाता है; अतएव तुम मेरी रक्षा करो, किसी देवता को ही पति चुन लो। यह सुनकर आंसुओं के कारण गद्गद हुई वाणी का उच्चारण करती हुई दमयन्ती नल से कहने लगी कि— हे नरनाथ! मैंने एक आपत्तिरहित उपाय सोचा है, मेरा जहाँ स्वयंवर हो वहाँ अग्नि आदि देवताओं के साथ आप भी जायें तब सब लोकपालों के आगे मैं आपको वरूँगी, ऐसा करने से आपको कुछ भी दोष नहीं होगा। यह सुनकर राजा नल पुनः देवताओं के पास गये और उन देवताओं को दमयन्ती के मनोगत अभिप्राय को कह सुनाया। और बोले कि हे देवो! अब आप लोगों की जो इच्छा हो, वह करें।^४

१. महाभारत, वनपर्व ५५/१-२१।

२. महाभारत, वनपर्व ५५/२२-२५।

३. महाभारत, वनपर्व ५६/१-४।

४. महाभारत, वनपर्व ५६/५-३१।

इसके बाद शुभकाल, पवित्र मुहूर्त और तिथि में राजा भीम ने समस्त राजाओं को स्वयंवर सभा में बुलाया। उस स्वयंवर सभा में वे सभी राजगण उसी प्रकार शोभित हो रहे थे जैसे अन्तरिक्ष में तारागण शोभायमान होते हैं। तत्पश्चात् अनन्त सुन्दर मुखवाली दमयन्ती अपने रूप और लावण्य से राजाओं के नेत्र और मन को आकृष्ट करती हुई राजसभा में आई, जिसे देखकर सभी राजगण उसकी अनुपम कान्ति को अपलक नेत्रों से देखने लगे। इसके बाद सभा में बैठे हुए राजाओं के नाम और कुलों का वर्णन होने के पश्चात् दमयन्ती ने समान रूप, गुण और आकृति वाले पाँच पुरुषों को सभा में बैठे देखा, जो सभी नल के समान ही थे। जिसे देखकर दमयन्ती व्याकुल हो गई और वाणी तथा मन से देवताओं को नमस्कार करके कांपते हुए स्वर में कहने लगी मैंने जिस समय से हंसों की वाणी सुनी थी, तभी से निषधदेश के राजा नल को पति बनाने का सङ्कल्प किया था। मैंने यदि मन और वाणी से भी कभी व्यभिचार की इच्छा न की हो, तो मेरे सत्य के प्रताप से मुझे देवता नल को बतला दें। तथा देवराज इन्द्र के साथ लोकपाल अपने-अपने रूप को धारण कर लें, ताकि मैं पुण्यकीर्ति वाले राजा नल को पहचान लूं। तब देवताओं ने दमयन्ती में उस शक्ति को उत्पन्न कर दिया जिसके कारण वह दमयन्ती देवताओं को और पुण्ययश वाले राजा नल को पहचानकर अति सुन्दर माला को नल के कंधे पर डाल दिया और उसे अपने पति के रूप में चुन लिया। यह देख अन्य राजा अचानक हा हा करते हुए कोलाहल करने लगे और महर्षि तथा देव आश्चर्यचकित हो 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा' कहते हुए नल की प्रशंसा करने लगे और प्रसन्न होकर नल को वरदान दिया और अपने लोक को चले गये। जिसके कारण नल के वश में अग्नि तथा जल ही गये साथ ही वे अन्न के उत्तम रस के मर्मज्ञ हो गये। तदनन्तर राजा नल सुखपूर्वक दमयन्ती के साथ विहार करने लगे।^१

उधर दमयन्ती से विवाह करने का इच्छुक कलियुग द्वापर के साथ विदर्भदेश को आ ही रहे थे कि मार्ग में इन्द्रादि देवों ने कलियुग से कहा कि आप द्वापर के साथ कहाँ जा रहे हैं, तो कलियुग ने अपनी इच्छा इन्द्र से बताई। यह सुनकर इन्द्र बोले कि वह दमयन्ती तो हम लोगों के सामने पृथिवी पालक नल को अपना पति वरण कर चुकी है। अतः आपका वहाँ जाना व्यर्थ है। इतना सुनते ही कलियुग क्रोधित हो गया और देवताओं से कहने लगा— हे लोकपालो! आप लोगों के समक्ष दमयन्ती ने एक मनुष्य को पति बनाया है अतः उसको कठिन दण्ड देना ही न्यायोचित है। कलियुग की बात सुनकर देताओं ने उसे समझाया और तत्पश्चात् अपने लोक को चले गये। किन्तु अत्यन्त कुपित कलियुग ने द्वापर से कहा कि नल पर जो मेरा क्रोध

१. महाभारत, वनपर्व ५७/१-२७।

२. महाभारत, वनपर्व ५७/२८-४२।

उत्पन्न हुआ है उसे मैं नहीं रोक सकता अतः आप पासों में प्रविष्ट होकर मेरी सहायता कीजिए जिससे मैं उसके राज्य का नाश कर दूंगा फलस्वरूप वह दमयन्ती के साथ सुख-उपभोग नहीं कर सकेगा।^१

इस प्रकार द्वापर से सहायता करने की प्रतिज्ञा करवाकर वह कलियुग नल से प्रतिकार लेने हेतु उसमें छिद्र होने की अभिलाषा से निषधदेश में १२ वर्षों तक घूमता रहा। बारह वर्ष व्यतीत हो जाने के बाद कलियुग ने देखा कि एक दिन नल ने मूत्र-त्याग करके बिना पैर धोये आचमन करके सन्ध्योपासन किया। जिसे देख कलियुग नल के शरीर में प्रवेश कर गया तथा दूसरे रूप से नल के भाई पुष्कर को अनेक प्रकार से प्रलोभन देकर “घूतक्रीड़ा में तुम मेरे प्रभाव से नल को निश्चित पराजित करोगे” ऐसा कहकर राजा नल के साथ जुआ खेलने के लिए तैयार किया। तत्पश्चात् पुष्कर द्वारा बार-बार प्रेरित किये जाने पर राजा नल उसके साथ घूतक्रीड़ा के लिए प्रवृत्त हो गये। कलि के प्रभाव से बार-बार मना किये जाने पर भी राजा नल को घूतक्रीड़ा से विरत होते न देखकर किसी महान् अनिष्ट की आशङ्का से विह्वल हुई दमयन्ती ने सारथि को बुलाकर अपने पुत्र एवं पुत्री दोनों को कुण्डिन नगरी भेज दिया। नल घूतक्रीड़ा में निमग्न हुए क्रमशः अपनी सभी सम्पत्ति हार गये। उधर नल के राज्य भ्रंश से शोकाकुल उनका सारथि वाष्णेय अयोध्या नगरी जाकर वहाँ के राजा के यहाँ सारथि की नौकरी करने लगा।^२

इस प्रकार समस्त राज्य आभूषणादि से रहित एक मात्र धोती पहनकर पृथिवी पालक राजा नल, एक ही वस्त्र पहने हुए अपने पति नल का अनुगमन करने वाली, दमयन्ती को साथ लेकर तीन दिन नगर के बाहर रहे।

पुष्कर के इस आदेश के कारण कि, जो नल के साथ अच्छा वर्ताव रखेगा, वह मेरे द्वारा मार डाला जायेगा, किसी नगर निवासी ने नल का सत्कार नहीं किया। वन में दमयन्ती के साथ घूमते हुए बहुत दिनों के बाद भूख से अत्यन्त व्याकुल नल ने वृक्ष के ऊपर स्वर्ण तुल्य पंख वाले पक्षियों को देखकर अपने मन में यह विचार करते हुए, कि ये पक्षी हमारे भक्ष्य भी होंगे और धन की भी प्राप्ति होगी, अपनी धोती खोलकर उन पक्षियों के ऊपर फेंकी। हतभाग्य वाले उस नल के धोती को वे पक्षी आकाश में लेकर उड़ गये और उस नङ्गे, दीन, नीचे मुख करके पृथिवी पर बैठे हुए नल से कहने लगा^३—

-
१. महाभारत, वनपर्व ५८/१-१३।
 २. महाभारत, वनपर्व ५९-६०।
 ३. महाभारत, वनपर्व ६१/१-१४।

रे दुर्बद्धे! तेरे वस्त्र को हरकर ले जाने की इच्छा करने वाले हम वे ही पासे हैं, जिनको तुमने खेला था, तुमको वस्त्रसहित जाते देखकर हम प्रसन्न नहीं थे। यह कहकर वह पासे अदृश्य हो गये। पासों को अदृश्य होते और अपने को नङ्गा देखकर उत्तम यशस्वी राजा नल दमयन्ती से कहने लगे कि हे दमयन्ति! जिन पासों के भय से किसी भी निषध नगर के निवासी ने मेरा सत्कार नहीं किया, वे ही पासे आज पक्षी होकर मेरा वस्त्र भी छीन लिये जा रहे हैं। मैं अति-कठोर आपत्ति को प्राप्त होने के कारण दुःखी होकर मुर्च्छित-सा हुआ जा रहा हूँ। मैं तुम्हारा पति हूँ अतः मैं जो कुछ कहता हूँ, उन अपने लिए हितकारी मेरे वचनों को सुनो— ये अनेक मार्ग ऋक्षवान् पर्वत और अवन्ती को पार करके दक्षिणापथ को जा रहे हैं। यही समुद्र में जाने वाली पयोष्णी नदी और महान् पर्वत विन्ध्याचल है। फल और फूलों से भरे हुए ये ऋषियों के आश्रम हैं। यह मार्ग विदर्भदेश को जाता है और यह कोसलदेश का मार्ग है इसके आगे दक्षिणदेश है और यह दक्षिण का मार्ग है।

नल के उक्त वचन को सुनकर अत्यन्त व्याकुल हृदय वाली दमयन्ती दीनता से भरे वचन में कहने लगी— नाथ! आपके संकल्प का बार-बार विचार करके मेरा हृदय घबड़ाता है और सभी अङ्ग शिथिल हुए जाते हैं। हे महाराज! राज्यहीन, वस्त्रहीन और धन से हीन, भूख और श्रम से पीड़ित आपको इस निर्जन स्थान में अकेला छोड़कर मैं कैसे चली जाऊँ? साथ ही इस घोर वन में चलते-चलते जब आप थक जायेंगे, भूख, प्यास और चिन्ता से व्याकुल होंगे, तब मैं आपके सुख के निमित्त आपके परिश्रम को दूर करूँगी। मैं आपसे सत्य कहती हूँ, कि वैद्यों के मत में सब दुःखों में स्त्री के समान औषध और कुछ नहीं है। दमयन्ती की यह वाणी सुनकर नल ने कहा हे देवि! तुम जो कहती हो वह सब सत्य है। मैं अपने प्राण को छोड़ सकता हूँ, किन्तु तुम्हें नहीं छोड़ सकता। यह सुनकर दमयन्ती ने कहा यदि आप मुझे छोड़ना नहीं चाहते हैं, तो आपने यह क्यों कहा कि यह मार्ग विदर्भदेश का है। हे राजन्! आपके चित्त को इस घोर आपत्ति ने छीन लिया है, अतः छोड़ने की इच्छा नहीं होने पर भी आप मुझे छोड़ सकते हैं। बारम्बार आपके द्वारा विदर्भ-मार्ग का संकेत किया जाना मेरे शोक को बढ़ा रहा है। और यदि आपकी इच्छा यह है कि मैं विदर्भदेश चली जाऊँ, तो श्रेयस्कर यही होगा कि हम दोनों साथ-साथ विदर्भनगरी चलें। वहाँ विपत्ति में पड़े आपका मेरे पिता अत्यधिक सम्मान करेंगे।^१

यह सुनकर राजा नल बोले कि यह ठीक है कि तुम्हारे पिता मेरे भी पिता ही हैं, किन्तु देवि! विपत्ति के दिनों में मेरा वहाँ जाना ठीक नहीं है। राज्यादि से रहित मैं वहाँ तुम्हारे शोक को ही बढ़ाऊँगा, अतः वहाँ जाना उचित नहीं है। इस प्रकार

१. महाभारत, वनपर्व ६१/१५-२५।

२. महाभारत, वनपर्व ६१/२५-३४।

दमयन्ती को सान्त्वना देते हुए दमयन्ती के आधे वस्त्रों में लिपटे हुए, भूख, प्यास और थकावट से व्याकुल वे दोनों घूमते हुए किसी एक स्थान पर पहुँचे और वहीं ठहर गये। जहाँ राजा नल, दमयन्ती के साथ भूमि पर बैठ गये और थकावट से व्याकुल दोनों शय्यादि से रहित जमीन पर ही सो गये। किन्तु दमयन्ती तो गाढ़ निद्रा के वशीभूत हो गई पर राज्य का अपहरण, सब बन्धुओं से छूटना और वन में रहना इत्यादि दुःखों से व्याकुल हृदय वाले नल इस विषय में विचार करने लगे कि दमयन्ती का त्याग करना उचित होगा अथवा नहीं। क्योंकि मेरे कारण ही यह दुःख में पड़ी है। और यदि मैं इसे छोड़ देता हूँ, तो यह निश्चय ही अपने पिता के पास चली जायेगी। जिससे इसका शारीरिक क्लेश समाप्त हो जायेगा। ऐसा विचार कर दमयन्ती के आधे-वस्त्र को काटकर चले जाने की इच्छा वाले नल चिन्ता मग्न थे ही कि उसी समय उन्हें म्यान से रहित एक उत्तम तलवार दिखाई दी, जिसके द्वारा दमयन्ती के वस्त्र को काट कर उसे निद्रावस्था में छोड़कर नल वहाँ से चले गये। किन्तु, वहाँ से कुछ दूर चले जाने के बाद दमयन्ती से अत्यधिक स्नेह रखने वाले नल पुनः उसी स्थान पर लौटे तथा दमयन्ती को उस अवस्था में देखकर वे अत्यधिक रोने लगे और सोचने लगे, जिस मेरी प्रिया दमयन्ती को पहले सूर्य और वायु भी नहीं देख सकते थे, वही आज अनाथ के समान वन भूमि पर सो रही है।^१ किन्तु, जागकर अपनी स्थिति को देखकर किस प्रकार पागलों के समान हो जाएगी। यह पतिव्रता मुझसे अलग होकर इस हिंसक पशुओं और सर्पों से भरे हुए घोर वन में अकेली कैसे घूमेगी? यह सोचते हुए दुःख से टूटे हुए हृदय वाले नल कलि के प्रभाव से खींचे जाते हुए वहाँ से दूर चले जाते थे और पुनः उसी स्थान पर लौट आते थे। अन्ततः कलियुग के वश में होकर दुःखी राजा नल अपने मन में उठते हुए विचारों की परवाह न करते हुए अपनी स्त्री को शून्य वन में अकेली छोड़कर चले गये।^२

तत्पश्चात् थकान दूर होने पर दमयन्ती जागी और अपने को नल से रहित देखकर डर गई और शोकाकुल होकर विलाप करती हुई कहने लगी, हे नाथ! आप सत्यवादी और धर्मज्ञ हैं। तब ऐसे असत्य वचन कहकर मुझ सोती हुई को छोड़कर क्यों चले गये। मैंने तो आपका कोई अपकार नहीं किया था, तब आपने मुझे क्यों छोड़ दिया। यदि आप परिहास कर रहे हैं, तो वह भी पर्याप्त हो गया। अब आप आ जाइए, क्योंकि इस निर्जन वन में मैं अकेली डर रही हूँ। आप लताओं में छिपकर मुझसे बात नहीं करते हैं। हे नाथ! मुझे अपने अथवा और किसी वस्तु के विषय में शोक नहीं है, परन्तु आप अकेले किस दशा में पड़े होंगे। भूख, प्यास और थकावट से व्याकुल होकर जब आप सन्ध्यासमय किसी वृक्ष की जड़ में बैठेंगे, तब वहाँ मुझको

१. महाभारत, वनपर्व ६२/१-१९।

२. महाभारत, वनपर्व ६२/२०-२५।

न देखकर आपकी क्या दशा होगी? इसप्रकार रोती हुई वह दमयन्ती वन में इधर-उधर दौड़ने लगी।^१

इसप्रकार तीव्र शोक से व्याकुल हो पतिव्रता भीमपुत्री बार-बार विह्वल होकर एवं लम्बी सांस लेकर रोती हुई कहने लगी, जिसके अभिशाप से दुःखी नैषध को इतना दुःख भोगना पड़ रहा है तथा जिस पापी ने निष्पाप नल को इतना दुःख दिया है वह भी मेरे शाप से इससे ज्यादा दुःख प्राप्त करके दुःखी जीवन व्यतीत करे। इसप्रकार से विलाप करती हुई वह दमयन्ती उस सिंहादि जन्तुओं से भरे हुए वन में अपने पति का अन्वेषण करने लगी। कुररीके समान रोती हुई बार-बार करुण विलाप करती हुई वन में विचरण करने वाली उस दमयन्ती को भूख से व्याकुल एक विशालकाय अजगर ने पकड़ लिया। उस समय भी अपनी व्यथा को छोड़कर वह दमयन्ती महाराज नल के विषय में सोचती हुई कहने लगी, हे नाथ! अजगर के द्वारा अनाथ के समान निगली जाती हुई मेरी रक्षा के लिए आप यथाशीघ्र क्यों नहीं यहाँ आते हैं। जब आप इस महापाप से छूटकर अपने राज्यादि को प्राप्त कर लेंगे तो मुझसे रहित होकर आप कैसे जीवित रहेंगे? कौन आपके श्रम का नाश करेगा? उसी समय वन में घूमने वाला व्याध अजगर द्वारा पकड़ी गई दमयन्ती को देखकर शीघ्रता से वहाँ आया और अजगर को मारकर दमयन्ती को छोड़ाकर उससे पूछने लगा?—

हे सुनयने! तू कौन है, और इस घोर वन में क्यों आई है? तथा तू इस आपत्ति में कैसे पड़ी? यह सुनकर दमयन्ती ने अपना सब वृत्तान्त कह सुनाया। किन्तु वह व्याध दमयन्ती पर आसक्त होकर काम के वशीभूत हो गया। वह दमयन्ती उसके हृदयगत कुभावों को जानकर क्रुद्ध हो गई और उसे शाप दिया कि, यदि मैंने अपने पति के सिवा किसी दूसरे की इच्छा न की हो, तो यह नीच शिकारी अभी प्राणहीन होकर पृथिवी पर गिर पड़े। इतना कहते ही वह व्याध निष्प्राण होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।^२

इसके बाद उस वन में अनेक प्रकार के जीव-जन्तुओं तथा प्राकृतिक सम्पदाओं का अवलोकन करती हुई किसी से भी नहीं डरने वाली वह दमयन्ती एक शिलातल पर बैठकर विलाप करने लगी, हे नाथ! इस निर्जन वन में मुझे अकेली छोड़कर आप कहाँ चले गये? अश्वमेधादि यज्ञ करके भी आप मुझसे यह अनुचित और मिथ्या व्यवहार क्यों कर रहे हैं? सत्य का पालन करके आप मुझसे बात क्यों नहीं करते

१. महाभारत, वनपर्व ६३/१-१३।

२. महाभारत, वनपर्व ६३/१४-२७।

३. महाभारत, वनपर्व ६३/२८-३८।

हैं। आप तो यही कहते थे कि हे देवि! तेरे सिवा मुझे प्रिय और कोई नहीं है, फिर ऐसा क्यों? आपको आज मैं इस पर्वत में अथवा सिंह और व्याघ्रों से भरे हुए इस भयंकर वन में क्यों नहीं देखती हूँ? दुःख से अत्यन्त व्याकुल तथा आपके लिए शोक से कृश हुई मैं किससे पूछूँ और यह भी किससे पूछूँ कि तुमने नल को कहीं देखा है क्या? अच्छा, यह चार दाढ़ोंवाला तथा महान् ठोड़ीवाला ऐश्वर्यवान् वन का राजा सिंह मेरे सामने ही चला आता है, मैं शंकारहित होकर इसी से पूछती हूँ। हे सिंह! शत्रुओं का नाश करने वाले राजा नल की मैं स्त्री हूँ। पति को ढूँढने वाली अकेली शोक से पीड़ित मेरे समीप आकर मुझे सान्त्वना दो कि क्या तुमने कहीं नल को देखा है? अथवा मुझको खाकर मुझ दुःखिता को शोक से रहित करो। अरे, यह मृगराज तो मेरी उपेक्षा करता हुआ मीठे जल से भरी हुई नदी की ओर जा रहा है, तो इस अत्यन्त ऊँचे पर्वत से ही पूछती हूँ। हे पर्वतश्रेष्ठ! आपको नमस्कार है। मैं अश्वमेधादि यज्ञ करने वाले महाप्रतापी राजा नल की स्त्री दमयन्ती हूँ तथा अपने पति का अन्वेषण करती हुई इस वन में आपके पास आयी हूँ। क्या आपने मेरे पति को कहीं देखा है? किन्तु पर्वत से कुछ भी प्रत्युत्तर न पाकर वह दमयन्ती विलाप करती हुई तथा नल की 'दमयन्ती' कहकर पुकारने वाली वाणी कब सुनूंगी, कहती हुई उत्तर दिशा में जाती हुई ऋषियों से सुशोभित आश्रम को देखने लगी। तब वह उस आश्रम में गई जहाँ मुनियों ने यथायोग्य सत्कार करके उस दमयन्ती को बैठने के लिए कहा और पूछा—तुम कौन हो? और क्या करना चाहती है? हम सब तुम्हारे रूप और तेज को देखकर परमाश्चर्य को प्राप्त हुए हैं, धैर्य धारण करो घबराओ मत।^१

तत्पश्चात् दमयन्ती ने अपना सब परिचय एवं पूर्व-घटित सभी वृत्तान्त कह सुनाया। इसे सुनकर मुनियों ने कहा हे देवि! अब तुम्हारा सूर्योदय होने वाला है। हम अपने तप के प्रभाव से देख रहे हैं कि शत्रुओं का विनाश कर पुनः उसी निषधदेश पर शासन करने वाले धर्मज्ञों में श्रेष्ठ अपने पति नल को यशाशीघ्र प्राप्त करोगी। इतना कहने के बाद वे तपस्वी अपने आश्रम और अग्निशाला के सहित अन्तर्धान हो गये। यह देखकर वह दमयन्ती उदास हो गई और विलाप करती हुई अशोक वृक्ष को देखकर उससे अपने पति नल के विषय में पूछने लगी। किन्तु उससे उत्तर न पाकर घूमती हुई उसने मार्ग पर हाथी, घोड़े और रथों से युक्त एक बड़ा भारी जनसमूह देखा, जो शीतल जल वाली सुन्दर, दोनों ओर बेंतवाली, उत्तम जल से पूर्ण चौड़ी नदी को पार कर रहा था। यह देखकर वह दमयन्ती उस विशाल जनसमूह में घुस गई। उन्मत्त के समान शोक से व्याकुल, आधे वस्त्र को धारण किये, दुर्बल, विवर्ण मुखवाली, मलिन और विखरे तथा धूलों से भरी केशवाली वह दमयन्ती उस जनसमुदाय के मध्य पहुँची, तो उसे देखकर कुछ लोग भय से इधर-उधर भागने लगे,

१. महाभारत. वनपर्व ६४/१-७२।

कुछ चिन्ता करने लगे और कुछ चिल्लाने लगे, कुछ हंसने लगे, कोई उसकी निन्दा करने लगे, कुछ लोगों ने उस पर दया दिखलाई और वे उसका समाचार पूछने लगे।^१

हे देवि! तुम कौन हो? किसकी हो? इस वन में क्या ढूँढ रही हो? तुम्हें देखकर हम सभी भय से व्याकुल हैं। क्या तुम मानुषी हो? अथवा यक्षिणी हो? या राक्षसी? तुम सत्य कहो, हमारा सब तरह से कल्याण करो, हमारी रक्षा करो तथा ऐसा कोई उपाय करो जिससे हमारा यह कारवां सकुशल वहाँ शीघ्र ही चला जाए, क्योंकि हम सब तुम्हारी शरण में आये हैं। जनसमूह द्वारा इस प्रकार से पूछे जाने पर दमयन्ती ने पूर्व-वृत्तान्त कह सुनाया तथा नल के अन्वेषण की बात कही। यह सुनकर उस जनसमूह का शुचि नामक समूहपति बोला— हे देवि! मैं झुण्ड का नेता सार्थवाह हूँ और मैंने नल नामक किसी व्यक्ति को नहीं देखा है। यह सुनकर दमयन्ती उससे पूछती है कि आप लोग कहाँ जा रहे हैं, तो वह सार्थवाह बोला— यह वणिकजनों का झुण्ड लाभ के निमित्त सत्यशील चेदिदेश के राजा सुबाहु के राज्य को जा रहा है।^२

सार्थवाह के इस वचन को सुनकर वह दमयन्ती अपने पति के अन्वेषण के निमित्त उन लोगों के साथ चल दी। मार्ग में फल पुष्प से सुशोभित 'सौगन्धिक' नामक तालाब को देखकर वह जनसमुदाय अपने स्वामी की अनुमति प्राप्त कर वहाँ विश्राम के लिए रुक गया। किन्तु आधी रात को जब वे सभी गाढ़ी निद्रा में निमग्न थे उसी समय हाथियों का झुण्ड तालाब के समीप पहुँचा और लोगों को अपने पैरों से मारने लगा। वे सभी हाहाकार करने लगे किन्तु किसी प्रकार से भी उन हाथियों के झुण्ड का प्रतिकार नहीं कर सके और हाथियों के झुण्ड ने जनसमुदाय को मार डाला। प्रातः उस जनसमुदाय में से जो लोग बचे थे वे सब उस भयानक बिभीषिका का चिन्तन करते हुए वहाँ से चल दिये। वह दमयन्ती भी बहुबिध चिन्ता करती हुई मरने से बचे हुए वेद जानने वाले उन ब्राह्मणों के साथ प्रस्थान कर दी। तत्पश्चान् एक दिन सन्ध्यासमय चेदिदेश के राजा सुबाहु के महान् नगर के समीप पहुँची और नगर में प्रविष्ट हो गई।^३ आधा ही वस्त्र पहने हुए, विवर्ण, खुले केशों वाली वह दमयन्ती वहाँ के निवासियों से घिरी हुई महल के समीप पहुँची, जहाँ बालकों से घिरी हुई उस दमयन्ती को राजमाता ने देखा, और बालकों को दूर कर उसे महल में ले गई तथा दमयन्ती से पूछने लगी तुम इस आपत्ति में पड़कर भी ऐसी उत्तम शोभा को धारण करती हो अतः तुम सत्य बताओ कि तुम कौन हो? यह सुनकर दमयन्ती ने

१. महाभारत, वनपर्व ६४/७३-११२।

२. महाभारत, वनपर्व ६४/११३-१२५।

३. महाभारत, वनपर्व ६५/१-२३।

सारा वृत्तान्त कह सुनाया और बोली कि अपने पति नल का अन्वेषण करती हुई यहाँ तक पहुँच गई हूँ।^१

यह सुनकर राजमाता स्वयं दुःखी हो गई और दमयन्ती से बोली कि अब तुम मेरे पास ही रहो और तुम्हारे पति का अन्वेषण हमारे नगरवासी करेंगे। राजमाता के उक्त वचन को सुनकर दमयन्ती ने कहा हे माता! मैं किसी का जूटा नहीं खाऊँगी, किसी के पैर नहीं धोऊँगी और किसी दूसरे पुरुष से नहीं बोलूँगी तथा यदि कोई मेरी इच्छा करे तो वह पुरुष आप से प्राण दण्ड पावे इस तरह का आपसे आश्वासन पाकर ही मैं यहाँ रह सकती हूँ अन्यथा नहीं। यह सुनकर राजमाता अत्यन्त प्रसन्न हुई और बोली कि तुम्हारा यह व्रत अत्युत्तम है। मैं तुम्हारी सब बातों को पूरा करूँगी। यह कहकर राजमाता ने अपनी पुत्री सुनन्दा से कहा कि हे सुनन्दे! इस सैरन्ध्री को साक्षात् देवरूपिणी समझो, तुम प्रसन्न चित्त से इसके साथ रहकर आनन्द करो।^२

इधर दमयन्ती का परित्याग कर चुके वन में घूमने वाले राजा नल ने वन में प्रज्वलित दावाग्नि को देखा जिसके मध्य से यह सुनाई पड़ रहा था कि हे नल! शीघ्र आओ और मेरी रक्षा करो, तथा कुछ भय मत करो। इतना सुनते ही राजा नल उस अग्नि के मध्य प्रविष्ट हुए जहाँ एक सर्पों का राजा कुण्डली मारकर बैठा था। नल को देखकर वह सर्प बोला मैं कर्कोटक नामक नाग हूँ और गुरु के शाप से एक पग भी चलने में असमर्थ हूँ अतः तुम मुझे यहाँ से बाहर निकालो। इतना कहने के बाद अंगूठे के समान शरीर वाले बने उस नाग को नल अग्नि से रहित स्थान में ले गये जहाँ से वह नाग आकाश में जाकर बोला हे नल! आप अपने कुछ कदमों को गिन कर चलें क्योंकि ऐसा करने से मैं आपका अत्यन्त प्रिय कार्य करूँगा। यह सुनकर राजा नल अपने कदमों को गिनते हुए जब दसवें कदम पर पहुँचे तो उसी समय उस कर्कोटक नाग ने उन्हें काट लिया जिससे नल का सुन्दर रूप विकृत हो गया। राजा नल को आश्चर्यचकित देखकर सुन्दर रूप धारण कर लेने वाला वह नाग बोला कि लोग आप को पहचान न सकें इसीलिए मैंने आपके वास्तविक रूप को नष्ट कर दिया। हे राजन्! आप जिसके कारण छल में पड़कर इस दुःख को भोग रहे हैं, मेरे विष के कारण वह कलि आपके अन्दर बहुत दुःख पाता हुआ रहेगा। और मेरे विष से भरे आपके शरीर को जबतक वह कलि नहीं छोड़ेगा तबतक वह महादुःख सहता हुआ आपके अन्दर निवास करेगा। यही नहीं अब आपको न तो हिंसक जीवों से किसी प्रकार का भय होगा और न वेद जानने वालों से ही किसी प्रकार का भय होगा। विष के कारण होने वाली पीड़ा का भी आपको अनुभव नहीं होगा तथा आप युद्ध में निरन्तर

१. महाभारत, वनपर्व ६५/२३-३६।

२. महाभारत, वनपर्व ६५/३७-४३।

जीतते ही रहेंगे। हे राजन! अब आप यहाँ से “बाहुक नामक सूत हूँ” इस प्रकार कहते हुए आज ही सुन्दर अयोध्यानगरी में ऋतुपर्ण के पास जाइये क्योंकि वह जुए की विद्या में बहुत निपुण हैं।^१

उक्त प्रकार से कहता हुआ पुनः वह कर्कोटक नाग राजा नल से बोला— हे राजन! वह अयोध्यानरेश आपसे अश्वविद्या सीखकर आपको जुए की विद्या तो सिखा ही देंगे साथ ही वे आपके मित्र भी हो जाएँगे। अब आप शोक न करें और अयोध्या के लिए प्रस्थान करें। तत्पश्चात् वह नाग राजा नल को एक वस्त्र देकर बोला हे राजन! आप जब अपना वास्तविक रूप प्राप्त करना चाहेंगे उस समय इस वस्त्र को ओढ़कर मेरा स्मरण करेंगे और आपको अपना वास्तविक रूप प्राप्त हो जायेगा।^२

इतना कहकर उस नाग के अन्तर्धान हो जाने के बाद राजा नल उस स्थान से चलकर दसवें दिन राजा ऋतुपर्ण के नगर अयोध्या में पहुँचे तथा उस कर्कोटक नाग के कथनानुसार अपना परिचय देते हुए बोले कि हे राजन ऋतुपर्ण! इस जगत् में जितनी शिल्पविद्या हैं, मैं उसमें निष्णात हूँ। अतः आप मुझे नौकर रख लीजिये। बाहुक के इस वचन को सुनकर राजा ऋतुपर्ण बोले कि मेरी भी यही इच्छा है, अतः तुम मेरे यहाँ रहो। हे सूत! तुम ऐसा कोई उपाय करो जिससे मेरे रथ के घोड़े शीघ्र चल सकें। तुम आज से मेरी घुड़साल के स्वामी हुए तथा आज से तुम्हें दस हजार सोने की मुद्रा मिला करेगी। राजा के ऐसे वचन सुनकर राजा नल वाष्ण्य और जीवलक के साथ ऋतुपर्ण के नगर अयोध्या में निवास करते हुए सदा दमयन्ती की चिन्ता करते रहते थे। निरन्तर दमयन्ती विषयक चिन्ता की बात जानकर जीवलक ने नल से इस बारे में जब पूछा तो नल ने अपना नाम न लेकर किसी मन्दबुद्धि वाले पुरुष की कथा के रूप में अपना पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया।^३

इस प्रकार समय के व्यतीत होने पर राजा भीम ने अपनी बेटी दमयन्ती एवं जमाता नल को देखने की इच्छा से बहुत सारा धन देकर ब्राह्मणों को निषधदेश भेजा। और उन ब्राह्मणों से कहा कि जो कोई दमयन्ती और नल का अन्वेषण कर मुझे इसकी सूचना देगा उसे मैं बहुत धन, गाय, एवं एक गाँव दक्षिणा में दूँगा। यह सुनकर सभी ब्राह्मण उन दोनों का अन्वेषण करने के लिए विभिन्न दिशाओं में चले गये। उन ब्राह्मणों में से सुदेव नामक एक ब्राह्मण चेदिपुरी में जा पहुँचा जहाँ सुनन्दा के साथ दमयन्ती बैठी हुई थी। उसे देखकर सुदेव यह जान गया कि यही हमारे नरेश की पुत्री दमयन्ती है, जो अपने पति के वियोग में प्रिय लगने वाले सब कामों और भोगों से हीन और

१. महाभारत, वनपर्व ६६/१-२०।

२. महाभारत, वनपर्व ६६/२०-२४।

३. महाभारत, वनपर्व, ६७/१-१९।

बन्धुओं से रहित होकर भी केवल पति के दर्शन की इच्छा से अपने जीवन को धारण कर रही है। अतः विपत्ति में पड़ी दमयन्ती को धैर्य दिलाने का मुझे प्रयत्न करना चाहिए, ऐसा विचारकर वह सुदेव दमयन्ती के समीप गया और बोला कि हे देवि! मैं तुम्हारे भाई का प्यारा मित्र सुदेव नामक ब्राह्मण हूँ तथा महाराज भीम की आज्ञा से तुम दोनों का अन्वेषण करता हुआ यहाँ पहुँचा हूँ। यह जानकर दमयन्ती ने सुदेव को पहचानकर क्रम से अपने सब बन्धुओं का समाचार पूछा तथा अचानक आत्मीयजन सुदेव को देखकर वह दमयन्ती बहुत रोई। यह देखकर सुनन्दा ने अपनी माता के पास उसके रोने का सन्देश भेजा जिसे सुनकर चेदिराजा की माता रनिवास से निकलकर उस स्थान पर पहुँची जहाँ दमयन्ती और ब्राह्मण का वार्तालाप हो रहा था। तथा सुदेव से सैरन्ध्री (दमयन्ती) के विषय में पूछा कि यह कौन है? किस कारण यह विपत्ति में पड़ी है? हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप इस वृत्तान्त को मुझसे कहें।^१

तत्पश्चात् उस ब्राह्मण ने यह कहते हुए, कि यह निषधनरेश राजा नल की स्त्री, विदर्भपति भीम की पुत्री, दमयन्ती है। पूर्वघटित सारा वृत्तान्त राजमाता से कह सुनाया। और दमयन्ती तथा नल का अन्वेषण करता हुआ मैं जन्म से ही भौहों के मध्य में विद्यमान तिल जो शरीरमैल से छिप गया है उसे देखकर इसे पहचान लिया। यह सुनकर सुनन्दा ने जब तिल के स्थान वाले भाग से मैल को हटाया तो मेघरहित आकाश में चन्द्रमा की भाँति मुखवाली दमयन्ती को पहचान कर राजमाता यह कहकर कि तुम तो मेरी बहन की पुत्री हो, क्योंकि मैं और तुम्हारी माता दशाणदेश के राजा सुदामा की पुत्री हूँ, बहुत देर तक रोती रहीं। तत्पश्चात् राजमाता ने कहा हे पुत्रि! यह तो अब तुम्हारा ही घर है, अतः मेरे इस ऐश्वर्य को अपना ही ऐश्वर्य समझो। अपने मौसी की उक्त वाणी को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई दमयन्ती ने मौसी को प्रणाम किया तथा सुदेव के साथ अपने पितृगृह जाने की अनुमित मांगी। यह सुनते ही प्रसन्न होकर राजमाता ने अपने पुत्र की आज्ञा से विशाल सेना से रक्षित पालकी में दमयन्ती को विदर्भदेश भेज दिया। वहाँ से चलकर कुछ दिनों के पश्चात् दमयन्ती विदर्भदेश पहुँच गई, जहाँ उसके आत्मीयजनों ने उसका अत्यधिक सम्मान किया। अपने दोनों बालक, माता-पिता और सब सखी वर्ग को सुखी देखकर दमयन्ती ने अत्युत्तम विधि से देवता और ब्राह्मणों की पूजा की तथा माता से बोली^२—

हे माता! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो महाराज नल का अन्वेषण करवाओ, क्योंकि उनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकती। यह सुनकर दमयन्ती की माता रोने लगी और रोती हुई अपने पति भीमनरेश से दमयन्ती का वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् राजा भीम की आज्ञा से तथा दमयन्ती द्वारा कहे गये इस वाक्य को— हे

१. महाभारत, वनपर्व ६८/१-३८।

२. महाभारत, वनपर्व ६९/१-२६।

छली! तुम मेरे आधे वस्त्र को फाड़कर प्यारी और सदा पीछे चलने वाली मुझे वन में सोती हुई छोड़कर कहाँ चले गये? तुमने जैसी उसको आज्ञा दी थी वह बाला वैसे ही आधा वस्त्र पहने हुए अत्यन्त दुःख से जलती हुई अभी तक वैसी ही तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। उस शोक के कारण हमेशा रोती हुई उस स्त्री पर कृपा करो और उसके वचन का उत्तर दो। तथा यह भी कहना चाहिए कि पति का कर्तव्य है कि वह सदा ही अपनी पत्नी की रक्षा और उसका पालन पोषण करे। पर आपकी ये दोनों बातें किसलिए नष्ट हो रही हैं। ऐसा कहने पर जो कोई व्यक्ति इसका उत्तर दे उसके विषय में सम्यक् जानकारी प्राप्त करके हमें सूचना दे— ग्रहण करके ब्राह्मण लोग विभिन्न दिशाओं में नल का अन्वेषण करने के लिए चल दिये। तथा दमयन्ती के उक्त वचन को जहाँ-तहाँ सुनाने लगे।^१

इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो जाने के बाद अयोध्या नगरी से लौटकर आए हुए पर्णाद नामक ब्राह्मण ने दमयन्ती के कथनानुसार वाक्यों को कहने पर राजा ऋतुपर्ण के नौकर बाहुक से इस प्रकार का उत्तर— उत्तमकुल में उत्पन्न हुई जो स्त्रियाँ अत्यन्त विषम दुःख को पाने पर भी स्वयं अपनी रक्षा करती हैं और पतियों से विछुड़ जाने पर भी क्रोधित नहीं होती; वे ही स्वर्ग को जीतती हैं। उस मूर्ख पति ने सुखों से भ्रष्ट होकर और संकट में पड़ने के कारण दुःखी होकर जो उसको छोड़ दिया; इस कारण उसको क्रोध करना तथा भोजन को चाहने वाले उसके वस्त्र को जब पक्षी लेकर उड़ गये और वह मानसिक चिन्ताओं से जलने लगा और चाहे वह सत्कार को पाती हो या नहीं, तो भी राज्य से भ्रष्ट, लक्ष्मी से हीन अपने पति को आया हुआ देखकर उस निर्दोषी पर क्रोध करना उचित नहीं है— कह सुनाया। पर्णाद के मुख से इस प्रकार सुनकर रोती हुई दमयन्ती माता के पास पहुँची और उनसे बोली कि हे माता! मुझे राजा नल का पता लगाने के लिए सुदेव को अयोध्या भेजने की अनुमति दें तथा यह बात पिता जी से न कहें। यह कहकर दमयन्ती ने पर्णाद नामक ब्राह्मण को दान-दक्षिणा देकर सुदेव नामक ब्राह्मण को बुलाया और उससे बोली कि हे द्विजश्रेष्ठ! आपने ही मुझे अपनों से मिलाया है। अतः आप मेरा एक प्रिय कार्य और करें जिससे मैं अपने पति से शीघ्र मिल जाऊँ। इसलिए आप आज ही किसी प्रकार से अयोध्या पहुँचें और महाराज ऋतुपर्ण से यह कहें कि— हे राजन्! विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती अपने लिए दूसरा पति वरना चाहती है, क्योंकि वीर नल अभी तक जीवित हैं या नहीं इसका पता नहीं है। अतः दूसरे पति का वरण करने के लिए वह दमयन्ती कल ही अपना स्वयंवर रचायेगी, जिसमें सब राजा और राजपुत्र आ रहे हैं। अतः यदि आपके लिए संभव हो तो किसी प्रकार आप आज ही विदर्भदेश पहुँचे, क्योंकि कल

१. महाभारत, वनपर्व ६९/१-२२।

सूर्योदय होते ही वह पति का वरण कर लेगी। दमयन्ती द्वारा कहे गये उक्त वचन अयोध्या पहुँचकर सुदेव ने राजा ऋतुपर्ण को कह सुनाया।^१

तत्पश्चात् राजा ऋतुपर्ण ने दमयन्ती स्वयंवर का वृत्तान्त बाहुक को बुलाकर कह सुनाया और मैं (ऋतुपर्ण) एक ही दिन में विदर्भदेश पहुँचना चाहता हूँ, क्या यह सम्भव हो सकता है। दमयन्ती स्वयंवर का वृत्तान्त सुनकर अत्यन्त दुःखी राजा नल सोचने लगे कि क्या यह दमयन्ती निश्चितरूप से दूसरे पति का वरण करेगी अथवा इसी बहाने मेरा अन्वेषण करना चाहती है। अच्छा, वास्तविकता का ज्ञान तो वहाँ पहुँचने पर ही होगा। यह सोचकर बोले हे राजन्! आप चिन्ता न करें। आप आज ही विदर्भदेश पहुँचेंगे मैं ऐसा प्रयत्न करता हूँ। तत्पश्चात् ऋतुपर्ण की आज्ञा से नल घुड़साल में से सिन्धु देशोत्पन्न, तेज, बल और शील से भरे हुए, दशभौरियों से युक्त, मार्ग में चलने में समर्थ पर दुर्बल घोड़ों को बाहर निकाल लाये। इसे देखकर ऋतुपर्ण के मन में उत्पन्न सन्देह का नल ने निराकरण किया। तत्पश्चात् अश्वविद्या में चतुर नल ने राजा ऋतुपर्ण को रथ पर बैठाकर वाष्ण्य नामक सारथि के साथ उन अश्वों को रथ सहित आकाश मार्ग में उड़ाया। बाहुक (नल) की इस निपुणता को देखकर ऋतुपर्ण तो आश्चर्यचकित थे ही साथ ही वाष्ण्य यह सोचने लगा कि यह बाहुक कहीं इन्द्र का सारथि मातलि अथवा अश्वशास्त्रज्ञ शालिहोत्र ही तो नहीं है। अथवा अश्वकला के मर्मज्ञ इस रूप में कहीं ये महाराज नल ही तो नहीं हैं। ऐसा सोचता हुआ वह वाष्ण्य इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि बाहुक के रूप में निश्चित रूप से ये महाराज नल ही हैं, कोई अन्य नहीं। उधर राजा ऋतुपर्ण उस बाहुक के बल, वीर्य, उत्साह और घोड़ों को पकड़ने की रीति और परमयत्न को देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।^२

इस प्रकार आकाश मार्ग से जा रहे राजा ऋतुपर्ण का दुपट्टा भूमि पर गिर गया जिसे लेने की इच्छा वाले राजा से बाहुक (नल) ने कहा इस समय तो यह असम्भव है क्योंकि उस स्थान से हम चार कोस आगे निकल चुके हैं। नल की इस चातुरी को देख कर मार्ग में एक बहेड़े के वृक्ष में फलों को देखकर ऋतुपर्ण ने अपनी अङ्गविद्या की कुशलता से उस वृक्ष में लगे फल, पत्ते, फूल और गिरे हुए फल, पत्ते तथा फूल की संख्या बतायी। तब नल ने रथ को मार्ग में रोककर उस पेड़ की एक शाखा को काटकर फल और पत्ते की गिनती की तो वह उतने ही थे जितने की ऋतुपर्ण ने कहे थे। यह देख आश्चर्यचकित नल ने ऋतुपर्ण से उस विद्या को सीखने की इच्छा व्यक्त की तो राजा ऋतुपर्ण बोले की हे बाहुक! तुम मुझको पासे के रहस्य को जानने वाला और गिनने की विद्या में निपुण जानो। यह सुनकर बाहुक ने कहा— हे राजन्! मैं

१. महाभारत, वनपर्व ७०/१-२७।

२. महाभारत, वनपर्व ७१/१-३४।

आपको अश्वविद्या सिखला देता हूँ और आप अपनी उक्त विद्या मुझे सिखला दें। यह सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने तथास्तु कहकर अपनी विद्या नल को सिखला दी तथा नल से अश्वविद्या स्वयं ग्रहण की।^१

इसप्रकार जुए का तत्त्व सीखते ही नल के शरीर में प्रविष्ट कलि कर्कोटक सांप के विष का मुख से लगातार वमन करते हुए बाहर निकला और विषरहित होने के कारण उसने अपना रूप धारण कर लिया। यह देखकर अत्यन्त कुपित नल ने कलिको शाप देना चाहा किन्तु कलि हाथ जोड़कर नल से क्षमा माँगने लगा और बोला मैं आपको बहुत यश प्रदान करूँगा। मुझे अब शाप न दें क्योंकि दमयन्ती का परित्याग करते समय दमयन्ती ने जो मुझे शाप दिया था उसी से मैं बहुत पीड़ित हो चुका हूँ। हे नल! मैं सत्य कहता हूँ जो मनुष्य आलस्यरहित होकर आपके चरित्र का वर्णन करेगा; उसको मुझसे उत्पन्न हुआ दुःख कदापि नहीं होगा। यह वचन सुनकर नल ने अपने क्रोध का संवरण किया और वह कलि उसी बहेड़े के वृक्ष में प्रविष्ट हो गया। दोनों के परस्पर वार्तालाप को किसी ने भी नहीं सुन पाया। तत्पश्चात् राजा नल रथ पर चढ़कर विदर्भदेश को ऋतुपर्ण के साथ वहाँ से प्रस्थान किया।^२

^३इसके बाद सन्ध्याकाल में विदर्भनगर के द्वार पर पहुँचे राजा ऋतुपर्ण की सूचना द्वारपालों ने राजा भीम को दी। राजा भीम की आज्ञानुसार कुण्डिन नगरी में प्रवेश करते हुए नल द्वारा हाँके जा रहे रथ पर आरूढ़ ऋतुपर्ण के रथचक्र की गम्भीर ध्वनि को सुनकर नल के वे अश्व, जिन्हें राजा नल पूर्व में हाँकते थे, अत्यधिक प्रसन्न होकर उसी तरफ देखने लगे। साथ ही पूर्वपरिचित रथध्वनि को सुनकर दमयन्ती भी महलों के ऊपर चढ़कर देखने लगी। किन्तु ऋतुपर्ण के रथ पर विकृत रूप वाले बाहुक के रूप में नल को देखकर वह भ्रम में पड़ गयी और सोचने लगी कदाचित् राजा ऋतुपर्ण भी नल के समान ही हैं इसलिए रथचक्र से इस प्रकार की ध्वनि का निकलना सम्भव है। अतः अपने मनोरथ को भग्न होते देखकर पूर्व का स्मरण कर विलाप करती हुई वह चेतना रहित हो गई। इधर कुण्डिन नगरी में प्रवेश करने के बाद जब ऋतुपर्ण ने राजा भीम को देखा, तो रथ से उतरकर भीम से मिलने चले। राजा भीम ने ऋतुपर्ण का उचित सत्कार किया और कुण्डिन नगरी आने का कारण ऋतुपर्ण से पूछा, क्योंकि राजा भीम नहीं जानते थे कि हमारी पुत्री ने दूत भेजकर नल का अन्वेषण करने के निमित्त ऋतुपर्ण को यहाँ बुलाया है। ऋतुपर्ण ने जब देखा कि यहाँ न तो कोई अन्य राजा ही है, और न राजपुत्र और न स्वयंवर की कोई तैयारी, तो उन्होंने कहा मैं तो

१. महाभारत, वनपर्व ७२/१-२६।

२. महाभारत, वनपर्व ७२/२६-४३।

३. महाभारत, वनपर्व ७३/१-३४।

आपको प्रणाम करने ही यहाँ आया हूँ। यह सुनकर राजा भीम ने ऋतुपर्ण से विश्राम करने के लिए कहा तथा सत्कार करके उन्हें विदा किया। जब राजा ऋतुपर्ण विश्राम के लिए चले गये तब रथ पर से वाष्ण्य के साथ बाहुक भी उतर कर अश्वों की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करने लगे और रथ के समीप अश्वशाला में बैठ गये। तत्पश्चात् दमयन्ती ने अनेक तर्क-वितर्क करके नल को दूढ़ने के लिए एक दूती भेजना चाहा।

इसके बाद दमयन्ती ने केशिनी को बुलाकर कहा तुम उस बाहुक नामक सारथि के समीप जाओ और इसका पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करो कि वह इस रूप में कौन है। साथ ही मेरी बातों को पर्णाद नामक ब्राह्मण के मुख से उस बाहुक ने जो सुनकर उसका उत्तर दिया था उन बातों को पुनः कहकर उस बाहुक से कहना कि आप द्वारा दिये गये उत्तर को पुनः दमयन्ती आपके मुख से सुनना चाहती है। अतः आप उस वाक्य का उत्तर उसी रूप में दें जिस प्रकार आपने पर्णाद को दिया था। तथा हे केशिनि! भोजन बनाने के निमित्त उसके द्वारा अग्नि और जल मांगने पर भी तुम उसे मत देना। साथ ही देखना कि वह बाहुक अग्नि और जल की व्यवस्था किस प्रकार करता है। यह सब देखकर इसकी सूचना तुम मुझे यथाशीघ्र दो क्योंकि मुझे विश्वास हो रहा है कि बाहुक रूप में वे मेरे स्वामी नल ही हैं। अतः तुम यहाँ से यथाशीघ्र बाहुक के समीप चली जाओ। तत्पश्चात् दमयन्ती का आदेश पाकर वह केशिनी बाहुक के समीप जाकर दमयन्ती द्वारा कही बातों को उससे कहती थी और उस बाहुक के द्वारा दिये गये उत्तर को ध्यान से सुनती थी।^१ उसी समय भोजन बनाने के निमित्त जो सामग्री एवं पशुओं के मांस राजा भीम ने भेजे थे उन्हें धोने के लिए खाली घड़े में ज्यों ही राजा नल ने देखा उसमें पानी भर गया तथा उस पानी से मांसादि को धोकर कुछ घासों को हाथ से रगड़कर अग्नि प्रज्वलित कर पाकक्रिया प्रारम्भ कर दिया। यह सब देखकर केशिनी आश्चर्यचकित होती हुई दमयन्ती के पास गई और राजा नल द्वारा दिये गये दमयन्ती के वाक्यों का उत्तर तथा अग्नि और जल विषयक घटना कही। इसे सुनकर दमयन्ती ने यह निश्चय कर लिया के अब नल ही बाहुक रूप में यहाँ आ गये हैं। अतः दमयन्ती ने कहा— हे केशिनि! तू पुनः वहाँ जाकर और बाहुक ने जो मांस बनाया है, उसमें से जो कुछ चौके के बाहर गिरा हो उसे ले आओ। तत्पश्चात् केशिनी पुनः वहाँ गई और मांस का एक टुकड़ा लाकर दमयन्ती को दिया जिसे खाकर दमयन्ती यह समझ गई कि ये राजा नल ही हैं, कोई अन्य नहीं। पुनः यह नल ही हैं अन्य नहीं इसका एकान्तिक निर्धारण करने के निमित्त दमयन्ती ने केशिनी के साथ अपने पुत्र इन्द्रसेन तथा पुत्री इन्द्रसेना को बाहुक के पास भेज दिया। अपने पुत्र और पुत्री को देखकर बाहुक दौड़कर गया और उन दोनों को अपने गले से लगाकर गोद

१. महाभारत, वनपर्व ७५/१-३०।

में बैठाकर अत्यन्त दुःखी चित्त वाला जोर से विलाप करने लगा। इस क्रम में अपने प्रकट हो जाने के भय से बाहुक ने केशिनी से कहा कि हमारे बच्चे भी इन दोनों के समान ही हैं। इसलिए इन्हें देखकर मैं रोने लगा। हे किशिनि! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। तुम यहाँ से यथाशीघ्र चली जाओ। क्योंकि मैं परदेशी हूँ तथा हमारे पास बार-बार तुम्हारे आने से लोग अन्यथा शङ्का करने लगेंगे।^१

इसके बाद जब केशिनी ने दमयन्ती से नल के समस्त विकारों को कह सुनाया तो दमयन्ती ने केशिनी को माता के पास यह कहकर भेजा कि तुम मेरी माता से कहना कि दमयन्ती ने बाहुक की अनेक प्रकार से परीक्षा ली जिससे ज्ञात हुआ कि वे नल ही हैं, किन्तु उनके विकृत रूप के कारण सन्देह है। अतः उसके समाधान के लिए आप या तो बाहुक को ही महल में बुला दें अथवा मुझे जाने की अनुमति प्रदान करें। अब मेरे इस वृत्तान्त को पिता चाहे जान लें अथवा न जानें। आप उक्त दो उपायों में से कोई एक उपाय करें। दमयन्ती के इस अभिप्राय को उसकी माता से जानकर राजा भीम ने भी दमयन्ती को बाहुक की परीक्षा लेने की अनुमति दे दी। माता-पिता की आज्ञा पाकर नल को वहाँ बुलाया जहाँ दमयन्ती रहती थी। नल की शोचनीय अवस्था देखकर दमयन्ती करुण-विलाप करने लगी और उस बाहुक से नल द्वारा दमयन्ती परित्याग का वृत्तान्त सुनाने लगी। तब शोक से व्याकुल करुण विलाप करने वाली दमयन्ती से बाहुक ने कहा— हे देवि! जिस कर्म से मेरा राज्य नष्ट हुआ था, वह कर्म मैंने नहीं किया था और जिसके कारण मैंने तुम्हें छोड़ा था, वह कर्म भी कलि ने ही किया था। हे देवि! पहले वन में रहती हुई तुम बहुत दुःखी हो गई थी; तब तुमने उस कलि को शाप देकर पीड़ित किया था। वही कलि तुम्हारे शाप से जलता हुआ मेरे शरीर में वास करता था। मेरे पुरुषार्थ और तपस्या से उसकी पराजय हुई अब हम दोनों के इस दुःख का अन्त हुआ ही समझो। क्योंकि, अब वह पापी कलि मेरे शरीर को छोड़कर चला गया। और मैं तुम्हारे निमित्त ही यहाँ आया हूँ, न कि किसी दूसरे प्रयोजन से।^२ और हे देवि! महाराज ऋतुपर्ण ने जब भीमनरेश की आज्ञा से पृथिवी पर घूमने वाले दूत की यह घोषणा सुनी कि भीमपुत्री दमयन्ती अपनी इच्छा से काम के अनुकूल अपने योग्य दूसरा पति वरण करेगी, तो वे महाराज तुम्हें प्राप्त करने के लिए ही यहाँ तक आये हैं।^३

नल मुख से यह वचन सुनकर डर से कांपती हुई दमयन्ती बोली— नाथ! आपका अन्वेषण कराने के लिए ही मैंने ब्राह्मणों को भेजा था। उन्हीं ब्राह्मणों में से पर्णाद नामक ब्राह्मण ने मेरे द्वारा कहे गये प्रश्नों का उत्तर आप से प्राप्त करके अयोध्या

१. महाभारत, वनपर्व ७५/१-२८।

२. महाभारत, वनपर्व ७६/१-२१।

३. महाभारत, वनपर्व ७६/२१-२४।

नगरी से लौटकर मुझसे कहा। तत्पश्चात् मैंने ही सुदेव ब्राह्मण श्रेष्ठ को अयोध्या नरेश के पास जाने के लिए कहा तथा उससे यह भी कहा कि आप अयोध्यानरेश से कहेंगे कि कल सूर्योदय होते ही दमयन्ती दूसरा पति वरण कर लेगी अतः कल सूर्योदय होने से पूर्व आप विदर्भदेश पहुँचें। क्योंकि हे राजन्! मैं जानती हूँ कि इस पृथिवी पर आपके सिवा ऐसा कोई दूसरा नहीं है, जो एक दिन में सौ योजन की दूरी तय कर सके। हे नाथ! मैं आपके इन चरणों को छूकर कहती हूँ कि मैंने मन से भी कुछ पाप नहीं किया है। किन्तु, यदि मैंने पाप किया है, तो निरन्तर चलने वाला यह वायु सूर्य और चन्द्रमा, जो सबके मन में साक्षी के रूप में विचरता है, मेरे प्राण का नाश करे। दमयन्ती के इतना कहते ही आकाश में स्थित वायुदेव ने कहा— हे राजन्! दमयन्ती ने कुछ पाप नहीं किया है साथ ही इसके तीन वर्ष से हमलोग रक्षक और साक्षी हैं। दमयन्ती ने उक्त उपाय का सहारा आपको प्राप्त करने के निमित्त किया था। इतना कहते ही आकाश से फूल बरसने लगे, देवों ने नगाड़े बजाये और उत्तम पवन चलने लगा।^१

यह देख नल ने शङ्का का त्याग करके कर्कोटक नाग द्वारा प्रदत्त उस पवित्र वस्त्र को ओढ़कर कर्कोटक नाग का स्मरण किया। जिससे उन्हें तत्क्षण अपने वास्तविक रूप की प्राप्ति हुई। नल और दमयन्ती आपस में मिल गये और परमानन्द को प्राप्त किया। इसके बाद यह वृत्तान्त दमयन्ती की माता ने भीमनरेश को कह सुनाया। तब राजा भीम ने कहा कि मैं कल सबेरे दमयन्ती के सहित सुख से बैठे हुए नल को देखूँगा। तदनन्तर नल और दमयन्ती ने बहुत आनन्द से उस रात को वन की पुरानी कथायें कहते-कहते बिताया। इस चौथे वर्ष में अपनी स्त्री को पाकर राजा नल परम आनन्द को प्राप्त किए तथा दमयन्ती भी अपने पति नल को प्राप्त कर अत्यन्त शोभित हुई।^२

तत्पश्चात् उस रात्रि को बिताकर नल ने राजा भीम के दर्शन किये। उस दिन नगर में चारों ओर महा आनन्द के शब्द होने लगे। लोगों ने हर्षोल्लास मनाया। जब राजा ऋतुपर्ण ने यह सुना कि बाहुक रूप में वे राजा नल ही हैं तो तुरन्त नल के पास पहुँचकर क्षमा याचना करने लगे। यह देख राजा नल ने उन्हें धैर्य बँधाया और बोले हे राजन्! आपने मेरा बहुत ही उपकार किया है। अतः मुझसे क्षमा माँगकर मुझे लज्जित न करें।^३

इस प्रकार से कुण्डिनपुरी में एक महीना रहने के बाद राजा नल सेनासहित अपने देश जा पहुँचे और अपने भाई पुष्कर से जुआ खेलने का आग्रह करने लगे।

१. महाभारत, वनपर्व ७६/१-१५।

२. महाभारत, वनपर्व ७६/१६-२७।

३. महाभारत, वनपर्व, ७७/१-१९।

तत्पश्चात् राजा नल ने द्यूत-क्रीड़ा में पुष्कर को पराजित कर अपना नष्ट हुआ राज्यादि पुनः प्राप्त किया। तथा पुष्कर को बहुत धन आदि देकर निषधदेश से विदा कर दिया।^१ इसके बाद जब सब नगर शान्त हो गया और वह उत्सव समाप्त हो गया, तो राजा नल ने बड़ी भारी सेना भेजकर दमयन्ती को वहीं बुला लिया। और सुखों का उपभोग करते हुए शासन किया।

महाभारत में वर्णित इस कथा को आधार रूप में ग्रहण करके भी कवि ने नाटकीय आख्यानवस्तु की दृष्टि से स्थल विशेष में परिवर्तन किया है। क्योंकि नाटकीय आख्यानवस्तु का निबन्धन नाटकीय नियमों की दृष्टि से, सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से तथा रस पेशलता की दृष्टि से तथा धीरोदात्तादि नायक के चरित्र की दृष्टि से किया जाता है। ये पाँचो ऐसे अनिवार्य तत्त्व हैं, जिसकी उपेक्षा करना किसी भी नाट्यकार के लिए सम्भव ही नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रव्यकाव्य की तरह दृश्यकाव्य के वर्ण-विषय की योजना में कवि स्वच्छन्द नहीं होता है।

नल-दमयन्ती विषयक मूल कथा में कवि द्वारा जिस-जिस स्थल विशेष में परिवर्तन किया गया है, वह स्थल विशेष इस प्रकार है— मूल कथा में वर्णित पुरुषों के द्वारा दमयन्ती के रूप सौन्दर्यादि का वर्णन नल के समीप करना, सखियों द्वारा नल का गुणानुकीर्तन दमयन्ती के समीप करना, इससे दोनों का परस्पर अनुराग बढ़ना, नल का कामासक्त होकर रनिवास के समीप वाले उद्यान में जाना, वहाँ स्वर्ण पंखों वाले हंसों में से एक हंस को पकड़ना, हंस का दमयन्ती के समीप जाकर नल का गुणानुकीर्तन करना, नल से विवाह करने हेतु दमयन्ती की स्वीकारोक्ति लेकर पुनः नल के समीप आकर कहना इत्यादि मूलकथांश को परिवर्तित कर कवि ने उसे इस रूप में प्रस्तुत किया कि राजा नल अपने मित्रों के साथ उद्यान में गये थे। जहाँ परस्पर वार्तालाप के क्रम में लम्बोदर नामक कापालिक आता है। उससे परिचय के क्रम में लम्बोदर तथा विदूषक के बीच विवाद बढ़ जाने के कारण दोनों आपस में द्वन्द्व युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं। यह देख राजा नल अपने मित्र को युद्ध से विरत करने के लिए कहते हैं। उसी समय लम्बोदर नामक कापालिक की काँख से वस्त्र में लिपटी हुई दमयन्ती की छायाप्रतिकृति के गिरने से उसे खोलकर देखने पर उसके विषय में राजा द्वारा विभिन्न प्रकार से विचार करने के प्रसङ्ग में मकरिका उस प्रतिकृति को देखकर नल को आश्चस्त करती है कि यह प्रतिकृति विदर्भनरेश भीम की पुत्री दमयन्ती की है।

उक्त स्थल में कवि द्वारा मूलकथांश को परिवर्तित करके उक्त रूप में प्रस्तुत करने का कारण है कि 'नलविलास' नाटक में राजा नल धीरोदात्त नायक के रूप में

१. महाभारत, वनपर्व, ७८/१-२९।

वर्णित हैं। धीरोदात्त नायक को कामासक्त रूप में वर्णित करना उसके चरित में अपकर्ष का द्योतक है। क्योंकि वह नायक धीरोदात्तत्व गुण से समन्वित है। पुरुषों और सखियों द्वारा परस्पर एक दूसरे के समीप गुण का कथन करने रूपी मूलकथांश में परिवर्तन इसलिए किया गया है कि नाटकीय आख्यानवस्तु का विभाजन अङ्कों में होता है। अङ्क की अपनी मर्यादा है, जिसमें प्रारम्भ में अल्प पात्रों का ही वर्णन रहता है। मूल कथांश को ग्रहण करने से पात्रों की संख्या अधिक हो जाती, जो अङ्क-नियम की दृष्टि से दोष युक्त है। और हंस विषयक मूलकथांश को लम्बोदर नामक कापालिङ्क द्वारा दमयन्ती की छाया प्रतिकृति के रूप में दर्शन को प्रस्तुत करने के पीछे अभिनय, मर्यादा की दृष्टि है। क्योंकि हंस विषयक कथांश श्रव्यकाव्य में तो वर्णन के लिए उपयुक्त है, पर अभिनय-मर्यादा की दृष्टि से वह सामाजिकों के लिए अस्वाभाविक है। इसलिए मूल कथा में दमयन्ती को नल से संयोग कराने के लिए हंस वृत्तान्त के स्थान पर विदर्भदेश की निवासिनी राजा नल की परिचारिका मकरिका के द्वारा नल से दमयन्ती का संयोग कराने की बात कही गई है। इससे सामाजिकों में उत्कण्ठा बढ़ती है कि अब यह मकरिका नल से दमयन्ती का संयोग किस प्रकार से करायेगी।

दमयन्ती के स्वयंवर का वृत्तान्त नारदमुख से सुनकर उसे प्राप्त करने की इच्छा से अग्नि, वरुण, यम के साथ इन्द्र का विदर्भदेश प्रस्थान करना, मार्ग में स्वयंवर में जा रहे नल से उन देवों की भेंट होना, राजा नल को उन देवों द्वारा दूत बनाकर दमयन्ती के पास यह कहने के लिए भेजना कि वह हम चारों देवों में से किसी एक को पति रूप में वरण करे, नल द्वारा दौत्यकार्य सम्पादन करने की स्वीकारोक्ति, विदर्भ देश जाकर दमयन्ती से अग्नि, वरुण, यम तथा इन्द्र की इच्छा कहना, दमयन्ती द्वारा उन देवों की उपेक्षा करना तथा नल को ही अपना पति मानना, वहाँ से नल का देवों के पास आकर दमयन्ती का कथन सुनाना तथा दमयन्ती द्वारा स्वयंवर में आने के लिए चारों देवों को आमन्त्रित करने की बात, स्वयंवर में पाँच नल को देखकर दमयन्ती का भ्रमित हो जाना, पुनः देवों से प्रार्थना करने पर देवों की कृपा से दमयन्ती द्वारा उन्हें पहचानना, नल के गले में वरमाला डालना, अपने लोक को जा रहे इन्द्रादि देवों को मार्ग में आ रहे कलि और द्वापर का मिलना, इन्द्रादि देवों के मुख से दमयन्ती-स्वयंवर समाप्ति का समाचार सुनकर दमयन्ती प्राप्ति का इच्छुक कलि का कुपित होना, क्रोधित होकर नल के राज्यादि का नाश करने की कलियुग द्वारा प्रतिज्ञा करना, अशुद्ध देखकर राजा नल के शरीर में प्रवेश करना, दूसरे रूप में पुष्कर के समीप जाकर नल से घूत-क्रीड़ा के लिए उत्साहित करना, घूत-क्रीड़ा में द्वापर की सहायता से राजा नल के राज्यादि को जीत लेना इत्यादि मूल कथाभाग को कवि द्वारा दूसरे रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

उस छाया प्रतिकृति के दर्शन के बाद राजा नल कलहंस नामक मित्र के साथ विदर्भदेश की भाषा को जानने वाली मकरिका को विदर्भदेश इसलिए भेजते हैं कि वे दोनों वहाँ जाकर दमयन्ती से वार्तालाप के प्रसङ्ग में उसके मनोगत भावों को जानें कि वह दमयन्ती राजा नल से विवाह करना चाहती है या उसने किसी दूसरे को अपना पति बनाने का निश्चय किया है। साथ ही यदि उसने किसी को मन से अपना पति नहीं माना है और मुझसे विवाह करना चाहती है, तो वह कौन सा साधन है जिसके द्वारा दमयन्ती रूपी स्त्री-रत्न की प्राप्ति मुझे होगी।

यहाँ मूल कथाभाग में इस रूप से परिवर्तन इसलिए किया गया है कि नाटक का उद्देश्य है पुरुषार्थ चतुष्टय को प्राप्त कराके प्रवृत्ति-निवृत्ति का उपदेश देना। इन्द्रादिदेव दिव्यपात्र हैं। उनके चरित्र का वर्णन करने में यह कठिनाई होगी कि मर्त्यचरित न होने के कारण उन सुख-दुःखात्मक संवेदनाओं का सामाजिक में प्रतिफलन नहीं होगा। दिव्य पात्रों में दुःख का अभाव होता है। अतः ऐसे चरित के निबन्धन से नाट्य में दुःख दूर करने के लिए प्रतिकार भी नहीं होगा। साथ ही दिव्यपात्र इन्द्रादि का मर्त्यलोक में रहने वाली दमयन्ती को प्राप्त करने की अभिलाषा का वर्णन करने से उनकी दिव्यता का फल क्या होगा? क्योंकि दिव्यपात्र तो अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हैं। अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होने के कारण देवताओं को दुष्प्राप्य वस्तुओं की प्राप्ति इच्छामात्र से हो जाती है। अतः उनके चरित्र के अनुसार आचरण सम्भव न होने से वह मनुष्यों के लिए उपदेश योग्य नहीं हो सकता। अतः नाटकीय आख्यान वस्तु की सरसता और प्रभविष्णुता को ध्यान में रखकर ही मूलकथा भाग को कवि द्वारा इस रूप में बदला गया है। तथा नाटक के प्रधान नायक को किसी का दूत रूप में प्रस्तुत करने से नाटकीय आख्यानवस्तु का वह अंश प्रधान नायक के उदात्तचरित का अपकर्षक है। कहा जा चुका है कि दिव्यपात्र अलौकिक शक्ति-सम्पन्न होते हैं। इच्छा मात्र से उन्हें दुष्प्राप्य वस्तु की प्राप्ति हो जाती है। इसीलिए कलि और द्वापर की दिव्यता को ध्यान में रखकर कलि द्वारा नल के राज्यभ्रंश रूपी वृत्तान्त को बदल कर कलचुरिपति चित्रसेन के साथ दमयन्ती का विवाह कराने की इच्छा वाले चित्रसेन का अनुचर कापालिक घोरघोण एवं लम्बोदर नामक कापालिक रूपी वृत्तांश की कल्पना कवि ने की है। और उस कापालिक घोरघोण की प्रतिज्ञा थी कि चित्रसेन के अतिरिक्त जो कोई दमयन्ती से विवाह करेगा मैं उसके राज्य को नष्ट कर दूँगा, जिसके फलस्वरूप राजा नल के राज्य का भ्रंश हुआ।

इसी प्रकार **नलविलास** नाटक में मूलकथा में वर्णित घृतक्रीड़ा में प्रवृत्त नल का राज्य हार जाने रूपी मूलकथांश को बदलकर राजा नल के पुत्र युवराज कूबर द्वारा घृतक्रीड़ा में राज्य हार जाने रूपी इतिवृत्त की कल्पना कवि ने की है। क्योंकि धीरोदात्त नायक को दुर्व्यसनी रूप में प्रस्तुत करना नाट्य-नियमों की दृष्टि से अनुचित है। तथा

नल के साथ दमयन्ती का संयोग कराने वाले हंस विषयक मूल कथांश को परिवर्तित कर लम्बस्तनी के इस वृत्तांश की योजना कि— राजा भीम ने कापालिक घोरघोण की इच्छानुसार दमयन्ती का विवाह कलचुरिपति चित्रसेन के साथ कराने का निश्चय किया था। इसलिए दमयन्ती का विवाह नल के साथ नहीं हो सकता, किन्तु लम्बस्तनी एक ऐसी स्त्री थी जो राजा भीम को अपने दृढ़ निश्चय से हटाकर दमयन्ती का विवाह नल के साथ कराने में समर्थ थी। इस हेतु दूत बनकर मकरिका के साथ विदर्भदेश को गये कलहंस ने लम्बस्तनी के प्रभाव को जानकर उसे अपने साथ राजा नल के समीप लाने की चेष्टा की। तत्पश्चात् उस लम्बस्तनी ने दमयन्ती दर्शन के इच्छुक राजा नल को अपनी माया से नल-दमयन्ती का संयोग कराया जिससे दमयन्ती नल को अपना पति मान लेती है और उन्हें अपने स्वयंवर में आने के लिए आमन्त्रित करती है। कवि द्वारा इस रूप में परिवर्तित कथा भाग की योजना का उद्देश्य जहाँ एक तरफ नाटक के प्रधान रस के अङ्ग रूप में वर्णित हास रस की योजना करना है, वहीं दूसरी तरफ इन्द्रादि देवों का दूत बनकर विदर्भदेश को गये नल को दमयन्ती द्वारा अपना पति मानकर इन्द्रादि देवों के साथ उन्हें स्वयंवर में आने के लिए आमन्त्रित करना रूपी मूल कथा-भाग के साथ तारतम्य बनाये रखना भी है।

जहाँ तक मूल कथा में वर्णित दमयन्ती स्वयंवर वृत्तान्त को बदलकर कवि ने स्वयंवर में आये हुए विभिन्न राजाओं का परिचय माधवसेन के द्वारा दमयन्ती को कराया है, इसका उद्देश्य है— प्रधान नायक के चरित का उत्कर्ष दिखाना, मूल कथा के अनुसार चेदिनरेश के वर्णन क्रम में चेदिनरेश दमयन्ती का मौसेरा भाई है, यह बताना तथा पतिव्रता धर्म का महत्त्व प्रतिपादित करना। यहाँ ध्यातव्य है कि मूलकथांश में इस प्रकार से परिवर्तन सामाजिक दृष्टि से किया गया है। साथ ही परिवर्तित स्वयंवर वृत्तान्त से जहाँ सामाजिक को पुराणकालीन राजाओं के परिचय का ज्ञान होता है, वहीं कवि के पौराणिक ज्ञान का भी परिचय मिलता है।

मूलकथा में वन में नल द्वारा दमयन्ती का त्याग बिना दोष दिखाये किया गया है, जो प्रधान नायक के चरित्र और रस का अपकर्षक है। किन्तु नाटक में ऐसे इतिवृत्त का विधान नहीं करना चाहिए जो प्रधान नायक के चरित्र का और रस का अपकर्षक हो। यदि वह वस्तुतः यथार्थ हो, तो भी उसकी अन्यथा रूप से कल्पना कर लेनी चाहिए। अतः नाटककार उसकी योजना चरित्र-चित्रण अथवा रस के अनुकूल करे अथवा मूलवृत्त के उस अंश को छोड़ ही दे। इसीलिए नलविलास नाटक में कवि ने कापालिक के प्रयोग के कारण धीरोदात्त नायक नल से दमयन्ती का परित्याग रूपी कथा भाग की योजना की है।

इसी प्रकार मूलकथा में वर्णित वन में नल द्वारा परित्याग कर देने के बाद नल का अन्वेषण करती हुई दमयन्ती का सार्थवाहों की भीड़ देखकर वहाँ जाना, वहाँ

दमयन्ती को देखकर कुछ लोगों का भय से इधर-उधर भागना तथा कुछ लोगों का उसके प्रति सहानुभूतियुक्त होना, उनके द्वारा दमयन्ती के विषय में पूछना, दमयन्ती द्वारा अपना परिचय देना तथा यह पूछे जाने पर कि आप लोग कहाँ जा रहे हैं यह पूछना, उन लोगों के गन्तव्य स्थान को जानकर सार्थवाहों के साथ चेदिदेश जाने का दमयन्ती द्वारा निश्चय करना तथा रात्रि में वन के मध्य सरोवर के समीप निद्रावस्था में वहाँ आये हुए हाथियों के द्वारा लोगों को मारा जाना, प्रातः काल यह देखकर दमयन्ती तथा बचे लोगों की खिन्नता और उन बचे लोगों के साथ दमयन्ती का चेदिदेश को प्रस्थान करना, वहाँ पहुँचने के बाद बालकों से घिरी दमयन्ती का रनिवास के समीप पहुँचना, उसे उस अवस्था में देखकर राजमाता द्वारा रनिवास में बुलाना, उसकी यथास्थिति को जानकर उसे राजभवन में रहने के लिए कहना, यह सुनकर दमयन्ती द्वारा अपने निमित्त राजमाता से प्रतिज्ञा करवाना, तत्पश्चात् नल और दमयन्ती के विषय में पूर्वघटित घटना को जानकर भीमनरेश द्वारा नल और दमयन्ती का अन्वेषण करने के लिए ब्राह्मणों को सभी दिशाओं में भेजना, इसी क्रम में सुदेव नामक ब्राह्मण का चेदिदेश पहुँचना वहाँ दमयन्ती को पहचान कर अपना परिचय देना, दोनों का परस्पर वार्तालाप तथा दमयन्ती के विलाप के विषय में सुनकर राजमाता द्वारा सुदेव से उसका तथा उस दीन-दशा को प्राप्त हुई स्त्री के विषय में पूछना, सुदेव से यथास्थिति का ज्ञान प्राप्त कर राजमाता का अधिक प्रसन्न होना तथा दमयन्ती को अपना परिचय देते हुए कि मैं तुम्हारी मौसी हूँ यह कहना, पश्चात् दमयन्ती द्वारा विदर्भदेश जाने की इच्छा व्यक्त करने पर चेदिनरेश की आज्ञा से विशाल सेना से घिरी दमयन्ती का विदर्भदेश पहुँचना, विदर्भदेश पहुँचकर माता की आज्ञा से नल का अन्वेषण कराने के लिए ब्राह्मणों को अपना कथन कह कर ब्राह्मणों से गाते हुए (दमयन्ती ने जो कुछ कथन कहकर ब्राह्मणों से गाते हुए विभिन्न दिशाओं में जाने के लिए कहा था उसे मूलकथा में वर्णित किया जा चुका है, इसिलए उस कथन को मूलकथा में ही देखना चाहिए) विभिन्न दिशाओं में भेजना, उन्हीं में से पर्णाद नामक ब्राह्मण का अयोध्या पहुँचना, उस पर्णादके मुख से दमयन्ती के कथन को सुनकर बाहुक (नल) का उसे उत्तर देना, यह उत्तर पाकर दमयन्ती द्वारा उस बाहुक के विषय में नल का अनुमान करना रूपी मूल कथा को कवि द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है—

मूलकथा में वर्णित वन में दमयन्ती का परित्याग करके बाहुक रूप में राजा नल अयोध्यानरेश दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) की नगरी में पहुँचते हैं। एक दिन राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) की आज्ञा से नटों ने नल दमयन्ती विषयक आख्यानवस्तु का अभिनय प्रारम्भ किया। इस अभिनय को देखने के लिए सपर्ण और जीवलक के साथ राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) जब सभा मण्डप में पहुँचे, तो उन्होंने उस अभिनय को देखने के लिए बाहुक को भी आमन्त्रित किया। बाहुक राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) की इच्छानुसार

उस सभामण्डप में जाता है और राजा की आज्ञा से अपना आसन ग्रहण करता है। तत्पश्चात् नटों द्वारा अभिनय आरम्भ होता, जिसमें वन में अकेली छोड़ दी गई दमयन्ती राजा नल को ढूँढती हुई एक सरोवर के समीप मूर्च्छित होकर गिर जाती है। उसी समय भीलों के झुण्ड में से एक आदमी जल की खोज में उस सरोवर के समीप आता है, और मूर्च्छित अवस्था में पड़ी दमयन्ती को देखकर वह अपने मन में विचार करके कि कहीं इसे इस अवस्था में हिंसक जीव खा न जाय अपने अन्य मित्रों को बुलाता है तथा जल छिड़ककर दमयन्ती को चेतना में लाता है। चैतन्य अवस्था में उस भील द्वारा दमयन्ती से उसका परिचय तथा इस अवस्था को उसने कैसे प्राप्त किया ऐसा पूछे जाने पर दमयन्ती सारी घटना कह सुनाती है। मैं इस वन में अपने स्वामी को ढूँढ रही हूँ यह कहकर अपने पति नल का अन्वेषण करने लगती है। इसी क्रम में उसके पैर में काँटा चुभ जाता है जिससे वह विह्वल होकर करुण विलाप करती हुई उस भील से अपने पैर के काँटे को निकालने के लिए कहती है। वह भील ज्यों ही काँटा निकालने के लिए प्रवृत्त होता है तभी दमयन्ती उसे यह कहकर रोक देती है कि तुम छोड़ दो, मैं स्वयं निकाल लूँगी क्योंकि पतिव्रता स्त्री के शरीर को परपुरुष द्वारा छूना अनुचित है। दमयन्ती के इस करुण विलाप को देखकर राजा नल जहाँ आश्चर्य चकित होते हैं वहीं राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) दमयन्ती के दुःख से अत्यन्त दुःखी होकर उससे कहते हैं कि हे देवि! जिस पापी ने अकारण तुम्हें वन में छोड़ दिया, उस दुष्टात्मा का नाम लेने योग्य नहीं है। इस घटना को विशेष रूप से मूलकृति **नलविलास** में ही देखना चाहिए। इसी प्रकार करुण विलाप करती हुई उस दमयन्ती ने वृक्षों की आड़ में एक सिंह को देखा। उसे देखकर दमयन्ती उस सिंह के पास जाती है और उससे कहती है कि— हे सिंह! या तो तुम मुझे मेरे पति नल का सन्देश कहकर प्रसन्न करो अथवा विरह व्यथा से जलते हुए मेरे इस शरीर को खाकर मेरे दुःखों का निवारण करो। यह देख अभिनय देखने के लिए उपस्थित राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) के साथ जीवलक और सपर्ण आदि तो अत्यन्त दुःखी हो ही गये साथ ही बाहुक रूप में वहाँ उपस्थित राजा नल भी सब कुछ भूल गये तथा दौड़कर उस सिंह को सम्बोधित कर कहने लगे कि— हे सिंह! इस अबला की दीन-दशा देखकर तुम्हें इसे खाना नहीं चाहिए, क्योंकि विपत्ति में पड़ी अबला की रक्षा करना ही समर्थ जन के लिए न्यायोचित है। किन्तु यदि भूख की क्षुधा तुम्हें अनुचित मार्ग पर प्रवृत्त होने से नहीं रोक रही है, तो इस अबला के बदले मुझे खाकर अपनी क्षुधा की तृप्ति करो। इस प्रकार से इस अभिनय का अन्त होता है और इसी समय विदर्भदेश से दमयन्ती द्वारा प्रेषित ब्राह्मण अपने आने की सूचना राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) को देता है।

यहाँ, दमयन्ती का चेदिदेश पहुँचने से लेकर बाहुक के विषय में पर्णाद से जानना रूपी मूलकथा में परिवर्तन करने के दो कारण हैं— प्रथम तो यह वृत्तान्त

आवश्यक होते हुए भी इतना विस्तृत है कि अभिनय की दृष्टि वह उपेक्ष्य है। क्योंकि प्रत्येक अङ्क के अभिनय का जो समयमान है, उसमें इसका समावेश कर पाना असम्भव है। द्वितीय यह कि ऋतुपर्ण के साथ सपर्ण, जीवलक तथा बाहुक रूप में उपस्थित नल के समक्ष उक्त अभिनय के द्वारा जहाँ नाटकीय मुख्य रस का पोषण किया गया वहीं विमर्शसन्धि की रक्षा की गई है। साथ ही सामाजिक दृष्टि से यह स्पष्ट कर दिया गया है कि— नल के साथ दमयन्ती का पुनर्मिलन निकट भविष्य में होने वाला है, क्योंकि इस कथानक से पूर्व दमयन्ती मिलन की आशा क्षीण हो गयी थी।

इसी प्रकार मूल कथा में वर्णित नलान्वेषण हेतु दमयन्ती द्वारा ऋतुपर्ण के यहाँ सुदेव नामक ब्राह्मण को भेजकर यह कहना कि कल सूर्योदय से पूर्व दमयन्ती अपने दूसरे पति का वरण करेगी अतः इससे पूर्व आप (ऋतुपर्ण) वहाँ निश्चित पहुँचें— इस मूल कथा की यथा स्थिति बनाये रखते हुए भी कवि ने विदर्भदेश को जा रहे सारथि रूप में नल और ऋतुपर्ण के बीच बहेड़े के वृक्ष आदि का विस्तृत प्रसङ्ग इसलिए छोड़ दिया कि नाटकीय आख्यानवस्तु में उसकी योजना का कोई औचित्य नहीं है। क्योंकि इससे नाटक का मुख्य प्रयोजन ही ओझल हो जाता। दूसरा यह कि अंक में दूर-देश गमनादि वृत्तान्त अप्रदर्श्य है। तथा राजा ऋतुपर्ण और सारथि बाहुक के साथ जीवलक के विदर्भ आगमन पर राजा भीम द्वारा राजा ऋतुपर्ण के आगमन का समाचार पूछे जाने के बाद का यह कथा भाग— दमयन्ती द्वारा केशिनी को बाहुक के पास भेजकर पर्णादि को कहे गये वचन को उससे पुनरावृत्ति करवाने से लेकर नल द्वारा बनाये गये मांस को केशिनी से मंगवाकर दमयन्ती का खाना तथा माता से आज्ञा लेकर दमयन्ती का नल के पास जाना, वहाँ जाकर अपना पूर्वोक्त प्रश्नों को बाहुक से पूछना रूपी अंश को बदलकर कवि द्वारा इसको इस रूप में प्रस्तुत करना कि— नगर के समीप दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) के साथ नल (बाहुक) जब पहुँचता है तो नगर में लोगों का इधर-उधर भ्रमना किसी अनिष्ट की आशंका से दधिपर्ण (ऋतुपर्ण) द्वारा नल से अयोध्या नगरी लौट जाने के लिए कहना, यह सुनकर नल का यह कथन कि इसके विषय में जब तक मैं अच्छी प्रकार से जान लेता हूँ, तब तक आप यहीं ठहरें। तत्पश्चात् एक वृद्ध ब्राह्मण को मार्ग में आता हुआ देखकर उसके समीप नल का जाना और उस कोलाहल के विषय में पूछना, ब्राह्मण से यथास्थिति जानकर उस स्थान को जाना जहाँ कलहंस, कपिञ्जला और मकरिका के साथ खड़ी दमयन्ती द्वारा नल मिलन की आशा के नष्ट हो जाने से लगायी गई चिता में अग्नि प्रज्वलित करके उसमें प्रवेश कर अपना जीवन समाप्त करने की इच्छा व्यक्त करना, यह देखकर नल द्वारा ऐसा सोचना कि सर्वनाश उपस्थित हो गया, पुनः चिता में प्रवेश करने का कारण पूछना तथा उक्त विषय में दमयन्ती द्वारा नल को बताना इस आख्यानवस्तु को प्रस्तुत

करने का उद्देश्य जहाँ अङ्क में अदर्शनीय शयन-आलिङ्गन-चुम्बन-स्नान-भोजन आदि-वस्तु की उपेक्षा करना है, वहीं निर्वहण सन्धि में अब्दुत रस की योजना की अनिवार्यता भी है।

इसके बाद नल-दमयन्ती के पुनर्मिलन की घटना से लेकर नगर वासियों तथा राजा भीम एवं दमयन्ती की माता के हर्ष का वर्णन मूल कथा में तथा नाटकीय आख्यान वस्तु में समान है। किन्तु विदर्भदेश में दमयन्ती के साथ राजा नल का रहना तथा उसके बाद सेना लेकर निषधदेश पर अधिकार पाने के लिए राजा नल का गमन इस मूल कथा और नाटकीय आख्यान वस्तु में समानता तो है, पर मूलकथा में वर्णित नल का एक मास तक विदर्भदेश में रहने के वृत्तान्त को कवि ने इसलिए छोड़ दिया कि एक अङ्क में एक ही दिन में घटित घटनाओं का चित्रण करना होता है। और एक दिन में समाप्त नहीं होने वाली घटना की सूचना अर्थोपक्षेपक द्वारा दी जाती है।

यहाँ विशेष रूप से ध्यातव्य है कि मूल कथा में जो उक्त प्रकार से कवि द्वारा परिवर्तन किये गए हैं, उनका मुख्य कारण नाट्यशास्त्रीय नियम हैं। क्योंकि नाटकीय आख्यानवस्तु का वह मुख्य प्रयोजन जो नाटक के आरम्भ में बीज रूप में उपन्यस्त होता है उसको ध्यान में रखकर ही नाटकीय आख्यान-वस्तु का निबन्धन करना पड़ता है। उस बीज रूपी कथांश से सम्बन्ध बनाये रखने के लिए ही बिन्दु आदि अर्थप्रकृति की योजना की जाती है। इस मुख्य बीज को देखकर उसे प्राप्त करने के लिए ही नायक का व्यापार आरम्भादि पञ्च-अवस्था से युक्त होता है। साथ ही नाटकीय आख्यान वस्तु को सुशृङ्खल एवं रसमय बनाने के लिए ही नाटक में मुखादि पञ्च सन्धियों की योजना की जाती है। दूसरे शब्दों में मुखादि सन्धियों से युक्त नाटकीय आख्यानवस्तु उसी प्रकार शोभन होती है, जैसे शरीर के अङ्गों का जोड़ (वनावट) सुन्दर होने से मनुष्य देखने में सुन्दर दिखाई पड़ता है। उक्त पञ्च अर्थप्रकृति पञ्चकार्यावस्था पञ्च सन्धि एवं सन्ध्यङ्गों के प्रयोग को ध्यान में रखकर ही मूलकथा के उस अंश को, जो आवश्यक तो है किन्तु नीरस होता है, उसकी सूचना के लिए अर्थोपक्षेपक का प्रयोग किया जाता है। साथ ही नाटकीय आख्यानवस्तु नटों के माध्यम से कथोपकथन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है इसलिए अनपेक्षित अंश का त्याग किया जाता है या इसकी सूचना दी जाती है। साथ ही नाटकीय आख्यानवस्तु का अभिनय जिस पर प्रधान रूप से आधृत होता है वह है— नाट्यशास्त्रीय-नियम, अभिनय की मर्यादा, सामाजिक-मर्यादा तथा आख्यानवस्तु की रसमयता एवं प्रभविष्णुता, जिसकी उपेक्षा करना किसी कुशल नाट्यकार के लिए सम्भव ही नहीं होता है। इसीलिए **महाभारत**, **रामायण** आदि से नाटकीय वस्तु के लिए मूल-कथा ग्रहण करके भी कवि उसमें परिवर्तन करता है। क्योंकि नाटक में वह अंश कभी भी प्रयोग के योग्य नहीं होता है, जो वस्तुतः यथार्थ होता है किन्तु नायक के चरित में अपकर्ष का द्योतक होता है। जैसे— **रामायण**

के अनुसार सुग्रीव के साथ युद्ध कर रहे बालि को मर्यादा पुरुषोत्तम राम बाण से मार देते हैं। यह अंश यथार्थ तो है पर राम के चरित्र का अपकर्षक है। इसलिए भवभूति ने महावीरचरित में इस अंश को इस रूप में प्रस्तुत किया कि पहले बालि राम को मारने के लिए आता है तब राम ने उस बालि को मार दिया।

जहाँ तक प्रधान पात्रों को जैसे नल (बाहुक), भीमनरेश, राजा दधिपर्ण (ऋतुपर्ण), जीवलक को छोड़कर शेष पात्रों का नाम बदल कर रखने का कारण— जैसे केशिनी, कपिञ्जला यह है कि अप्रधान पात्रों का नामकरण नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से रखा जाता है। इसलिए प्रधान पात्रों के नामों में परिवर्तन तो नहीं किया जाता, किन्तु सहायक पात्रों का नामकरण मूलकथा में वर्णित पात्रों के नाम से भिन्न रक्खा जाता है।

पात्र-परिचय

नल	निषधदेश का राजा
दमयन्ती	विदर्भदेश के राजा भीमरथ की पुत्री तथा राजा नल की पत्नी
किम्पुरुष	राजा नल का अमात्य
भीमरथ	विदर्भदेश का राजा
पुष्यवती	भीमरथ की पत्नी तथा दमयन्ती की माता
कलहंस	राजा नल का मित्र
खरमुख	विदूषक तथा राजा नल का मित्र
कोरक	राजा नल के भाण्डागार का रक्षक
सिंहलक	राजा नल के सैनिक
माकन्द	
शेखर	मत्तमयूर उद्यान का रक्षक
लम्बोदर	कापालिक घोरघोण का शिष्य
चित्रसेन	चेदि देश का राजा
मेषमुख	घोरघोण नामक कापालिक रूप में चित्रसेन का दूत
कोष्ठक	लम्बोदर नामधारी कापालिक, घोरघोण का शिष्य, चित्रसेन का दूत
मकरिका	पान लाने वाली, राजा नल की परिचारिका
कपिञ्जला	चाँवर हिलाने वाली तथा दमयन्ती की सखी
घोरघोण	कापालिक, चित्रसेन का गुप्तचर
लम्बस्तनी	कापालिक घोरघोण की पत्नी
कुरङ्गक	विदर्भदेश का सैनिक

मुकुल	राजा भीमरथ के उद्यान का रक्षक
कौशलिका	दमयन्ती की दासी
वसुदत्त	राजा भीमरथ का अमात्य
मङ्गलक } भद्र }	विदर्भदेश का सैनिक
माधवसेन	राजा भीमरथ के अन्तःपुर में कञ्चुकी
बल	काशीनरेश
विजयवर्मा	मधुराधिपति
दधिपर्ण	अयोध्या का राजा
सपर्ण	राजा दधिपर्ण का अमात्य
बाहुक	राजा दधिपर्ण का रसोईया (नल)
जीवलक	दधिपर्ण का सेवक
ऋतुपर्ण	अचलपुर का स्वामी
धनदेव	अचलपुर निवासी सार्थवाह
गन्धार } पिङ्गलक }	धनदेव के आदमी
भस्मक	कापालिक लम्बोदर

॥श्रीः॥

श्रीरामचन्द्रसूरिविरचितं नलविलासम्।

वैदर्भीरीतिमहं लभेय सौभाग्यसुरभितावयवाम्।

दमयन्तीवैरस्यं दिशति गिरां या परां लक्ष्मीम्॥१॥

(नान्द्यन्ते)

सूत्रधारः— (सप्रमोदम्)

कविः काव्ये रामः सरसवचसामेकवसति-
नलस्येदं हृद्यं किमपि चरितं धीरललितम्।

नलवियोगजन्य दमयन्ती का जो औदासीन्य है (उसका वर्णन करने के लिए) मैं (कवि रामचन्द्रसूरि) शृंगार, हास्य और करुण रस से सुगन्धित (सुसज्जित) पदों वाली वैदर्भीरीति को प्राप्त करूँ, जो कवि की वाणी को अत्यन्त शोभा देती है॥१॥

(नान्दी के बाद)

सूत्रधार— (हर्षके साथ)

काव्य में शृंगारादि रसों से युक्त वाणी (वाक्यों) के एकमात्र आधार कवि रामचन्द्रसूरि ही हैं तथा नल कृत यह धीरललित चरित (भी) अनिर्वचनीय रूप से मनोहर है। अभिनय के लिए आदेश प्राप्त कर चुका मैं समस्त नट-अभिनय कला में पूर्ण दक्ष हूँ। (अतः) सहृदयों के ये अर्थात् सामने उद्यान में स्थित जो युगादिदेव हैं वे प्रसन्न हों (सम्प्रति हम लोगों के लिए) यही करणीय है॥२॥

टिप्पणी :

१. 'सूत्रधार' 'नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यभिधीयते।

सूत्रं धारयते यस्तु सूत्रधारः स उच्यते॥”

नाट्य के उपकरणों को सूत्र कहते हैं और उसका व्यवस्थापक सूत्रधार शब्द से अभिहित होता है।

समादिष्टो नाट्ये निखिलनटमुद्रापटुरहं

प्रसन्नः सभ्यानां कटरि! भगवानेष स विधिः ॥२॥

तद् गृहं गत्वा रङ्गोपजीविनः प्रगुणयामि (इति परिक्रामति। पुरोऽवलोक्य)
कथमयमित एवाभिपतति वयस्यो मन्दारः!

(प्रविश्य)

नटः— भाव! दत्तः कोऽपि सामाजिकैरभिनयादेशः?

सूत्रधारः— दत्तः श्रीमदाचार्यहेमचन्द्रस्य शिष्येण रामचन्द्रेण विरचितं
नलविलासाभिधानमाद्यं रूपकमभिनेतुमादेशः।

नटः— भाव! एतस्यां रामचन्द्रकृतौ सम्भाव्यते कोऽपि सामाजिकानां
रसास्वादः

सूत्रधारः— मारिष! सम्भाव्यत इति किमुच्यते? यतः—

अतः मैं घर में जाकर रङ्गमञ्च पर अनुकार्य के क्रिया कलापों का अनुकरण करने वाले अनुकर्ताओं (नटों) को तैयार करता हूँ (यह कहकर घूमता है। सामने देखकर) अरे, यह तो मन्दार नामक मेरा मित्र इधर ही आ रहा है।

(रङ्गभूमि में प्रवेश करके)

नट— हे आर्य! क्या सामाजिकों (सहृदयों) ने अभिनय करने का आदेश दिया?

सूत्रधार— हाँ, श्रीहेमचन्द्राचार्य के शिष्य कवि रामचन्द्रसूरि रचित नलविलास नामक कृति (दृश्यकाव्य), जो रूपकों का आदि भेद, अर्थात् नाटक है उसका अभिनय करने का आदेश दिया है।

नट— आर्य! कवि रामचन्द्रसूरि की कृतियों में सामाजिक (सहृदयों) के लिए रसास्वादन की कोई सम्भावना है?

सूत्रधार— आर्य! अरे, सम्भावना है इस प्रकार से क्यों कह रहे हो? क्योंकि—

नवीन कल्पना और उक्तियों से मधुर काव्यों की रचना करने वाले आलस्यरहित मुरारि आदि न जाने कितने कवि हुए हैं, पर नाट्य के प्राणभूत रसों को चरमोत्कर्ष

टिप्पणी— 'कटरि'— आश्चर्य या प्रशंसा अर्थों का द्योतक अव्यय।

प्रबन्धानाधातुं नवभणितिवैदग्ध्यमधुरान्
 कवीन्द्रा निस्तन्द्राः कति नहि मुरारिप्रभृतयः।
 ऋते रामान्नान्यः किमुत परकोटौ घटयितुं
 रसान् नाट्यप्राणान् पटुरिति वितर्को मनसि नः॥३॥

अपरं च—

प्रबन्धा इक्षुवत् प्रायो हीयमानरसाः क्रमात्।
 कृतिस्तु रामचन्द्रस्य सर्वा स्वादुः पुरः पुरः॥४॥

नटः भाव! अयमर्थः सत्य एव। यतः—

सङ्ख्यायामिव काकुत्स्थ-यादवेन्द्रप्रबन्धयोः।
 वर्धमानैर्गुणैरङ्काः प्रथमानतिशेरते॥५॥

किन्तु रघु-यदुचरितं निसर्गतोऽपि रमणीयम्, अतस्तत्र सुकरो
 रसनिवेशः। नलचरितं तु न तथा, ततः साशङ्कोऽस्मि।

तक पहुँचाने में समर्थ रचना को प्रस्तुत करने वाले तो कवि रामचन्द्रसूरि ही हैं, अन्य नहीं इसलिए हमें मन में सन्देह नहीं करना चाहिए॥३॥

और भी—

प्रायः प्रबन्ध (दृश्यकाव्य तथा श्रव्यकाव्य) क्रम से गन्ने की तरह (प्रतिपर्व) हीयमान, अर्थात् नीरस होते जाते हैं, परन्तु कवि रामचन्द्रसूरि की सभी कृतियाँ आगे-आगे (उत्तरोत्तर) रसास्वादन कराने वाली हैं॥४॥

नट- आर्य! यह बात सच है। क्योंकि—

संख्याओं की तरह रघुवंशी और यदुवंशियों के चरित को लेकर बनाये गये प्रबन्धों (दृश्यकाव्य एवं श्रव्यकाव्य) में (उनके) गुणों के आधिक्य से अङ्क (सर्ग) पूर्वपूर्ववर्ती अंकों से बढ़कर विस्तार को प्राप्त करते (जाता) है॥५॥

किन्तु रघुवंशी और यदुवंशियों का चरित्र नैसर्गिक होने से भी रमणीय है, इसलिए उनके चरितवाले प्रबन्धों में रसाभिनवेश, अर्थात् रस की योजना करना सरल है। परन्तु नल का चरित्र ऐसा नहीं है। (रघुवंशी और यदुवंशियों की तरह विलक्षण नहीं है) इसलिए सशङ्कित हूँ।

सूत्रधारः— मारिष! मा शङ्किष्ठाः

श्रुतीनां पीयूषं कविकुलगिरां कीर्तिपटहो
रसापीतेः पात्रं रघु-यदुचरित्रं विजयते।
परं किञ्चित् किञ्चिन्नलललितमप्येतदमृत-
स्रवन्तीं श्रोतृणां श्रवसि विनिधातुं प्रभवति।।६।।

नटः— (विमृश्य) भाव! अयं कविः स्वयमुत्पादक उताहो परोपजीवकः?

सूत्रधारः— अत्रार्थे तेनैव कविना दत्तमुत्तरम्—

जनः प्रज्ञाप्राप्तं पदमथ पदार्थं घटयतः
परध्वाध्वन्यान् नः कथयतु गिरां वर्त्तनिरियम्।
अमावास्यायामप्यविकलविकासीनि कुमुदा-
न्ययं लोकश्चन्द्रव्यतिकरविकासीनि वदति।।७।।

सूत्रधार— आर्य! शंका करने की कोई आवश्यकता नहीं है—

श्रुतियों में अमृत, कवियों की वाणी का यश रूपी नगाड़ा, रस पीने का पात्र स्वरूप रघुवंशी एवं यदुवंशियों का चरित (तो) सर्वोत्कृष्ट है ही, परन्तु शृङ्गारादि रसों (की योजना) से सुन्दर बना हुआ नलचरित अमृत बहाती हुई (कवि की) वाणी (को) श्रोताओं के कानों में स्थापित करने में समर्थ है।।६।।

नट— (मन में विचार करके) आर्य! ये जो कवि रामचन्द्रसूरि हैं, उन्होंने स्वयम् इस 'नलविलास' नामक कृति को बनाया है अथवा किसी दूसरे (कवि) की (कृति) की सहायता ली है?

सूत्रधार— इसी का निराकरण करने के लिए तो कवि रामचन्द्रसूरि ने स्वयं कहा है—

(यद्यपि) हम अपनी बुद्धि में प्रस्फुटित नवीन पद-पदार्थों की रचना करते हैं (फिर भी) लोग (हमें) दूसरों के मार्ग का अनुगमन करने वाला ही कहते हैं तो कहें, ऐसा तो संसार में कहा ही जाता है, (क्योंकि) लोगों के द्वारा यह भी कहा जाता

टिप्पणी— 'अमावास्या'— अमा सह वसतः चन्द्र-सूर्यौ यस्यां तिथौ सा अमावास्या।

अपि च शपथप्रत्येयपदपदार्थसम्बन्धेषु प्रीतिमादधानं जनमवलोक्य
जातखेदेन तेनेदं चाभिहितम्—

स्पृहां लोकः काव्ये वहति जरठैः कुण्ठिततमै-

र्वचोभिर्वाच्येन प्रकृतिकुटिलेन स्थपुटिते।

वयं वीथीं गाढुं कथमपि न शक्ताः पुनरिमा-

मियं चिन्ता चेतस्तरलयति नित्यं किमपि नः॥८॥

नटः— (क्षणं विमृश्य) भाव! अद्य नटी विषादिनी।

सूत्रधारः— जानासि किमपि विषादस्य कारणम्?

नटः— जानामि। या भवत्पुत्री कुन्तला नाम सा भर्त्रा स्वगृहान्निर्वासिता।

है कि कुमुद चन्द्रमा के सम्पर्क से ही खिलता है, किन्तु कुमुद तो चन्द्रमा से रहित अमावास्या की रात में भी खिलता है, (इसलिए लोगों की बात विश्वसनीय नहीं है)॥७॥

और भी, प्रतिज्ञापूर्वक जानने के योग्य पद-पदार्थ के सम्बन्ध में ही प्रीति रखने वाले जन (कवि-समूह) को देख खिन्न होकर उन्होंने (कवि रामचन्द्रसूरि ने) कहा भी है—

इस लोक में (प्रायः कवि) काव्य में (वर्णनीय वस्तु की) प्रबल इच्छा को अर्थाभिव्यक्ति में अशक्त वाणी के द्वारा (काव्य में) कहे जाने योग्य वर्णनीय वस्तु की नैसर्गिक स्थिति को वक्रता के द्वारा चित्रित कर (काव्य में) परिपक्वता लाते हैं, परन्तु हम उस मार्ग का अवगाहन करने में किसी प्रकार से भी समर्थ नहीं हैं। यही चिन्ता हमारे चित्त (हृदय) को हमेशा कुछ विचलित करती (रहती) है॥८॥

नट— (क्षणभर अपने मन में विचारकर) आर्य! आज नटी (हमारी पत्नी) विषादग्रस्त है।

सूत्रधार— उसके विषाद का कोई कारण जानते हो?

नट— जानता हूँ। कुन्तला नामक जो तुम्हारी पुत्री है वह अपने पति के द्वारा घर से निकाल दी गई है।

सूत्रधारः— हुं! कुन्तला भर्त्रा गृहान्निर्वासिता?

नटः— अथ किम्।

सूत्रधारः— (विमृश्य) अवद्यं किमप्युद्भाव्य उताहो मुधैव?

नटः— मुधैव।

सूत्रधारः—अनवसरस्तर्हि विषादस्य। किञ्च कृतेनापि विषादेन सा गृहप्रवेशं न लभते। यतः—

न स मन्त्रो न सा बुद्धिर्न स दोष्णां पराक्रमः।

अपुण्योपस्थितं येन व्यसनं प्रतिरुध्यते।।९।।

यदि च सा निरवद्या, तदा तां पुनरपि पतिः सम्भावयिष्यति।

सूत्रधार— क्या, कुन्तला पति के द्वारा घर से निकाल दी गई?

नट— और नहीं तो क्या?

सूत्रधार— (मन में विचार कर) अच्छा, तो कोई दोष दिखाकर वह निकाली गई या व्यर्थ ही?

नट— बिना दोष दिखाये ही निकाल दी गई।

सूत्रधार— तब तो उसके विषादग्रस्त होने का कोई औचित्य नहीं है। और उसके विषादग्रस्त होने से भी पुत्री कुन्तला अपने पति के घर में प्रवेश प्राप्त नहीं कर सकती है। क्योंकि—

न तो ऐसा कोई मन्त्र है, न तो ऐसी कोई बुद्धि है और न तो भुजाओं का ऐसा कोई पराक्रम ही है, जिसके द्वारा पाप से उपस्थित पीड़ा (कष्ट) को रोका जा सकता है।।९।।

और यदि वह दोषरहित है, तो पुनः उस (कुन्तला) के पति उसका सम्मान करेंगे (उसे स्वीकार कर लेंगे)।

नट— (आर्य!) इस प्रकार की घटना पहले भी घट चुकी है। किन्तु तब की बात कुछ और थी, क्योंकि उस समय छोड़ दिये जाने पर भी वह गृहस्वामिनी बनी

नटः— पुराप्ययमर्थो 'जातोऽस्ति। किन्तु परमं गृहाधिपत्यमवाप्य साम्प्रतं सा कर्मकरवृत्त्या तिष्ठतीति नटी विषादमुद्रहति।

सूत्रधारः— (साक्षेपम्) मारिष! मारिष! त्वमप्येवमभिदधासि! ननु—

अकृताखण्डधर्माणां पूर्वे जन्मनि जन्मिनाम्।

सापदः परिपच्यन्ते गरीयस्योऽपि सम्पदः।।१०।।

(नेपथ्ये)

वयस्य कलहंस! परमेश्वरस्य युगादिदेवस्य सपर्यया वयमतीव श्रान्ताः। तदादेशय खरमुखम्। येनास्मद्विश्रामहेतुं सच्छायं कमप्युद्यानप्रदेशमवलोकयति।

सूत्रधारः— (समाकर्ण्य) कथं नलनेपथ्यधारी नटो वदति? तदेहि मारिष! वयमप्यनन्तरकरणीयाय सज्जीभवाम।

(इति निष्कान्ती)

हुई थी। परन्तु अब तो वह मात्र एक दाई के रूप में रह रही है, इसीलिए हमारी पत्नी खिन्नमना है।

सूत्रधार— (आक्षेपपूर्वक) आर्य! तुम भी ऐसा कह रहे हो। निस्सन्देह—

जिन देहधारियों के द्वारा पूर्व जन्म में अखण्ड धर्म नहीं किया गया है उनकी विशाल सम्पत्तियाँ भी विपत्ति का कारण ही होती हैं।।१०।।

(नेपथ्य में)

मित्र कलहंस! भगवान् युगादिदेव की पूजा से हम अत्यन्त थक चुके हैं, इसलिए खरमुख को आदेश दो, जिससे वह हमारे विश्राम के लिए घनी छाया वाले उद्यान के किसी भाग को देखे।

सूत्रधार— (सुनकरके) अरे, यह तो नलवेषधारी नट बोल रहा है? इसलिए आर्य! आओ, हमलोग भी अगला कार्य करने के लिए तैयार होंगे।

(ऐसा कहकर दोनों निकल जाते हैं)

आमुखम्।

(ततः प्रविशति रजा कलहंसादिकश्च परिवारः)

राजा- (वयस्य कलहंस इत्यादि पुनः पठति)

कलहंसः- हंहो! खरमुख! गवेषय कमपि देवस्य विश्राम-
हेतुमारामप्रदेशम्। (प्रविश्य)

विदूषकः- (१) भो कलहंस! अणेगकरालवालविहुरे आरामकुहरे
एयंमि एगागी भयामि, ता न गवेसइस्सं।

राजाः- (स्मित्वा) वयस्य! महावीरः खल्वसि, ततस्त्वमेव (वं)
विभेषि।

विदूषकः- (२) साहु पियवयस्सेण सुमराविदम्हि। मए जाणिदं
अहं भोयणलंपडो बंभणो न गवेसइस्सं (इति परिक्रामति)

(प्रस्तावना समाप्त)

(पश्चात् कलहंसादि परिजन के साथ राजा नल प्रवेश करता है)

राजा- (मित्र कलहंस)! 'परमेश्वरस्य युगादिदेवस्य,' इत्यादि वाक्य का पुनः
उच्चारण करता है।)

कलहंस- अरे खरमुख! महाराज के विश्राम हेतु उद्यान के किसी प्रदेश का
अन्वेषण करो। (प्रवेश करके)

विदूषक- अरे कलहंस! अनेक प्रकार के भयंकर सर्पों से व्याप्त बिलवाले इस
जंगल में मैं अकेला डरता हूँ, अतः अन्वेषण नहीं करूँगा।

राजा- (हँसकर) मित्र! तुम तो बहुत वीर हो, फिर भी तुम इस प्रकार से
डरते हो।

विदूषक- प्रिय मित्र के द्वारा अच्छे समय में स्मरण किया गया हूँ। (हाँ,हाँ)
जानता हूँ कि मैं भोजन रसिक ब्राह्मण हूँ, अतः (विश्राम स्थान का) अन्वेषण नहीं
करूँगा। (ऐसा कहकर धूमता है)

(१) भो कलहंस! अनेककरालव्यालविधुरे आरामकुहरे एतस्मिन्
एकाकी विभेमि, तन्न गवेषयिष्यामि।

(२) साधु प्रियवयस्येन स्मारितोऽस्मि। मया ज्ञातम्, अहं भोजनलम्पटो
ब्राह्मणो न गवेषयिष्यामि।

राजा- (समतादवलोक्य कलहंसं प्रति) **कटरि! आराममण्डनानां तरुखण्डानां नेत्रपात्रैकलेहाः कोऽपि चारिमा। तथाहि-**

आपाकपिञ्जरफलोत्करपिङ्गभासो

भास्वत्करप्रसररोधिगुलुञ्छभाजः।

कूजत्पिकीकुलकुलायकलापवन्तः

प्रीणन्ति पश्य *पथिकान् सहकारवृक्षाः।।११।।

विदूषकः (१) एदं उज्जानकेलिसरसीसीकरासारसिणिद्धच्छायं तरुखंडं, ता इत्थ एदु पिअवयस्सो।

राजा- (विलोक्य स्वगतम्) **समुचितोऽयं प्रदेशः। पवित्र-सरसप्रदेशप्रकाशनीयः खलु शुभोदकः स्वप्नः।** (प्रकाशम्, अपवार्य कलहंसं प्रति) **किमद्यापि चिरयति नैमित्तिकः?**

कलहंसः- **एष इदानीमायाति।**

राजा- (सभी तरफ देखकर कलहंस से) **अहा! उद्यान को शोभित करने वाले वृक्षों की, नयन रूपी पात्र से चाटने योग्य, अपूर्व शोभा है। जैसा कि-**

देखो, पूर्णरूप से पके हुए सुनहरे फलों के ढेर से पिङ्गल कान्ति वाले सूर्य की किरणों के विस्तार को रोकने के लिए जिन्होंने गुच्छे का रूप धारण कर लिया है, तथा जहाँ शब्द करते हुए कोकिल समूह अपने खोंतों में आलाप कर रहे हैं, ऐसे आम्रवृक्ष पथिकों को आनन्दित कर रहे हैं।।११।।

विदूषक- यह उद्यान के ब्रीडा से सरोवर के जलकणों के धारासम्पात से स्निग्ध छाया वाला वृक्ष समूह है, अतः प्रिय मित्र यहाँ आवें।

राजा- (देखकर अपने मन में) यह स्थान तो बहुत ही उपयुक्त है। यह पवित्र तथा सुन्दर स्थान भविष्य में शुभ फल प्रदान करने वाला, जो मेरा स्वप्न है, उसके प्रकाशन के योग्य है। (प्रकट में, अलग हटकर कलहंस से) नैमित्तिक अभी तक नहीं आया है?

कलहंस- वह तो आ ही रहा है।

(१) एतदुद्यानकेलिसरसीसीकरासारस्निग्धच्छायं तरुखण्डम्, तदत्रैतु प्रियवयस्यः।

राजा- (समन्ततो विलोक्य)

दात्युहकुक्कुभकपिञ्जलचक्रवाक-

सारङ्गभृङ्गकलकूजितमञ्जुकुञ्जाः।

उद्यानकेलिसरसीनवफुल्लमल्ली-

वल्लीगृहाङ्गणभवो रमयन्ति चेतः॥१२॥

(प्रविश्य)

प्रतीहार:- देव! निषधाधिपते! एको ब्राह्मणो द्वारि वर्तते।

राजा- (स्वागतम्) नैमित्तिकः खल्वयम्। (प्रकाशम्) वयस्य! क्षणमेकमिदानीं मङ्गलाभिधायिना भवता भाव्यम्।

विदूषक:- (सरोषम्) (१) किं अहं तए सव्वदा अमंगलभासगो जाणिदो? ता न इत्थ चिट्ठीस्सं। (इति गन्तुमिच्छति)

राजा- वयस्य! न गन्तव्यम्।

राजा- (चारों तरफ देखकर)

जल-कुक्कुट, जंगली मुर्गा, पपीहा, चक्रवाक, कोयल तथा भौरों के कलरव से मनोहर लता समूह, क्रीड़ा-वाटिका का सरोवर (तथा) नवीन खिली हुई चमेली लताओं से निर्मित घर के आँगन की भूमि चित्त को आनन्दित कर रही है॥१२॥

(प्रवेश करके)

प्रतीहार- हे महाराज निषध देश के स्वामि! द्वार पर एक ब्राह्मण (खड़ा) है।

राजा- (मन ही मन) निश्चित रूप से यह (ब्राह्मण) नैमित्तिक है। (प्रकट में) मित्र! अब कुछ देर के लिए आप मङ्गलभाषी बनें।

विदूषक- (क्रोध के साथ) तो क्या (अबतक) मैं तुम्हारे द्वारा हमेशा अमङ्गलभाषी ही जाना गया? तो मैं यहाँ नहीं ठहरूँगा (यह कहकर जाना चाहता है)।

राजा- मित्र! मत जाओ।

(१) किमहं त्वया सर्वदाऽमङ्गलभाषको ज्ञातः ततो नात्र स्थास्यामि।

विदूषकः—(१) न तुह सयासे वि चिद्विस्सं, किंतु गरुअनिअबंभणीए
चलणाण सेविस्सं। (इति गन्तुमिच्छति)

कलहंसः— खरमुख! यदादिशति देवस्तत् क्रियताम्।

(विदूषको निःश्वस्य यथास्थानमुपविशति)

राजा— (स्वगतम्) यथाऽयमकाण्डे कुपितः प्रसन्नश्च, तथा ज्ञायते
प्रत्यूहगर्भः स्वप्रार्थः तथापि यत्रैमित्तिको व्याख्यास्यति तत् प्रमाणम्।
(प्रकाशम्) प्रियङ्कर! शीघ्रं प्रवेशय।

प्रतीहारी— यदादिशति देवः (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

(प्रविश्य)

नैमित्तिकः— स्वस्ति महाराजाय।

विदूषक— नहीं, अब मैं तुम्हारे पास नहीं रहूँगा, अपि तु अपनी गौरवशाली
पत्नी ब्राह्मणी के चरणों की सेवा करूँगा (यह कहकर जाना चाहता है)।

कलहंस— खरमुख! महाराज की जैसी आज्ञा है तदनु रूप करो।

(विदूषक जोर से साँस लेकर यथास्थान बैठ जाता है)

राजा— (मन ही मन) जिसप्रकार से यह अनवसर में कुपित हो जाता, और
प्रसन्न हो जाता है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि मेरे स्वप्न का फल विघ्न युक्त
है। फिर भी, नैमित्तिक जो (कुछ इस विषय में) व्याख्यान करेगा, वही प्रमाण होगा।
(प्रकट में) प्रियङ्कर! (द्वार पर खड़े ब्राह्मण को) शीघ्र ले आओ।

प्रतीहारी— महाराज की जैसी आज्ञा (यह कह कर निकल जाता है)।

(प्रवेश कर)

नैमित्तिक— महाराज का कल्याण हो।

(१) न तव सकाशेऽपि स्थास्यामि, किन्तु निजगुरुब्राह्मण्याश्चरणौ
सेविष्ये।

राजा- इदमासनमास्यताम्। (नैमित्तिक उपविशति) अद्यास्मा-
भिस्त्रियामातुर्ययामचतुर्भागे स्वप्नो दृष्टः। यथा कुतोऽप्यागत्या-
स्मत्करतलमारूढा प्रथममेका मुक्तावली, पुनः प्रभ्रष्टा, पुनरप्यस्मा-
भिरादाय कण्ठे निवेशिता। ततो वयं तथा प्रकामं कान्तिमन्तः सञ्जाताः।

नैमित्तिकः- (विमृश्य) देव! प्रशस्ततमोऽयं स्वप्नः। स्त्रीरत्नलाभेन
महता प्रतापेन च फलिष्यति। किन्तु प्रत्यूह- (इत्यर्थोक्ते सभयम्)

राजा-दैवज्ञ! मा भैषीर्यथाज्ञातमावेदय।

नैमित्तिकः- किन्तु प्रत्यूहगर्भः।

विदूषकः- (दण्डमुद्यम्य) (१) अरे दासीए पुता! नेमित्तिआ! खरमुहे
वि सन्निहिदे पियवयस्सस्स पच्चूहो?

राजा- इस आसन पर विराजिये। (नैमित्तिक बैठ जाता है) आज मैंने रात्रि के
चौथे पहर के चतुर्थ भाग में एक स्वप्न देखा। जहाँ कहीं से एक मुक्तावलि पहिले
मेरी हथेली पर आई, पुनः गिर गयी, फिर मैंने उसे लेकर गले में पहन लिया। पश्चात्
उस मुक्तावलि के कारण मैं अत्यधिक कान्तिमान् हो गया।

नैमित्तिक- (मन में विचारकर) महाराज! यह स्वप्न तो बहुत उत्तम है। और,
स्त्रीरूपी रत्न की प्राप्ति से आप तेज, धन तथा सैन्य से अधिक सम्पन्न हो जायेंगे।
किन्तु विघ्न- (भयभीत होकर आधा ही उच्चारण करता है)।

राजा- हे दैवज्ञ! डरें नहीं, आप जो जानते हैं, कहें।

नैमित्तिक- किन्तु (स्वप्न) विघ्नयुक्त है।

विदूषक- (डण्डा उठाकर) अरे दासी-पुत्र नैमित्तिक! खरमुख के रहते प्रियमित्र
का कार्य विघ्नयुक्त (यह तुम क्या कह रहे हो)?

(१) अरे दास्याः पुत्र! नैमित्तिक! खरमुखेऽपि सन्निहिते प्रियवयस्यस्य
प्रत्यूहः?

टिप्पणी- 'प्रताप'— "स प्रतापः प्रभावश्च यत्तेजः कोशदण्डजम्" इत्यमरः।

टिप्पणी- 'दैवज्ञ' "सांवत्सरो ज्यौतिषिको दैवज्ञगणकावपि। स्युर्मौहूर्तिकमौहूर्तज्ञानिकार्तान्तिका
अपि।" इत्यमरः

टिप्पणी- 'खर.'— "चक्रीवन्तस्तु वालेया रासभा गर्दभाः खराः" इत्यमरः।

राजा- अस्तु प्रत्यूहगर्भः, पर्यन्ते चेच्छुभोदकः।

नैमित्तिकः- कः सन्देहः?

राजा- दैवज्ञ! स्वप्नार्थपरिज्ञानप्रत्ययहेतुं कमप्यचिर-
भाविनमर्थमावेदय।

नैमित्तिकः- परमप्रीतिहेतुरचिरादेव देवस्य कोऽप्यर्थः सम्पत्स्यते।

राजा- (विमृश्य) कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

पुरुषः- एषोऽस्मि। आज्ञापयतु देवः।

राजा- अये सिंहलक! दर्शय मत्प्रसादस्य फलं नैमित्तिकाय।

सिंहलकः- यदादिशति देवः। (इत्यभिधाय सनैमित्तिको निष्क्रान्तः)

(नेपथ्ये)

राजा- अच्छा, विघ्नयुक्त है, किन्तु अन्त में शुभफल (देने) वाला है।

नैमित्तिक- इसमें क्या सन्देह?

राजा- हे दैवज्ञ! स्वप्नार्थ के सम्यक् ज्ञान का जो निश्चित हेतु है तथा उस हेतु से जिस किसी अभीष्ट फल की प्राप्ति होने वाली है उसे शीघ्र कहें (बतायें)।

नैमित्तिक- महाराज की परमप्रीति का जो कारण है, उस अपूर्व फल को यथाशीघ्र प्राप्त करेंगे।

राजा- (मन में विचार कर) अरे! यहाँ कोई है?

(प्रवेश करके)

पुरुष- मैं हूँ। महाराज आज्ञा दें।

राजा- अरे सिंहलक! मेरी प्रसन्नता का फल नैमित्तिक को दिखाओ (अर्थात् दो)।

सिंहलक- महाराज की जैसी आज्ञा (यह कहकर सिंहलक और नैमित्तिक चले जाते हैं)

(नेपथ्य में)

कोऽत्र भो? निवेद्यतां निषधाधिपतयेऽस्मदागमनम्।

राजा- (समाकर्ण्य) वयस्य! विलोकय गत्वा कोऽयम्।

विदूषकः(१) जं आणवेदि भवं

(इत्यभिधाय निष्क्रम्य, ससम्भ्रमं प्रविश्य)

भो लहं उत्थेहि उत्थेहि, जेण पलायम्ह।

राजा- विश्रब्धमभिधीयतां किं भयस्य कारणम्।

विदूषकः- (२) एगो पिसाओ दुवारे चिड्ढदि।

राजा- असम्भावनीयोऽयमर्थः। कुतो नामात्र भगवद्युगादि-
देवतायतनपावने वने पिशाचानां सम्भवः?

विदूषकः- (सरोषम्) (३) युगादिदेवावट्टंभेण तुज्झे इह ज्जेव
चिड्ढध।

अरे! यहाँ कोई है? राजा नल से मेरे आगमन का समाचार कहो।

राजा- (सुनकर) मित्र! जाकर देखो कि यह कौन है?

विदूषक- आपकी जो आज्ञा।

(यह कहकर जाकर के, पुनः घबराहट के साथ प्रवेश कर)

अरे! उठो, शीघ्र उठो जिससे भाग चलें।

राजा- शान्त होकर कहो कि भय का क्या कारण है?

विदूषक- दरवाजे पर एक पिशाच खड़ा है।

राजा- यह तो सर्वथा असम्भव है। भगवान् युगादिदेव के मन्दिर से पवित्र
इस उद्यान में पिशाच का होना कैसे सम्भव है?

विदूषक- (क्रोध के साथ) युगादिदेव के सहारे तुम लोग यहीं ठहरो।

(१) यदाज्ञापयति भवान्। भो! लघूत्तिष्ठोत्तिष्ठ, येन पलायामहे।

(२) एकः पिशाचो द्वारे तिष्ठति।

(३) युगादिदेवावष्टम्भेन यूयमिहैव तिष्ठत।

राजा- वयस्य! क्षणं मर्षय यावत् सम्यग् निर्णयामि।

विदूषकः-(१) भो! ता न निस्सरिस्सं। नियबंभणीचलणसमरणेण नट्टं मह भयं।

कलहंसः- (विहस्य) अतीव ब्राह्मणीभक्तोऽयम्।

राजा- कलहंस! स्थितिरियं जगतः।

आत्मन्यपत्ये (त्य-) दारेषु प्राणेषु विभवेषु च।

इतो नृप इतो रङ्गस्तुल्या प्रीतिर्द्वयोरपि।।१३।।

तत उत्थाय स्वयं विलोकय कोऽयं द्वारि।

(कलहंसो निष्क्रम्य पुनः प्रविशति)

राजा- मित्र! जबतक मैं सोच-विचार कर कोई निर्णय नहीं ले लेता हूँ, तबतक तो ठहरो।

विदूषक- मित्र! अब मैं नहीं भागूँगा, (क्योंकि) अपनी पत्नी के चरण का स्मरण हो जाने से मेरा भय समाप्त हो गया।

कलहंस- (हँसकर) यह तो पत्नी का अत्यन्त भक्त है।

राजा- कलहंस! यह स्थिति तो सम्पूर्ण जगत् की है—

स्वयं के प्रति, सन्तान के प्रति, पत्नी के प्रति, प्राण के प्रति तथा धन के प्रति जितना प्रेम राजा को होता है, उतना ही निर्धन को। दोनों के प्रेम में कोई अन्तर नहीं होता है।।१३।।

अतः उठकर स्वयं-देखो कि दरवाजे पर कौन है?

(कलहंस निकलकर पुनः प्रवेश करके)

(१) भोः! तत्र निःसरिष्यामि, निजब्राह्मणीचरणस्मरणेण नट्टं मम भयम्।

विदूषकः— (१) भो रायं! अहं तुह पिट्टिभाए चिट्ठिस्सं। बीहामि एआओ बंभरक्खसाओ।

राजा— (विलोक्य) कथं खट्वाङ्गसङ्गी कापालिकः? स्वागतं तपोधनाय।

कलहंसः— मुने! इदमासनमास्यताम्।

कापालिकः— (स्वगतम्) अयमपि तावद् द्रष्टव्यः। कदाचिदेतदीयमपि चरितं कलचुरिपतिः पृच्छति। (प्रकाशम्) स्वस्ति महाराजाय।

राजा— कुतस्तपोधनः?

कापालिकः— साम्प्रतं विदर्भमण्डलात्।

विदूषक— राजन्! मैं आपके पीछे खड़ा रहूँगा। (क्योंकि) इस ब्रह्मराक्षस से मैं डरता हूँ।

राजा— (देखकर) अरे! खोपड़ी जड़े दण्ड को धारण करने वाला (यह तो) औषड़ है। तपोधन का स्वागत है।

कलहंस— कापालिक! इस आसन पर बैठिये।

कापालिक— (अपने मन में) तो यह भी परीक्षा करने के योग्य है। कदाचित् कलचुरिपति के चरित को ही पूछना चाहें। (प्रकट में) महाराज का कल्याण होवे।

राजा— कहाँ से तपोधन.....?

कापालिक— अभी तो विदर्भदेश से।

(१) भो राजन्! अहं तव पृष्ठभागे स्थास्यामि, बिभेमि एतस्माद् ब्रह्मराक्षसात्।

टिप्पणी— 'खट्वा'— ऐसी लकड़ी जिसके सिरे पर खोपड़ी जड़ी हो, यह भगवान् शंकर जी का हथियार समझा जाता है तथा संन्यासी और योगी इसे धारण करते हैं। 'कापालिक'— शैव सम्प्रदाय के अन्तर्गत विशिष्ट सम्प्रदाय का वामाचारी, जो मनुष्य की खोपड़ियों की माला धारण करता और उसी में खाता-पीता है। 'तपोधन'— "तपोधनस्तापसे स्यान्मुण्डीर्या तु तपोधनाः" इति मेदिनी।

राजा- कियदवधिगमनम्?

कापालिकः- जीवितावधि।

राजा- (स्वगतम्) वचनशठस्तापसच्छद्या चर इव लक्ष्यते। (प्रकाशम्) देशावधिं पृच्छामि।

कापालिकः- नवनवतीर्थदर्शनश्रद्धालूनां तपस्विनां कुत एव देशावधिः।

राजा- (स्वगतम्) नियतमयं चरः। अनुचितमाचरित-मस्माभिर्यदस्मिन्ननावृते वने समीपीकृतः। कदाचिदयं घातकोऽपि स्यात्। भवतु तावत्। (प्रकाशम्) कुतो भवति दीक्षासङ्क्रमः?

कापालिकः- रामगिरिनिवासिनः कापालिकचूडामणेश्चन्द्रशेखरात्।

विदूषकः-(१) दिष्टिया महं सालो समागदो। सो खलु चंदसेहरो मह बंभणीए पिआ।

राजा- कहाँ तक जाना है?

कापालिक- जीवनपर्यन्त।

राजा- (मन ही मन) धूर्ततापूर्ण वचन से तो यह कपटवेषधारी तपस्वी दूत की तरह लगता है। (प्रकट में) किस देश तक जाना है यह पूछता हूँ।

कापालिक- नये-नये तीर्थस्थान के दर्शनाभिलाषी श्रद्धालु तपस्विजन को किसी देश से क्या प्रयोजन।

राजा- (अपने मन में) निश्चित रूप से यह दूत ही है। इस असुरक्षित वन में इसको अपने पास बुलाकर हमने अनुचित कार्य किया। यह तो मारने वाला भी हो सकता है। तो जो हो। (प्रकट में) आपने किससे दीक्षा प्राप्त की है।

कापालिक- रामगिरि पर निवास करने वाले कापालिकों में श्रेष्ठ चन्द्रशेखर से।

विदूषक- भाग्य से मेरा साला आ गया है, क्योंकि वह चन्द्रशेखर तो मेरी पत्नी के पिता हैं।

(१) दिष्टिया मम श्यालः समागतः। स खलु चन्द्रशेखरो मम ब्राह्मण्याः पिता।

कलहंसः- (विहस्य) मुने! महोपाध्यायोऽसौ निषधायां, तदमुना भगिनीपतिना भवद्भिर्न लज्जितव्यम्।

कापालिकः- (सरोषम्) सम्पदापि निवेदितमस्य महोपाध्यायत्वम्।

राजा- (स्मित्वा) अल्पसम्पत्तिकत्वमहेतुरमहोपाध्यायत्वे। अल्पवेतना हि विद्याजीविनः प्रायेण-

देवीं वाचमविक्रेयां विक्रीणीते धनेन यः।

क्रुद्धेव तस्मै सा मूल्यमत्यल्पमुपढौकयेत्॥१४॥

कापालिकः- (सोपहासम्) किमभिधानोऽयं महोपाध्यायः?

राजा- खरमुखाभिधानोऽयम्।

कापालिकः- (सोपहासम्) आकारानुरूपमभिधानम्।

राजा- मुने! किमभिधानमलङ्करोषि?

कलहंस- (हँसकर) मुने! ये निषधदेश के महोपाध्याय हैं, अतः बहनोंई होने के कारण इनसे आप लज्जित हों।

कापालिक- सम्पत्ति से भी इसका महोपाध्यायत्व प्रकट हो जाता है।

राजा- (हँसकर) अल्प सम्पत्ति होना अमहोपाध्यायत्व का कोई कारण नहीं है, क्योंकि अल्प वेतन प्राप्त करने वाले भी प्रायः विद्यादान करते हैं।

जो (कोई) नहीं बेचने योग्य सरस्वती देवी की वाणी विद्या को धन से बेचता है, तो वह (सरस्वती देवी) क्रुद्ध होकर उसे अत्यल्प धन की प्राप्ति कराती है॥१४॥

कापालिक- (उपहास के साथ) ये महोपाध्याय किस नाम को अलंकृत करते हैं?

राजा- ये खरमुख नाम से जाने जाते हैं।

कापालिक- (उपहास पूर्वक) आकृति के अनुरूप नाम है।

राजा- मुने! आप किस नाम को अलंकृत करते हैं?

टिप्पणी- 'विक्रीणीते' क्री का अर्थ खरीदना होता है, परन्तु 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'क्री' का अर्थ 'बेचना' होता है। ऐसी परिस्थिति में "परि-व्यवेभ्यः क्रियः १/३/१८॥" इस सूत्र से धातु आत्मनेपदी होता है।

कालापिकः- लम्बोदराभिधानोऽस्मि।

विदूषकः- (१) आगिदीए सरिसं नामं।

राजा- (सस्मितम्) वयस्य! सर्वस्याभ्यागतो गुरुरिति नैनं हसितुमर्हसि।

विदूषकः- (२) समाणे वि बंभचारित्तणे किं मे एस हसदि, अहं कीस न हसिस्सं?

राजा- अप्रयोजकः सामान्योपन्यासः परिहासस्य।

समेऽपि देहदेशत्वे तुलमप्यक्षि पीडयेत्।

पाषाणघर्षणेनापि पादाः कान्तिमुपासते।।१५।।

विदूषकः- (३) भो कावालिया! 'जई मे पत्थणं विहलं न करेसि, ता किं पि पत्थेमि।

कापालिक- लम्बोदर नाम से जाना जाता हूँ।

विदूषक- आकृति के अनुरूप ही नाम है।

राजा- (हँसकर) मित्र! अभ्यागत हम सभी के गुरु हैं, इसलिए तुम्हें उपहास नहीं करना चाहिए।

विदूषक- समान रूप से हम दोनों ब्रह्मचारी हैं, फिर भी यह मेरा उपहास करता है, तो इसका उपहास मैं क्यों न करूँ?

राजा- यह सामान्य दृष्टान्त उचित नहीं है।

शरीर के अवयवों के समान होने पर भी आँख में गया छोटा सा रूई का कण भी कष्ट देता है, किन्तु पत्थर पर पैरों को रगड़ने से उसके तलवों की कान्ति ही बढ़ती है।।१५।।

विदूषक- कापालिक! यदि आप मेरी प्रार्थना निष्फल न करें, तो मैं कुछ निवेदन करूँ।

(१) आकृत्याः सदृशं नाम।

(२) समानेऽपि ब्रह्मचारित्वे किं मामेष हसति? अहं कथं न हसिष्यामि?

(३) भोः कापालिक! यदि मे प्रार्थनां विफलां न करोषि, तदा किमपि प्रार्थये।

कापालिकः- 'यथेच्छं विज्ञपय।

विदूषकः- (१) जइ^२ मे इमं खट्टुंगं समप्पेसि, ता तुह बहिणीए खंडणोवगरणं भुसलं भोदि।

कापालिकः- (सरोषम्) आः पाप! ब्राह्मणब्रुव! मामासादित-परमब्रह्माणं तपोधनमवजानासि? एष ते खट्वाङ्गेन शिरः पातयामि।

विदूषकः- (सरोषमुत्थाय) (२) अरे दासीपुत्र! कावालिया! लहु इदो एहि, जेण दे एदिणा जन्नोपवित्तेण मत्थयं तोडेमि।

(उमौ नियुध्येते)

राजा- अलमलमनुचिताचरणेन। कलहंस! निवारय निवारय।

कापालिक- जो चाहते हो कहो।

विदूषक- यदि आप (अपना) अंग सोटा हमें दे दें, तो आपकी बहन के लिए किसी वस्तु को चूरने हेतु यह मूसल हो जायेगा।

कापालिक- (क्रोध के साथ) अरे पापी ब्राह्मणनीच! क्या तुम परमब्रह्म को जानने वाले मुझ तपस्वी का अपमान करते हो? इसी अंग सोटा से तुम्हारा मस्तक तोड़ता हूँ।

विदूषक- (क्रोध के साथ उठकर) अरे दासीपुत्र कापालिक! शीघ्र यहाँ आओ, जिससे कि मैं अपने जनेऊ से तुम्हारा मस्तक फोड़ दूँ।

(दोनों परस्पर युद्ध करते हैं)

राजा- यह अनुचित आचरण ठीक नहीं। कलहंस! (विदूषक और कापालिक को) रोको, रोको।

(१) यदि मे इदं खट्वाङ्गं समर्पयसि, तदा तव भगिन्याः खण्डनोपकरणं मुशलं भवति।

(२) अरे दासीपुत्र! कापालिक! लघु इत एहि, येन त एतेन यज्ञोपवीतेन मस्तकं त्रोटयामि।

१. क. यथेष्टं।

२. क. जय।

कलहंसः— (परिक्रम्य) किमिदं युध्यमानस्य कापालिनः कक्षातः पतितम्?

राजा— (विलोक्य) कलहंस! किमिदम्?

कलहंसः— देव! अनेकवस्त्रग्रन्थिनिबन्धा मात्रेयं कापालिनः सम्भाव्यते।

राजा— मध्यमवलोकय। (कलहंसः तथा करोति)

कापालिकः— (विलोक्य सभयमात्मगतम्) हा! हतोऽस्मि। (युद्धाद् विरम्य प्रकाशमुच्चैःस्वरम्) भो भो! नालोकनीयं मन्मन्त्रपुस्तकम्।

कलहंसः— (विलोक्य) कथं वस्त्रान्तरे लेखः?

राजा— (गृहीत्वा वाचयति) स्वस्ति। महाराजचित्रसेनं मेषमुखः प्रणम्य विज्ञपयति यथा सर्वमपि युष्मन्मनोरथानुरूपं सम्भाव्यते। इयं च कोष्टकहस्तात् तत्प्रतिकृतिर्ग्राह्येति।

कलहंस— (धूमकर) युद्ध करने वाले कापालिक के काँख से यह क्या गिरा?

राजा— (देखकर) कलहंस! यह क्या है?

कलहंस— महाराज! अनेक वस्त्र से कसकर बाँधे गये इसमें लगता है कि यह शिव का फोटो है।

राजा— पूरा खोलकर देखो। (कलहंस वैसा ही करता है)

कापालिक— (देखकर भयभीत सा अपने मन में) आह! मैं मारा गया। (युद्ध से विरत होकर प्रकट में जोर से) अरे, अरे! मेरी मन्त्र पुस्तक आप लोगों को नहीं देखनी चाहिये।

कलहंस— (देखकर) वस्त्रों की गठरी में यह लेख कैसा?

राजा— (लेकर पढ़ता है) कल्याण हो! महाराज चित्रसेन को प्रणाम कर मेषमुख निवेदन करता है कि सभी कुछ आपके मनोरथ के अनुरूप है। और कोष्टक के हाथ से उसका यह छायाचित्र ग्रहण करें।

कलहंसः— कोऽयं चित्रसेनः? को मेषमुखः? कः कोष्टकः? का वा सा? यस्याः प्रतिकृतिः।

राजा— अव्यक्तस्थानश्चारलेखोऽयं न शक्यते ज्ञातुम्। भवतु तावत्, पुरोऽवलोकय।

(कलहंसः तथा करोति)

कापालिकः— (सभयमुच्चैःस्वरम्) तदेव व्याहरति।

कलहंसः— (विलोक्य सहर्षमात्मगतम्) अहो! स्त्रीरत्नं सेयं स्वप्नदृष्टा मुक्तावली। स चैव नैमित्तिकावेदितः स्वप्नार्थज्ञानप्रत्ययहेतुरर्थः। (प्रकाशम्) देव! सफलीक्रियतां नेत्रनिर्माणं लोकोत्तरवस्तुदर्शनिन।

राजा— (विलोक्य सहर्षप्रकर्षम्) अहो! बहूनां वस्तुनामेकत्र वासः।

वक्त्रं चन्द्रो नयनयुगली पाटलाम्भोजयुग्मं

नासानालं दशनवसनं फुल्लबन्धूकपुष्पम्।

कलहंस— यह चित्रसेन कौन है? मेषमुख कौन है? कौन कोष्टक है? वह कौन है, जिसका यह छायाचित्र है?

राजा— अपरिचित स्थान में रहने वाले किसी गुप्तचर के द्वारा लिखित इस पत्र के भाव को जानना कठिन है। अच्छा, तो आगे देखो।

(कलहंस वैसा करता है)

कापालिक— (भयभीत जोर से) 'भो भो! नालोकनीयम्; इत्यादि पढ़ता है।

कलहंस— (देखकर हर्ष के साथ अपने मन में) अरे! यह तो वही स्त्री-रत्न है, जिसे महाराज ने स्वप्न में मुक्तावलि के रूप में देखा। और नैमित्तिक ने कहा भी है कि स्वप्न में देखे गये मुक्तावलि का फल स्त्री-रत्न की प्राप्ति है। (प्रकट में) महाराज! नेत्र होने का जो फल है, उसे इस अलौकिक वस्तु के दर्शन से सफल कीजिये।

राजा— (देखकर अत्यधिक हर्ष के साथ) अहा! अनेक (रमणीय) वस्तुओं (गुणों) का निवास एक जगह है—

मुख में चन्द्रमा ने, दोनों नेत्रों में पीत-रक्त वर्ण के दो कमल ने, नासिका में कमलनाल ने, दाँतों के निवास स्थान में खिले हुए बन्धूक पुष्पों ने, गले में शङ्ख ने, स्तनद्वय में दो स्वर्ण कलशों ने, दोनों नितम्बों में गङ्गा की धारा को अवरुद्ध करने

कण्ठः कम्बुः कुचयुगमथो हेमकुम्भौ नितम्बौ
गङ्गारोधश्चरणयुगलं वारिजद्वन्द्वमेतत्॥१६॥

किञ्च-

लावण्यपुण्यतनुयष्टिमिमां मृगाक्षीं
जाने स्वयं घटितवान् भगवान् विधाता।
स्वर्योषितामपि चिरस्पृहणीयमङ्ग-
विन्याससौरभमिदं कथमन्यथाऽस्याः॥१७॥

(पुनर्विमृश्य) मुने! किमिदम्?

कापालिकः- (सरोषमिव) यथेदं मौक्तिकप्रायमाभरणं, यथा
दन्तपत्राञ्चितौ कर्णपाशौ; तथा जाने दाक्षिणात्यायाः कस्या अपि योषितः
प्रतिकृतिरियम्।

राजा- (विलोक्य सस्पृहम्)

वाले दो तट ने तथा इसके दोनों चरणों में दो कमल ने (अपना निवास स्थान बनाया है)॥१६॥

और भी,

इस मृगनयनी कृशाङ्गी के शरीर का (जो) पवित्र सौन्दर्य है उससे तो मैं यही मानता हूँ कि (इसे) स्वयं भगवान् विधाता ने बनाया है, (क्योंकि) स्वर्गीय अप्सरायें भी क्रम से रचे गये (शरीर) अवयव के (जिस) सौन्दर्य की दीर्घ काल से स्पृहा कर रही हैं (शरीर अवयव का) वह पवित्र सौन्दर्य इस (प्रतिकृति में चित्रित दमयन्ती) का (स्वयं विधाता के बनाये बिना) सम्भव ही नहीं है॥१७॥

(पुनः विचार करके) मुने! यह क्या है?

कापालिक- (क्रोध के साथ) जिसप्रकार से (इसने) मोतियों का आभूषण तथा हाथी दाँत से बने कर्णाभूषण को धारण कर रक्खा है, उससे तो यही ज्ञात होता है कि यह छायाचित्र दक्षिण देश में रहने वाली किसी स्त्री का है।

राजा- (देखकर स्नेह के साथ)

अशेषाणां मध्ये जलनिधिमणीनां गुणजुषः
 परं मुक्ता व्यक्तं दधतु हृदि दर्पं किमपरैः ?
 अयं यासां मल्लीमुकुलनवदामद्युतिहरः
 प्रभातारो हारः स्वपिति सुखमस्याः स्तनतटे ॥१८॥

किञ्च-

दासस्तस्य गजान्वयार्णवमणेः स्तम्बेरमस्य स्वयं
 पौलोमीकृतचित्रकर्बुररदः सोऽप्यभ्रभूवल्लभः ।
 यद्दन्तान्तविनिर्मिते प्रचलनप्रेङ्खोलिनी कुण्डले
 काण्डीरस्मरपाण्डुगण्डफलकावस्थाश्चिरं चुम्बतः ॥१९॥

(पुनः सविनयम्) मुने! सर्वथा कथय किमिदम्?

कापालिकः- प्राणात्ययेऽपि किमसत्यमाभाष्यते?

समुद्र से निकाले गये समस्त मणियों में श्रेष्ठ मुक्तामणि जिस (दमयन्ती) के हृदय में निश्चित रूप से सौन्दर्य दर्प का पोषण करता है (वह) अपनी कान्ति वेग से चमेली की कलियों से निर्मित गजरे की शोभा को तिरस्कृत करता हुआ यह मुक्ताहार इसके स्तनतट पर सुख पूर्वक शयन कर रहा है, (तो किसी अन्य शोभाकारक वस्तु की क्या आवश्यकता?) ॥१८॥

और भी,

स्वर्ग तथा भूलोक के पति इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी द्वारा स्वयं, हाथी के गण्डस्थलरूपी समुद्र से निकले मुक्तामणि तथा हाथी दाँत के अन्तिम भाग को, खुरचकर बनाया गया रंग-बिरंगा रुचिकर कर्णाभूषण चलने के कारण उत्पन्न गति से हिलता हुआ इस (प्रतिकृति में चित्रित सुन्दरी) के पीत-रक्त रङ्ग वाले कपोल-प्रदेश का दीर्घकाल तक चुम्बन करता है, जिससे (जो कोई इस सुन्दरी का पति है) इसका वह धनुर्धारी कामदेव भी दास (ही) होगा ॥१९॥

(पुनः नम्रता के साथ) कापालिक! वस्तुतः कहें कि यह किसकी प्रतिकृति है?

कापालिक- प्राण त्याग करके भी क्या मैं असत्य बोल सकता हूँ?

टिप्पणी- 'स्तम्बेरम' — "इभः स्तम्बेरमः" इत्यमरः ।

राजा- भवतु तावत्, कथय कुत्रेयं समासादिता?

कापालिकः- अत्रैव कानने।

राजा- यद्येवं ध्रुवमियं देवताप्रतिकृतिः काऽपि कस्यापि युगादिदेवदेवतायतनवन्दनार्थमागतस्त्रि (स्य त्रि) दशस्य हस्तान्निपतिता, अनेन च समासादिता।

विदूषकः- (१) भो! दाव पच्छा एदा जाणेयव्वा, पढमं एदाए समीवे मं धरेध; जेण दिट्ठिदोसो से न भोदि।

राजा- (सप्रमोदम्) साधु वयस्य! साधु सर्वथा केलिकुशलोऽसि।
(दिशोऽवलोक्य) काऽत्र भोः! करङ्कवाहिनीषु?

(प्रविश्य)

राजा- अच्छा, तो यह कहिये कि इसे आपने कहाँ प्राप्त किया?

कापालिक- यहीं इसी वन में।

राजा- यदि यह सत्य है, तो निश्चित रूप से यह किसी देवता की प्रतिकृति है तथा युगादिदेव के मन्दिर में प्रार्थना के लिए आये हुए किसी देव के हाथ से गिर गयी, और इस प्रकार से आपने इसे प्राप्त किया।

विदूषक- मित्र! इस मुनि से जो कुछ पूछना है बाद में पूछना, पहले इस प्रतिकृति के समीप मुझे बैठा दो, ताकि इसको किसी की नजर न लग जाय।

राजा- (हर्ष के साथ) वाह मित्र! वाह, तुम हमेशा केलि-क्रीड़ा में प्रवीण हो।
(बगल में देखकर) अरे! ताम्बूल लाने वाली यहाँ कोई है?

(प्रवेश करके)

(१) भोस्तावत् पश्चादेषा ज्ञातव्या। प्रथमेतस्याः समीपे मां धरत, येन दृष्टिदोषोऽस्या न भवति।

टिप्पणी- 'त्रिदशः' 'त्रिदशा हव्ययोनयः' इति वैजयन्ती। अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः— इत्यमरः

युवति:- (१) एसा चिट्टामि।

राजा- अयि मकरिके! वयस्याय प्रसादताम्बूलं प्रयच्छ।

मकरिका- (तथा कृत्वा) (२) भट्टा! किं एदं महया पयत्तेण अवलोईयदि?

राजा- आयुष्पति! देवताप्रतिकृतिरियम्।

मकरिका- (विलोक्य विमृश्य च) (३) भट्टा! न एसा देवयापडिकिदी।

राजा- (ससम्भ्रमम्) तर्हि किमेतत्?

मकरिका- (४) जई में पारितोसिअं किंपि भट्टा पयच्छदि, ता कहेमि।

युवति- मैं हूँ।

राजा- अरी मकरिके! मित्र की प्रसन्नता के लिए इन्हें पान दो।

मकरिका- (वैसा ही करके) स्वामिन्! यह क्या है, जिसे आप यत्नपूर्वक देख रहे हैं?

राजा- आयुष्पति! यह किसी देवाङ्गना की प्रतिकृति है।

मकरिका- (देखकर, मन में विचार करके) हे स्वामिन्! यह किसी देवाङ्गना की प्रतिकृति नहीं है।

राजा- (सम्भ्रम के साथ) तो यह क्या है?

मकरिका- यदि स्वामी कोई पुरस्कार मुझे दें तो मैं कहती हूँ।

(१) एषा तिष्ठामि।

(२) भर्तः! किमेतत् महता प्रयत्नेनावलोक्यते?

(३) भर्तः! नैषा देवताप्रतिकृतिः।

(४) यदि मे पारितोषिकं किमपि भर्ता प्रयच्छति, तदा कथयामि।

१. क. पअच्छदि।

राजा- (सादरम्) निषद्यां तुभ्यं पारितोषिकं दास्यामि। भृशमावेदय।

मकरिका- (१) भट्टा! एसा विदब्भाहिवइणो भीमरहस्स पुत्तीए दमयंतीए पडिकिदी।

राजा- कथं पुनर्जातिवती भवती?

मकरिका- (२) भट्टा! कुंडिणपुरे मे मादिकुलं। तदहं सव्वं पि विदब्भवुत्तंतं जाणेमि।

राजा- (स्वगतम्) सम्भवत्येतत्। उक्तं चानेन कापालिकेन यथाऽहं साम्प्रतं विदर्भमण्डलादायातः। (प्रकाशम्) मुनेः दमयन्तीप्रतिकृतिरियम्?

कापालिकः- ब्रह्मचारिणो वयम्, न योषित्कथां प्रथयामः।

राजा- (आदर के साथ) तुम्हें मैं निषधदेश ही पुरस्कार में दे दूँगा। शीघ्र कहो।

मकरिका- स्वामि! यह विदर्भनरेश भीम-रथ की पुत्री दमयन्ती की प्रतिकृति है।

राजा- यह दमयन्ती की ही प्रतिकृति है यह आप कैसे जानती हैं?

मकरिका- स्वामि! कुण्डिन नगरी में मेरा मातृकुल है। इसलिए मैं वहाँ के सभी वृत्तान्तों को जानती हूँ।

राजा- (अपने मन में) यह सम्भव है। साथ ही कापालिक ने भी कहा है कि अभी मैं विदर्भ देश से आया हूँ। (प्रकट में) मुने! क्या यह दमयन्ती की प्रतिकृति है?

कापालिक- हम ब्रह्मचारी हैं, इसलिए स्त्री विषयक कथा नहीं कहूँगा।

(१) भर्तः! एषा विदर्भाधिपतेर्भीमरथस्य पुत्र्या दमयन्त्याः प्रतिकृति।

(२) भर्तः! कुण्डिनपुरे मे मातृकुलम्, तदहं सर्वमपि विदर्भवृत्तान्तं जानामि।

राजा- (सरोषम्) पाखण्डिचाण्डाल! कौक्कुटिक! तापसच्छा
प्रणिधिरसि। कोत्र भोः?

(प्रविश्य)

दण्डपाणिः पुरुषः- एषोऽस्मि।

राजा- अये भीम! एनं नियम्य कारायां क्षिप।

पुरुषः- यदादिशति देवः (इत्यभिधाय कापालिकं जटासु गृहीत्वा भीमो
निष्क्रान्तः)

कलहंसः- मूर्त्या शान्तात्मेवायं परमतीव दुष्टः। भद्रया मुद्रयैव
प्रतिहतममूदृशां पाखण्डिनां शान्तात्मत्वम्। अपि च-

शान्तात्माऽपि खलः खलः कथमपि व्यारूढबाढामो-
द्भेदस्यापि सतो न वर्त्य चरितुं जङ्गलकेलिक्रमः।

राजा- (क्रोध के साथ) अरे धूर्त चाण्डाल! दम्भी भिक्षुक! तपस्वी के छद्म
रूप में तुम कोई दूत हो। अरे! यहाँ कोई है?

(प्रवेश करके)

दण्डपाणि पुरुष- यह मैं हूँ।

राजा- अरे भीम! इसको बाँधकर कारागार में रख दो।

पुरुष- महाराज की जैसी आज्ञा (यह कहकर कापालिक का केश पकड़कर भीम
निकल जाता है)।

कलहंस- आकृति से तो यह शान्त पुरुष लगता था, परन्तु है बहुत ही दुष्ट।
अपने आचरण से इसने पाखण्डी द्वारा धरे गये सज्जन पुरुष के वास्तविक स्वरूप
अर्थात् अपने पाखण्डीपन को उजागर कर दिया।

और भी,

दुष्ट (व्यक्ति) सज्जन पुरुष (की मुद्रा में) भी दुष्ट ही होता है। किसी तरह सज्जन
के मार्ग पर चलता हुआ (उसकी) शीघ्रधावी पाद विक्षेप की कुटिल गति (उसकी)
दुष्टता के आधिक्य को प्रकट कर ही देता है, (क्योंकि दुष्ट उस मार्ग पर) चलने में

टिप्पणी- 'कौक्कुटिक'— "स्याद्दाम्भिकः कौक्कुटिको यश्चादूरेरितेक्षणः" इत्यमरः।
'प्रणिधि— "प्रणिधिः प्रार्थने चरे" इति वैजयन्ती

१. ख. रौद्रया।

इन्दोः कुन्दसितैश्चितापि परितो दोषैव दोषा करै-

श्छन्नस्यापि पयोधरैः प्रतिदिशं नाहः श्रियं गाहते ॥२०॥

(पुनर्विमृश्य) मकरिके! सत्यं मानुषीप्रतिकृतिरियम्?

मकरिका-(१) किं अन्नहा भट्ट(ट्टि)णो विन्नवीयदि?

राजा-

कामं कामं कुसुमधनुषोऽप्यावहन्ती सशोके

लोकेऽप्यस्मिन् यदि मृगदृशामीदृशी रूपलक्ष्मीः।

क्लेशाकीर्णे तपसि विपुलस्वर्गभोगोत्सुकानां

मन्दीभूता खलु तदधुना प्राणभाजां प्रवृत्तिः ॥२१॥

(पुनर्विमृश्य) वयस्य! त्वत्प्रयत्नकृतोऽयमस्माकं रत्नलाभः। कोऽत्र भोः?

समर्थ नहीं है जैसे चारों ओर चन्द्रमा की कुन्दपुष्प के सदृश शुभ्र और कोमल किरणों से ढकी हुई रात्रि, रात्रि ही है तथा सभी दिशाओं में बादलों से आच्छन्न दिन, दिन ही होता है, (क्योंकि) रात्रि दिन की शोभा को धारण नहीं कर सकती है ॥२०॥

(पुनः विचार करके) मकरिके! क्या यह सचमुच मनुष्य योनि में उत्पन्न किसी सुन्दरी की ही प्रतिकृति है?

मकरिका- तो क्या मैं स्वामी से असत्य भाषण करूँगी?

राजा- कामदेव के यथेष्ट मनोरथ को ढोती हुई मृग के समान सुन्दर नयन है जिसका ऐसी रूप-सौन्दर्य की लक्ष्मी यदि इस शोकाकुल संसार में भी है, तो प्रशस्त स्वर्गभोग के अत्यन्त इच्छुक (प्रयत्नशील) शरीरधारियों की रुचि क्लेश से व्याप्त तपस्या में अब निश्चित रूप से मन्द पड़ जायेगी ॥२१॥

(पुनः मन में विचारकर) मित्र! तुम्हारे प्रयत्न से ही मुझे इस रत्न की प्राप्ति हुई। अरे! यहाँ कोई है?

(१) किमन्यथा भर्तुर्विज्ञप्यते?

पुरुषः- एषोऽस्मि।

राजा- अये माकन्द! खरमुखाय कनकालङ्कारं प्रयच्छ।

(यदाज्ञापयति देव इत्यभिधाय माकन्दो निष्क्रान्तः)

विदूषकः-(१) जिदं मए जिदं मए। (उर्द्ध्वबाहुः प्रनृत्यति)

राजा- (स्मित्वा)

संयोगे श्रीर्मदो भोगे वैकल्यस्य निबन्धनम्।

ततस्तु वस्तुचिन्तायां शक्त्या श्रीरधिका मदात्॥२२॥

(पुनः साभिलाषं प्रतिकृतिमवलोक्य स्वगतम्) **विफल एव ममावतारो जगति यदेतया सह सलीलमत्रोपवने न विहरामि। (प्रकाशम्) मकरिके! दमयन्ती कन्यका?**

मकरिका-(२) अथ इं।

(प्रवेश करके)

पुरुष- यह मैं हूँ।

राजा- अरे माकन्द! खरमुख को स्वर्णाभूषण दो।

(महाराज की जो आज्ञा यह कहकर माकन्द निकल जाता है)

विदूषक- मैं जीत गया, मैं जीत गया (हाथ ऊपर उठाकर नाचता है)।

राजा- (मुसकुराकर)

घनिष्ठता में लक्ष्मी (धन) तथा उपभोग की वस्तु में मदोन्मत्तता उत्तेजना का कारण है इसलिए (अपनी) योग्यता से वास्तविक विचार करने पर मदोन्मत्तता से लक्ष्मी (ही) अधिक श्रेष्ठ है॥२२॥

(पुनः अभिलाषा के साथ प्रतिकृति को देखकर मन में) यदि मैंने इस (सुन्दरी) के साथ लीलापूर्वक इस वन में विहार नहीं किया, तो इस जगत् में मेरा जन्म लेना ही व्यर्थ है। (प्रकट में) मकरिके! क्या दमयन्ती बाला है?

मकरिका- और नहीं तो क्या?

(१) जितं मया जितं मया। (२) अथ किम्।

राजा- अनुगृहीतोऽस्मि वेधसा (पुनरपवार्य) कलहंस! त्रिजगतो-
ऽप्यसुलभं वस्तु सम्पादयितुं न शक्नोषि?

कलहंस:- किमपरमुच्यते? यदि मत्प्राणैरपि सम्पद्यते, तदा
सम्पादयामि।

(नेपथ्ये तूर्यध्वनिः)

कलहंस:- देव! युगादिदेवदेवतायतनसन्ध्याबलिपटहध्वनिरयम्।

राजा- (स्वागतम्) अहो! परमं शकुनम्। (पुनर्विमृश्य) प्रेषयाम्येनं
दमयन्त्याः पार्श्वे। इयं च मकरिका विदर्भभाषावेषाचारकुशला सहैव
यातु।

(पुनर्नेपथ्ये)

भो भो गन्धर्वलोकाः! स्वकार्याणि कृत्वा शीघ्रमागच्छत
युगादिदेवसन्ध्यासङ्गीतकमनुष्ठातुम्।

राजा- तब तो मैं विधाता से अनुगृहीत हुआ हूँ। (पुनः अपवारित में) कलहंस!
तीनों लोक में दुर्लभ वस्तु को तुम प्राप्त करा सकते हो?

कलहंस- यह क्या कह रहे हैं? यदि मुझे अपना प्राण देकर भी वह कार्य
सिद्ध करना पड़े तो भी मैं उसे सिद्ध करूँगा।

(नेपथ्य में तुरही आदि की ध्वनि)

कलहंस- महाराज! देवों में युगादि देव भगवान् शंकर जी के मन्दिर में
सन्ध्याकालीन पूजा-अर्चना के निमित्त बजाये जा रहे नगाड़े, (ढोल) की यह
ध्वनि है।

राजा- (मन में) ओह! (यह तो) बहुत ही शुभ-सूचक है। (पुनः विचारकर)
इसको दमयन्ती के पास भेजता हूँ। विदर्भदेश की भाषा-वेश-आचार में चतुर यह
मकरिका भी साथ में ही जाय।

(पुनः नेपथ्य में)

हे गन्धर्वजन! आप सभी अपना कार्य करके युगादिदेव भगवान् शंकर जी की
सन्ध्याकालीन संगीत (नृत्य, गीत वाद्य) का आरम्भ करने के लिए शीघ्र आ जाँय।

राजा- (सप्रमोदमात्मगतम्) अहो! प्रयोजनसमर्थः शब्दपातः।
 ध्रुवमयं कलहंसः प्रयोजनमाधाय शीघ्रमायास्यति। भवतु। (प्रकाशम्)
 कलहंस! चित्रकर्मात्मिकीर्णान्युपकरणानि प्रगुणयितुं ब्रज। मकरिके!
 वैदर्भीप्रतिकृतिं त्वं गृहाण। वयस्य! दर्शय पन्थानं येन सन्ध्याविधिमाधाय
 सौधमलङ्कर्महे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥प्रथमोऽङ्कः॥

राजा- (हर्ष के साथ मन में) ओह! (यह तो) कार्य-सिद्ध करने वाली वाणी
 है। निश्चय ही यह कलहंस कार्य का सम्पादन कर शीघ्र ही आयेगा। अच्छा (प्रकट
 में) कलहंस! चित्रकारी के उपयोग में आने वाली उपकरणों की सुसज्जित करने के
 लिए जाओ। मकरिके! तुम दमयन्ती की प्रतिकृति लो। मित्र! मार्ग दिखाओ, जिससे
 सन्ध्या-वन्दन का सम्पादन कर राजभवन को हम अलंकृत करें।

(यह कहकर सभी निकल जाते हैं)

॥प्रथम अङ्क समाप्त॥

द्वितीयोऽङ्कः ।

(नेपथ्ये)

स्वागतं कलहंसाय सपरिच्छदाय।

(ततः प्रविशति कलहंसः मकरिकाप्रभृतिश्च परिवारः)

कलहंसः— कथं मत्तमयूरोद्यानरक्षकः शेखरोऽस्मदागमनमनुमोदते?
(प्रविश्य)

शेखरः— आर्य कलहंस! युष्मदागमनोत्कण्ठितोऽतीव देवो वृत्तिः।
तदहं गत्वा निवेदयिष्यामि। (इति निष्क्रान्तः)

कलहंसः— अयि मकरिके! कच्चिदिदमभिहिता त्वया लम्बस्तनी?
यथा यावद् वयं त्वदागमनं देवाय विज्ञापयामः, तावत् त्वया मत्तमयूरोद्यान
एव स्थातव्यम्।

(पर्दे के पीछे)

परिजन सहित कलहंस का स्वागत है।

(इसके बाद कलहंस, मकरिका प्रभृति परिजन का रङ्गमञ्च पर प्रवेश होता है)

कलहंस— मतवाले मयूरों वाले उद्यान की रक्षा करने वाला शेखर हम लोगों
के आगमन का अनुमोदन क्यों कर रहा है?

(रङ्गमञ्च पर प्रवेशकर)

शेखर— आर्य कलहंस! आपके आगमन के लिए महाराज अधिक उत्कण्ठित
हैं। इसलिए आपके आने का समाचार मैं जाकर महाराज से कहता हूँ।

(यह कहकर रङ्गमञ्च पर से चला जाता है)

कलहंस— अरी मकरिके! क्या तुमने लम्बस्तनी को यह कह दिया कि जब
तक मैं तुम्हारे आने का समाचार महाराज को कहूँ, तबतक तुम्हें मतवाले मयूरों वाले
उद्यान में ही रहना चाहिए।

मकरिका- (१) अथ इं।

कलहंसः- 'अपि प्रगुणीकृतानि दे^३वस्योपायनीकर्तुं विदर्भ-
मण्डलोद्भवानि वस्तुनि?।

मकरिका- (२) सव्वमाचरिदं।

(नेपथ्ये)

भो भो: सभाचारिणः! प्रगुणीक्रियतां सिंहासनम्। अहो गन्धर्वलोकाः!
प्रारभ्यतां सङ्गीतकम्। इदानीमास्थानमलङ्कारिष्यति देवः।

कलहंसः- कथमयममात्य; किम्पुरुषो वदति?

(नेपथ्ये)

(३) इदो इदो पियवयस्स!^३।

मकरिका- और नहीं तो क्या?

कलहंस- और भी, महाराज को भेट में देने के लिए विदर्भ देश से प्राप्त वस्तु
को भी सुसज्जित करो।

मकरिका- सब कुछ कर चुकी हूँ।

(पर्दे के पीछे)

अरे सेवको! सिंहासन को सुसज्जित करो। हे गन्धर्व लोगो! आप सङ्गीत प्रारम्भ
करें। अब, महाराज इस स्थान को सुशोभित करेंगे।

कलहंस- यह तो अमात्य किम्पुरुष बोल रहा है।

(पर्दे के पीछे)

इधर से प्रियमित्र! इधर से।

(१) अथ किम्। (२) सर्वमाचरितम्। (३) इत इतः प्रियवयस्य!

१. ख. अयि। २. क. स्योपनयनी। ३. ख. वयस्सो।

कलहंसः— मकरिके! यथाऽयं खरमुखो व्याहरति, तथा जाने समायाति देवः। तदास्थानमुपसर्पाव। (इति परिक्रामतः)

(ततः प्रविशति सिंहासनस्थो राजा, किम्पुरुष— खरमुखादिकश्च परिवारः)

राजा— (स्मृत्वा विदूषकं प्रति) वयस्य! प्राप्तः कनकालङ्कारः?

(प्रविश्य)

शेखरः— देव! प्राप्तः।

राजा— (ससम्भ्रमम्) कः प्राप्तः?

शेखरः— देव! दिष्ट्या 'वर्धसे। प्राप्तो मत्तमयूरोद्यानं सपरिच्छदः कलहंसः।

कलहंस— मकरिके! जैसा कि यह खरमुख बोल रहा है, उससे तो यही जान पड़ता है कि महाराज आ रहे हैं। इसलिए, हम लोग वहीं सभा में चलें।

(यह कहकर दोनों धूमते हैं)

(इसके बाद आमात्य किम्पुरुष, खरमुखादि परिजन तथा सिंहासनारूढ राजा प्रवेश करता है)

राजा— (स्मरणकर विदूषक से) मित्र! स्वर्णालङ्कार प्राप्त हो गया?

(प्रवेशकर)

शेखर— महाराज! प्राप्त हो गया।

राजा— (सम्भ्रमपूर्वक) किसने प्राप्त किया?

शेखर— महाराज! भाग्य से समृद्धि को प्राप्त करें। परिजन सहित कलहंस ने मतवाले मयूरों वाले उद्यान को प्राप्त किया।

किम्पुरुषः— न केवलमुद्यानं सभां च।

(कलहंस उपसृत्य मकरिकया सह प्रणमति)

राजा— (बाहुभ्यामाश्लिष्य) ^१अपि कुशलवान् कलहंसः? कुशलवती मकारिका?

कलहंसः— देवस्य प्रतापेन।

राजा— (सौत्सुक्यम्) समर्थितमनोरथः समायातोऽसि?

कलहंसः— न समर्थितमनोरथः।

राजा— हताः स्मः।

कलहंसः— किञ्च सम्भावितमनोरथोपायः समायातोऽस्मि।

किम्पुरुष— केवल उद्यान को ही नहीं इस परिषद् को भी प्राप्त किया, अर्थात् इस सभा में भी उपस्थित हैं।

(पास जाकर मकरिका के साथ कलहंस प्रणाम करता है)

राजा— (दोनों भुजाओं से आलिङ्गन कर) कलहंस तुम कुशल से तो हो? मकरिका तुम्हारी कुशल तो है?

कलहंस— महाराज के आशीर्वाद से (सब कुशल है)।

राजा— (उत्कण्ठा के साथ) मनोरथ का सम्पादन करके आये हो?

कलहंस— मनोरथ का सम्पादन करके नहीं (आया हूँ)।

राजा— तो मैं मारा गया।

कलहंस— पर मनोरथ को सिद्ध करने वाले साधन को लेकर आया हूँ।

टिप्पणी— 'सभा'— सह भान्ति अभीष्टनिश्चयार्थमेकत्र गृहे। "सभा सामाजिके गोष्ठ्यां घृतमन्दिरयोरपि" इति मेदिनी 'किम्पुरुष'— "अथ किम्पुरुषो लोकभेदकिन्नरयोः पुमान्" इति मेदिनी।

१. ख. अयि।

राजा- (सहर्षम्) अनुगृहीताः स्मः। उपायसम्भावनायामुपेयमपि सम्भाव्यते। भवतु तावत्। दृष्टवानसि विद'भराजात्मजाम्?

कलहंसः- देव! अदृष्टविदर्भराजात्मजस्य कलहंसस्य विदर्भगमनं निष्फलम्।

राजा- न केवलमदृष्टविदर्भराजात्मजस्य कलहंसस्य विदर्भगमनं निष्फलं, जन्मापि। तदलं वाचालताविस्तरेण। प्रथमं तावद् दमयन्तीतनुचारिमाणं समासतो विज्ञपय।

कलहंसः- अयं समासः।

राजा- (सप्रमोदम्)

वैदर्भीतनुवर्णनां रसघनश्रोतव्यसीमामिमा-

माकर्ण्य श्रवणौ! युवां गमयथः स्वं जन्म तावत्फलम्।

राजा- (हर्ष के साथ) तब तो मैं अनुगृहीत हुआ। (क्योंकि) कारण की सम्भावना होने पर कार्य सिद्धि भी सम्भव है। अच्छा तो, विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती को देख चुके हो?

कलहंस- महाराज! विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती को नहीं देखने के कारण कलहंस का विदर्भ देश जाना व्यर्थ हो गया।

राजा- दमयन्ती को नहीं देखने के कारण कलहंस का विदर्भदेश को जाना ही केवल व्यर्थ नहीं हुआ, अपितु उसका जन्म भी (व्यर्थ हो गया)। अतः विस्तार से कहने की कोई आवश्यकता नहीं। तबतक पहले दमयन्ती के शरीर सौन्दर्य को संक्षेप में कहो।

कलहंस- संक्षेप में इसप्रकार है।

राजा- (हर्ष के साथ)---

हे दोनों कान! रसपूर्ण (किसी वस्तु की) सुनने की जो सीमा है (वह) इस दमयन्ती के सौन्दर्य वर्णन को सुनकर तुम दोनों अपना जन्म होने का उतना फल

त्रैलोक्याद्भुतरूपदर्शनसुधासम्पर्कहेतुः पुनः

पुण्यं वां नयने! फलिष्यति वपुर्लावण्यपुण्योत्सवे।।१।।

कलहंस! सावधानोऽस्मि।

कलहंसः— देव!

काव्यं चेत् सरसं किमर्थममृतं, वक्त्रं कुरङ्गीदृशां

चेत् कन्दर्पविपाण्डुगण्डफलकं राकाशशाङ्केन किम्?

स्वातन्त्र्यं यदि जीवितावधि मुधा स्वर्भूर्भुवो वैभवं

वेदर्भी यदि बद्धयौवनभरा प्रीत्या सरत्याऽपि किम्?।।२।।

प्राप्त करो, तथा दोनों नेत्र! तीनों लोक में अद्भुतरूपदर्शनजन्म अमृत के सम्पर्क का जो कारण (है, उस दमयन्ती के) शरीर लावण्य सौन्दर्य वर्णन रूप इस आनन्द के अवसर पर तुम दोनों को (भी अपना) पवित्र फल प्राप्त होगा।।१।।

कलहंस! मैं सावधान हूँ।

कलहंस— हे महाराज!

काव्य यदि सरस (शृङ्गारादि नव रसों से युक्त) है तो अमृत (सुधा) की क्या आवश्यकता, मृगनयनी का यदि कामदेव की तरह सुन्दर पीत-धवल (पाण्डु वर्ण का) कपोलमण्डल वाला मुख है तो पूर्णिमा के चन्द्रमा से क्या लाभ, स्वतन्त्रता यदि जीवनपर्यन्त हो तो स्वर्गलोक, भू-लोक तथा पाताल-लोक के वैभव राज्य से क्या काम तथा (उक्त)गुणों से युक्त युवावस्था से आलिङ्गित दमयन्ती (की) यदि (प्राप्ति) हो जाय तो अनुराग सहित प्रेम से भी क्या लाभ।।२।।

राजा— (हर्ष के साथ मन में) यदि युवावस्था से आलिङ्गित विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती के रति और प्रीति दोनों का कथन पुनरुक्त है तब इस सभा में नल की

टिप्पणी— 'स्वातन्त्र्यम्'— इस पंक्ति से कवि की स्वातन्त्र्य-प्रियता का परिचय मिलता है। कवि काव्य रचना के क्षेत्र में ही नहीं अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता के उपासक हैं। इसीलिए तो अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता के आगे स्वर्ग और तीनों लोक के वैभव को तुच्छ समझते हैं। इनकी स्वातन्त्र्यप्रियता का दूसरा प्रमाण यह है कि कवि ने अपनी स्वातन्त्र्य-प्रियता का वर्णन 'कौमुदीमित्रानन्द', 'निर्भयभीमव्यायोग' तथा 'जिनस्तव' के आरम्भ और अन्त में किया है।

राजा- (सहर्षमात्मगतम्) यदि सयौवनायां विदर्भराजतनयायां रति-
प्रीत्योः पुनरुत्कार्यता, तदानीम(मे) व स्थाने नलस्योत्कलिकाकापेयम्।
(पुनर्दिशोऽवलोक्य) कथमास्थानीजनबहलकोलाहलेन कर्णयोः सप्रत्यूहो
विदर्भराजात्मजा^१लावण्यसौरभवर्णनामृतास्वादः? (प्रकाशम्। सरोषम्)

मञ्जीराणि रणन्ति वारयत हुं वाराङ्गनाश्चामर-

ग्राहिण्यो मणिकङ्कणावलि^२झणत्कारं चिरं रक्षत।

पूर्णं पञ्चमगीतिरीतिभिरहो! गन्धर्वलोकाः! कथं

वैदर्भीगुणसङ्कथां खरतरैर्मुष्णीथ पापाः! स्वरैः।।३।।

उत्कण्ठा बन्दरों के स्वभाव की तरह है। (पुनः दिशाओं को देखकर) सभिकजन के अधिक कोलाहल के कारण दमयन्ती के सौन्दर्य-सुगन्धि का वर्णन जिसका आस्वादन अमृत तुल्य है, उसे कानों के लिए विघ्नसंकुल क्यों बनाया जा रहा है? (प्रकट में। क्रोधपूर्वक)

(नृत्य कर रही) वाराङ्गनायें (अप्सरायें, वेश्यायें) अपने नूपुरों की झनझनाहट को रोकें (अर्थात् नृत्य बन्द करें), चाँवर ग्राहिणी (स्त्रियाँ अपने हाथों की) मणिनिर्मित कङ्कणों की खनखनाहट को देर तक रोकें (अर्थात् चाँवर डुलाना बन्द करें)। हे गन्धर्वों! सुर में गाया जाना वाला गीत भी पूर्ण हो चुका, (तब) अरे पापियो! (अपने) प्रखर स्वर के द्वारा दमयन्ती के सौन्दर्यवर्णन (रूपी) कथा को क्यों चुरा रहे हो। (अर्थात् सुनने में क्यों विघ्न डाल रहे हो)।।३।।

१. क. ०जासौ।

टिप्पणी- 'मञ्जीर' — "मञ्जीरो नूपुरः" इत्यमरः। "तुलाकोटिमनिभेदेऽम्बुदे स्यान्नूपुरेऽपि च" इति मेदिनी। 'मणि-कङ्कण' — "मणिः स्त्रीपुंसयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च" इति मेदिनी। 'कङ्कण' — "कङ्कणं करभूषायां सूत्रमण्डनयोरपि" इति मेदिनी। "हस्तमण्डनसूत्रे स्यात् कङ्कणो ना प्रतीसरः" इति रत्नकोषः। गन्धर्व — "गन्धर्वः पशुभेदे स्यात् पुंस्कोकिलतुरङ्गयोः। अन्तराभावसत्त्वे च गायने खेचरेऽपि च" इति मेदिनी।

२. ख. ० वलिरणत्कारं।

कलहंसः— अपि च देव!

विश्वस्य श्रवणोन्द्रियं सफलतां नेतुं पुरा भारती
वाचां रुपमुपास्य निर्मितवती वासं विदर्भक्षितौ।
बद्धेष्वेव नरेन्द्रभीमतनयावेषं विधृत्याधुना
साफल्यं नयनेन्द्रियं गमयितुं देवी स्मरस्य प्रिया॥४॥

विदूषकः— (१) ही ही भो कलहंस! सुदु तए दमयंतीए अंगचंगत्तणं समासेण कहिदं, ता सत्थि भवदे भोदु।

कलहंसः— (ससम्भ्रमम्) कथमार्यः खरमुखः? खरमुख! नमस्ते।

कलहंस— महाराज! और भी—

लोगों को कानों की सफलता (अर्थात् कान होने का जो फल है, उस फल को) देने के लिए (मानो) सरस्वती देवी ने (दमयन्ती के) रूप-सौन्दर्य को (अपनी) वाणी का आराध्य (वर्ण्य-विषय) बनाकर पहिले विदर्भदेश की धरती पर निवास (किया, तथा) अब, नेत्रों की सफलता (अर्थात् लोगों को नेत्र होने का जो फल है, उस फल) को देने के लिए कामदेव की प्रिया रति ने (दमयन्ती से) ईर्ष्या करती हुई सी राजा भीम की पुत्री दमयन्ती के अङ्ग प्रसाधन (की वस्तुओं) को धारण कर (लिया)॥४॥

विदूषक— अहा, हे कलहंस! तुमने अच्छी तरह से संक्षेप में दमयन्ती के अङ्गसौन्दर्य का वर्णन किया, अतः तुम्हारा कल्याण हो।

**कलहंस— (संभ्रमपूर्वक) ये तो आर्य खरमुख हैं।
हे खरमुख! नमस्कार।**

(१) अहो अहो! भो: कलहंस! सुषु त्वया दमयन्त्या अङ्गचङ्गत्वं समासेन कथितम्। तत् स्वस्ति भवते भवतु।

टिप्पणी— 'भारती' — "ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाण्वाणी सरस्वती" इत्यमरः। 'वाचा' — "ब्राह्मणी वचनं वाचा" इति शब्दार्णवः। 'वेष' — "आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्" इत्यमरः। अर्थात्, वेषो हि वस्त्रालंकारमाल्यप्रसाधनैरङ्गशोभा, प्रसाधनं तु समालम्बनं तिलकपत्रभङ्गादिना।

विदूषकः- (१) मह समाणविहवो होहि।

मकरिका- (२) अज्ज! पणमामि।

विदूषकः- (३) मम सरिसं रुविणं पइं लहसु।

राजा- (स्मित्वा) अहो! परमसम्पत्तिहेतुराशीर्वादः।

विदूषकः- (४) भो! तए मह जोगं न किं पि विदम्भमंडलादो आणीदं?

कलहंसः- अस्त्यानीतम्।

राजा- (स्मित्वा सौत्सुक्यम्) अलमप्रस्तुतेन। सविस्तरं विदर्भराजतनयास्वरूपमावेदय।

कलहंसः- देव!

विदूषक- मेरे समान वैभव को प्राप्त करो।

मकरिका- आर्य! प्रणाम करती हूँ।

विदूषक- मेरे समान रूपवान् पति को प्राप्त करो।

राजा- (मुसकुराकर) ओह, तो सर्वश्रेष्ठ सम्पत्ति (प्रिय वस्तु) की प्राप्ति के लिए (दिया गया) आशीर्वाद है।

विदूषक- हे कलहंस! तुम विदर्भदेश से मेरे योग्य भी कोई वस्तु को लाए हो।

कलहंस- लाया हूँ।

राजा- (मुसकुराकर उत्सुकता के साथ) (अप्रस्तुत अप्रासङ्गिक) बात करना व्यर्थ है। विस्तारपूर्वक दमयन्ती के रूप सौन्दर्य का वर्णन करो।

कलहंस- महाराज!

(१) मम समानविभवो भव। (२) आर्य! प्रणमामि।

(३) मम सदृशं रूपिणं पतिं लभस्व।

(४) भो! त्वया मम योग्यं न किमपि विदर्भमण्डलादानीतम्?

चलकमलविलासाभ्यासिनी नेत्रपत्रे

दशनवसनभूमिर्बन्धुजीवं दुनोति।

स्मरभरपरिरोहत्पाण्डिमागूढरूढ-

द्युतिविजितमृगाङ्गा मोदते गण्डभित्तिः॥५॥

राजा- यथायं कलहंसो वर्णयति, तथैव यदि तस्या अङ्गसन्निवेशो यदि च भगवाननुकूलो विरञ्चिस्तदा न निषधाधिपतेरपरो भूर्भुवःस्वस्त्रयेऽपि पुण्यप्रागल्भ्यवान्।

विदूषकः- (१) भो कलहंस! ताए कन्नगाए मह वत्ता कावि पुच्छिदा?

मकरिका- (२) पुच्छिदा।

केलिपरक मनोविनोद में निरन्तर संलग्न (दमयन्ती के) नेत्रपलक (जल में) डोलते हुए कामलों (तथा) दाँतों के निवास स्थान की भूमि ओष्ठ (की लाली) बन्धूक (वृक्ष के) पुष्पों को कष्ट दे रहा है (तथा) कामदेव युवावस्था से आलिङ्गित (इसके विस्तृत कपोल की) परम्परा प्राप्त अत्यन्त उत्कृष्ट धवलाता सुन्दरता रूपी (जो) कान्ति (उसके द्वारा) निश्चित रूप से चन्द्रमा को पराजित कर (उसका) विस्तृत कपोल शोभित हो रहा है॥५॥

राजा- जिसप्रकार से यह कलहंस वर्णन कर रहा है, यदि वैसी ही दमयन्ती के अङ्गों की संरचना है और यदि भगवान् ब्रह्मा जी अनुकूल हैं तो तीनों लोक (स्वर्ग, भूलोक तथा पाताललोक) में दूसरा कोई भी निषधाधिपति नल के समान पुण्य-प्रताप वाला नहीं है।

विदूषक- हे कलहंस! उस कन्या ने मेरे बारे में भी कुछ पूछा है।

मकरिका- हाँ, पूछा है।

(१) भो कलहंस! तया कन्यकया मम वार्ता काऽपि पृष्टा?

(२) पृष्टा।

टिप्पणी- 'बन्धुजीव' — 'बन्धूको बन्धुजीवश्च' इति वैजयन्ती।

टिप्पणी- 'विरञ्चिः' — विरञ्चः कश्चतुर्मुखः" इति वैजयन्ती।

विदूषकः- (सहर्षम्) (१) किं ताए भणितं?

मकरिका- (२) एदं भणितं, सो गद्दहमुहो किं करेदि?

विदूषकः- (सरोषम्) (३) हुं सा मं गद्दहमुहं भणदि, ता न तस्स वन्नणं सुणित्त्सं।

कलहंसः- अपरं च।

कार्कश्यभूः स्तनतटी न गिरां विलासः

केशाः परां कुटिलतां दधते न चेतः।

तस्याः कुरङ्गकदशो नृपचक्रशक्र!

जाड्यं गतौ न तु मतौ विधृतावकाशम्।।६।।

विदूषक- (हर्ष के साथ) उसने क्या कहा?

मकरिका- इसप्रकार कहा कि वह गर्दभमुख क्या करता है?

विदूषक- (क्रोधपूर्वक) क्या वह मुझे गर्दभमुख कहती है? (ठीक है,) तो मैं उसका वर्णन नहीं सुनूँगा।

कलहंस- और भी

हे राजेन्द्र! (उसके) स्तनों के अग्रभाग की कठोरता (कसापन) वाणी का विषय (अर्थात् शब्दों से व्यक्त) नहीं (किया जा सकता) है, तो दूसरी ओर बालों के घुँघरालेपन को हृदय में धारण नहीं (किया जा सकता) है। उस मृगनयनी दमयन्ती (के सौन्दर्य वर्णन में मेरी) बुद्धि जड़ हो गई किन्तु उसका (सौन्दर्य वर्णन) समाप्त नहीं हो रहा है।।६।।

(१) किं तया भणितम्?

(२) एतद् भणितम्, स गर्दभमुखः किं करोति?

(३) हुं! सा मां गर्दभमुखं भणति, ततो न तस्या वर्णनं श्रोष्यामि।

किम्पुरुषः- (स्वगतम्) ध्रुवमीदृशस्य स्त्रीरत्नस्य सम्प्राप्तिर्भ-
रतार्द्धराज्यमुपनयति।

कलहंसः- अपि च स्वयं विमृश्य सोऽयमवयवानां सौन्दर्यलेशो
देवाय विज्ञापितः। परमार्थेन तु-

वदनशशिनो नेत्राम्भोजद्वयस्य कपोलयोः

स्तनकलशयोर्दोष्णोर्नाभेर्नितम्बतटस्य च।

तनुतनुलताज्योत्स्नावीचीनिमग्नदृशा मया

न खलु कलितो दोषः कश्चिद् गुणो न च कश्चन।।७।।

विदूषकः- (सहर्षम्) (१) ही ही भो! तीए अयं ज्जेव महंतो दोसो
जं सरीरे तेएण पिखिदुं पि न सक्कीयदि।

राजा- (सस्पृहमात्मगतम्)

किम्पुरुष- (अपने मन में) इसप्रकार की स्त्री-रत्न की प्राप्ति कराने वाले
(कलहंस) को निश्चय ही महाराज के द्वारा अपना आधा राज्य उपहार स्वरूप देना
चाहिए।

कलहंस- और स्वयं भी विचार करके दमयन्ती के शरीरावयवों का, जो भी
सौन्दर्य है, उसे आपको कह सुनाया। लेकिन वास्तविकता तो यही है कि—

(दमयन्ती के) चन्द्रमा रूपी मुख, कमलरूपी दोनों नेत्र, दोनों कपोलों, कलश
रूपी स्तनों, भुजाओं, नाभि, नितम्ब प्रदेशों तथा पतली लता सी कृशाङ्गी की कान्ति
रूपी तरङ्ग में गोता लगाते हुए मैंने न तो (उसमें) किसी दोष की गणना की और
न तो गुणों की ही।।७।।

विदूषक- (हर्ष के साथ) अहा हा! तब तो उसमें एक बहुत बड़ा दोष उसके
शरीर का तेज है, जिसके कारण उसे देखा भी नहीं जा सकता।

राजा- (स्पृहापूर्वक मन में)

(१) अहो अहो! भो! तस्या अयमेव महान् दोषो यत् शरीरे तेजसा
प्रेक्षितुमपि न शक्यते।

आः! किं भविष्यति स कोऽपि कदापि विश्व-
कल्याणकन्दजलदप्रतिमो मुहूर्तः।
यस्मिन् विदर्भतनयावदनेन्दुसङ्गा-
दुत्फुल्लमक्षिकुमुदं तदिदं मम स्यात्॥८॥

कलहंसः— किञ्चिन्निर्मेषनेत्रविषय एव वैदर्भीरूपप्रकर्षः
प्रत्यक्षीकृतोऽपि न शक्यते वाचा वर्णयितुम्।

राजा— (सप्रश्रयमात्मगतम्) निर्निमेषनेत्रविषय एव वैदर्भीरूपप्रकर्ष
इति पदमस्माकमुपश्रुतिः। द्रुवं भविष्यति तद्दर्शनं नः।

किम्पुरुषः— (सासूयमिव) तदस्ति किं किमपि यत्कविगिरा-
मप्यगोचरः?

राजा— (सरोषममात्यं प्रति) अयुक्तमभिदधासि। यतः—

आह, जल को धारण करने वाले मेघ कान्ति की तरह (अथवा जल की वर्षा कर अत्रादि की ऊपज में वृद्धि करने वाले मेघकान्ति की तरह) वह अपूर्व क्षण, (जो) लोक के आनन्द का आधार है, क्या कभी होगा (आयेगा), जिस (अपूर्व क्षण) में विदर्भनरेश भीम की पुत्री दमयन्ती के मुख रूपी चन्द्रमा के सम्पर्क से मेरा (नल का) यह नेत्र रूपी कुमुद (रात्रिकमल) खिल उठेगा॥८॥

कलहंस— कुछ (जो) अपलक नेत्र से देखे जाने योग्य दमयन्ती के उत्कृष्ट रूप सौन्दर्य को साक्षात् देखकर भी उसका वर्णन वाणी के द्वारा नहीं किया जा सकता है।

राजा— (आदरपूर्वक मन ही मन) दमयन्ती के रूप-सौन्दर्य की श्रेष्ठता अपलक नेत्र का ही विषय है, यह तो हमें स्वीकार है। तो हमें उस (दमयन्ती) का दर्शन निश्चित होगा।

किम्पुरुष— (ईर्ष्या करे हुए की तरह) क्या ऐसी अपूर्व वस्तु भी हो सकती है, जो कवि-वाणी के द्वारा न देखी (वर्णन किया) जा सके।

राजा— (क्रोधपूर्वक अमात्य किम्पुरुष के प्रति) तुम यह अनुचित कह रहे हो।
क्योंकि—

टिप्पणी— 'प्रतिम'— "प्रतिमो प्रभा" इति वैजयन्ती। "कुमुद"— "कुमुदं कैरवे" इति मेदिनी। "वदन"— "मुखं तु वदनम्" इति वैजयन्ती।

अधिका वर्णना वर्ण्यात् क्वचिद् वर्ण्यं ततोऽधिकम्।

वर्ण्यस्याकान्ति-कान्तिभ्यां द्वयमप्युपपद्यते।।९।।

अत्यन्तकमनीयं हि स्तोतुं वाचोऽपि नेशते।

स्वरूपतः सुधास्वादं वक्तुं ब्रह्मापि न क्षमः।।१०।।

तदलमतिविस्तरेण। कलहंस! कथय तावदितः स्थानाद् गतेन
किमाचरितं त्वया?

कलहंसः— देव! देवप्रतिकृतिं दमयन्तीप्रतिकृतिं चादाय देवपादान्
प्रणम्य कतिपयैरेवाहोभिरहं कुण्डिनमधिगतवान्।

कहीं वर्ण्य-विषय से अधिक वर्णन होता है और कहीं वर्णन से अधिक वर्ण्य-विषय। वर्णन की जाने वाली वस्तु यदि अकान्ति अर्थात् अल्प सौन्दर्य वाली है तो वर्णन का आधिक्य और सौन्दर्य-सम्पन्न है तो वर्ण्य-विषय की अधिकता, इसलिए दोनों सम्भव है।।९।।

बहुत ही सुन्दर (मनोहर वस्तु) की स्तुति (प्रशस्ति) वाणी के द्वारा नहीं की जा सकती है, क्योंकि (बिना अमृत का पान किये) अमृत के स्वरूप (मात्र) से उसके स्वाद आस्वदन को कहने में ब्रह्मा भी समर्थ नहीं हैं।।१०।।

इसलिए अधिक विस्तार करना व्यर्थ है। हे कलहंस! तो यह कहो कि यहाँ से जाकर तुमने वहाँ (विदर्भदेश) में क्या-क्या आचरण किया?

कलहंस— महाराज! आपकी प्रतिकृति तथा दमयन्ती की प्रति कृति लेकर महाराज के चरणों को प्रणाम कर कुछ ही दिन में मैं कुण्डिन नगरी पहुँच गया।

टिप्पणी— 'कान्ति' — "कान्तिर्द्युतिश्छविः" इत्यमरः। "कान्तिः शोभाभिकामयोः" इति वैजयन्ती।

टिप्पणी— ज्ञान दो प्रकार का होता है— सविकल्पक ज्ञान और निर्विकल्पक ज्ञान। जिस वस्तु की नाम जात्यादियोजना द्वारा अभिव्यक्ति हम कर सकते हैं वह सविकल्पक ज्ञान का विषय होता है, परन्तु यदि कोई पूछे कि चीनी कितनी मधुर है तो उसे वाणी के द्वारा हम चाहकर भी अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। इसके लिए आवश्यक है कि पूछने वाला व्यक्ति स्वयं उसे खाये। यही निर्विकल्पक ज्ञान है। ठीक यही स्थिति बहुत ही सुन्दर वस्तु की भी है; क्योंकि वह निर्विकल्पक ज्ञान का ही विषय होती है।

राजा- (सत्वरम्) ततस्ततः ।

कलहंसः- अनन्तरमनया मकरिकया स्वाभिजनद्वारेण कथमप्यात्मनः
कन्यान्तःपुरे प्रवेशः कृतः ।

राजा- (सस्पृहम्) आयुष्मति मकरिके! तत्रभवती भवती प्रथमं
वैदर्भी दृष्टवती?

मकरिका- (१) अध इं ।

राजा-ततस्ततः ।

मकरिका- (२) तदो पडिदिणं सेवाववएसेण दमयन्तीपासं गच्छामि,
जथावसरं च देवस्स रूप-लावण्य-विक्रमसमलंकिदं चरिदं विन्नवेमि ।

राजा- (सत्वरम्) ततस्ततः ।

राजा- (शीघ्रतापूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ।

कलहंस- इसके बाद मकरिकाने अपने मातृकुल वालों के माध्यम से किसी
प्रकार स्वयं को दमयन्ती के अन्तःपुर में प्रवेश कराया ।

राजा- (स्पृहापूर्वक) हे आयुष्मति मकरिके! आदरणीये आपने ही वहाँ पहिले
दमयन्ती को देखा ।

मकरिका- और नहीं तो क्या?

राजा- उसके बाद, उसके बाद ।

मकरिका- उसके बाद सेवा के बहाने मैं प्रतिदिन दमयन्ती के समीप जाती
थी और मौका पाकर महाराज के रूप-लावण्य तथा पराक्रम से युक्त चरित को सुनाती
थी ।

राजा- (शीघ्रतापूर्वक) उसके बाद, उसके बाद ।

(१) अथ किम् । (२) ततः प्रतिदिनं सेवाव्यपदेशेन दमयन्तीपार्श्वं
गच्छामि, यथावसरं च देवस्य रूप-लावण्य-विक्रमसमलङ्कृतं चरितं विज्ञपयामि ।

मकरिका- (१) एगदा हरिसिदहिययाए दमयंतीए जंपिदं जघा-
तुमं ज्जेव एगा निसढाहिवइणो इह अत्थि? आदु अन्नो वि को वि? तदो
मए भणिदं अन्नो वि सव्वरहस्सट्ठाणां दुदियं पिव हिदयं निसढाहिवइणो
पियवयस्सो कलहंसो नाम अत्थि।

किम्पुरुषः- मकरिके! वाग्मिनी खल्वसि। सर्वरहस्यस्थानं द्वितीयमिव
हृदयं वदन्त्या त्वया रहस्यालापेषु निःशङ्का कृता राजपुत्री।

राजा- ततस्ततः।

कलहंसः- अस्वस्थशरीरा दमयन्तीति प्रघोषं विधाय वैद्यव्याजेनाहमनया
विदर्भदुहितुरभ्यर्णं नीतः।

राजा- (सप्रमोदम्) मकरिके! चतुराऽसि विकटकपटनाटक-
घटनासु। (विमृश्य)

मकरिका- एक दिन प्रसन्नचित्त दमयन्ती ने कहा कि लगता तो यही है कि
निषधाधिपति के यहाँ एकाकी तुम ही हो? अथवा कोई और दूसरा भी है? तब मैंने
कहा सभी रहस्यों का आश्रय द्वितीय हृदय की तरह निषधाधिपति (राजा नल) के प्रिय
मित्र भी यहाँ हैं, जिनका नाम कलहंस है।

किम्पुरुष- हे मकरिके! तुम बहुत ही चतुर हो। सभी रहस्यों का आश्रय द्वितीय
हृदय की तरह (ऐसा) कहकर तुमने दमयन्ती को रहस्य का कथन करने में शङ्कारहित
कर दिया।

राजा- उसके बाद, उसके बाद।

कलहंस- (एक दिन) मकरिका ने दमयन्ती बीमार हो गई है ऐसी घोषणा कर
मुझे एक वैद्य के बहाने विदर्भ नरेश की पुत्री दमयन्ती के भवन में ले गई।

राजा- (हर्ष के साथ) मकरिके। कपट का विचित्रअभिनय करने में तुम बहुत
चालाक हो। (विचारकर)

(१) एकदा हर्षितहृदयया दमयन्त्या जल्पितं यथा-त्वमेवैका
निषधाधिपतेरिहासि, अथवाऽन्योऽपि कोऽपि? ततो मया भणितम्—

अन्योऽपि सर्वरहस्यस्थानं द्वितीयमिव हृदयं निषधाधिपतेः प्रियवयस्यः
कलहंसो नामास्ति।

सर्वथा कैतवं निन्द्यं प्रवदन्तु विपश्चितः ।

केवलं न विना तेन दुःसाध्यं वस्तु सिध्यति ॥११॥

किम्पुरुषः— देव! किमपरमुच्यते?

कामं शाठ्यव्यपोहेन परलोकः प्ररोहतु ।

इहलोकप्रतिष्ठा तु शाठ्यपुण्यैव निश्चितम् ॥१२॥

कलहंसः— देव!

निर्मायो यः कृपालुर्यः सत्यो यः सनयश्च यः ।

प्रायेण तत्र लोकस्य क्लीबबुद्धिर्विजृम्भते ॥१३॥

(यद्यपि) विद्वान् कपट-जालसाजी को हर तरह से निन्दनीय कहें, (किन्तु) जालसाजी के बिना निश्चित (ही) दुःसाध्य (विशिष्ट) वस्तु की सिद्धि (प्राप्ति) नहीं हो (सक)ती है ॥११॥

किम्पुरुष— महाराज! ऐसा क्यों कहते हैं?

भले ही बेईमानी, छल-कपट, जाल-साजी आदि को छोड़कर (त्यागकर लोग) स्वर्गलोक जाते हैं, परन्तु इस लोक में सम्मान निश्चित रूप से बेईमानी, छल, कपट, जालसाजी आदि व्यापार से ही मिलता है ॥१२॥

कलहंस— महाराज!

जो माया-मोह से रहित है, जो दयावान् है, जो सत्यभाषी है तथा जो नीतिज्ञ है, तो (ऐसे मनुष्य को) प्रायः इस संसार का नपुंसकमति (दुर्बलमना पुरुषार्थहीन ही) प्रकाशित किया जाता है (अर्थात् कहा जाता है) ॥१३॥

टिप्पणी— 'कैतवम्'— "कैतवं कपटे" इति वैजयन्ती। "कैतवं तु छले" इति मेदिनी।
'केवलम्'— "केवलं निश्चिते" इति वैजयन्ती।

टिप्पणी— 'कामम्'— "कामं प्रकामम्" इति इत्यमरः। "कामः स्वरेच्छाकाम्येषु" इति हैमः। 'शाठ्यं'— "कुसृतिर्निकृतिः शाठ्यम्" इत्यमरः।

१. क. ०पुण्यैव।

राजा- (सत्वरम्) ततस्ततः।

कलहंसः- समलङ्कृतासने मयि राजपुत्री सलीलमिदमभिहित-
वती-स भवान् कलहंसोऽसि? (स्ति?)

राजा- अहो! गिरां मधुरिमा। ततः।

कलहंसः-मयोक्तम्-यथा जानाति देवी। ततो राजपुत्री 'समासतो
विवक्षितमर्थभावेदय' इति निगदितवती। अनन्तरमहमुक्तवान्।

राजा- (सौत्सुक्यम्) किमुक्तवानसि?

कलहंसः- इदमुक्तवानस्मि।

शौण्डीरेषु भयोज्ज्वलेषु सुभगोत्तंसेषु च ग्रामणी-
देवो नैषधभूपतिः श्रुतमिदं स्वर्भूर्भुवो भूरिशः।

राजा- (शीघ्रतापूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

कलहंस- मेरे आसन पर बैठ जाने के बाद राजपुत्री दमयन्ती ने आनन्द के साथ यह कहा— तो वह कलहंस आप ही हैं?

राजा- अहा, वाणी में कितनी मधुरता है। उसके बाद।

कलहंस- मैंने कहा— जैसा देवी जानती हैं वही मैं हूँ। उसके बाद दमयन्ती ने कहा— 'संक्षेप में आप अपने अभीष्ट अर्थ प्रयोजन को कहें'। पश्चात् मैंने कहा।

राजा- (उत्सुकतापूर्वक) तुमने क्या कहा?

कलहंस- मैंने यह कहा था—

अभिमानियों में, प्रेम, राग से भयभीतों (अर्थात् योगियों) में, श्रेष्ठ (सुन्दर) अलंकारों में तथा ग्रामवासियों में, अनेक बार यह सुना जा चुका है कि स्वर्ग-लोक, भूलोक और पाताल लोक में, पृथ्वी पालक राजा नल (ही श्रेष्ठ) है, इस प्रकार सम्पूर्ण

टिप्पणी- 'शौण्डीर'— "शुण्डा गर्वोऽस्ति अस्य— शुण्डा+ईरन्+अण"। 'भयोज्ज्वल'-
'भय'— "दरत्रासौ भीतिर्भीः साध्वसं भयम्" इत्यमरः। 'उज्ज्वल'— "शृङ्गारः
शुचिरुज्ज्वलः" इत्यमरः। "उज्ज्वलो दीप्तशृङ्गारः" इति मेदिनी।

एतच्च प्रथितं विदर्भतनया यद् विश्वविश्वस्फुर-

च्छौर्यादिप्रसरं वरं स्पृहयति ब्रूमः किमन्यत् ततः? ॥१४॥

राजा- (स्वगतम्) आः! किमतः परं राजतनयाऽभिधास्यतीति यत्सत्यमाकुलोऽस्मि। भवतु (प्रकाशम्) ततः किमुक्तवती?

कलहंसः- राजतनया न किञ्चित्।

राजा- (सखेदमात्मगतम्) हा! हताः स्मः।

कलहंसः- किन्तु कपिञ्जला नाम विदर्भराजचामरग्राहिणी समीपस्थितेदमुक्तवती।

राजा- (ससम्भ्रमम्) किमाह स्म सा?

कलहंसः- इदमाह स्म सा। अनुरूपं योगं कर्तुमीहते स भगवान् कलहंसः।

संसार में निर्बाधि गति से फैले हुए (अपने) शौर्यादि से देदीप्यमान राजा नल को क्या दमयन्ती (अपना) पति चाहती है, (अर्थात् राजा नल को अपने पति के रूप में स्वीकार करती है) तो कहें, या दूसरे को ॥१४॥

राजा- (मन ही मन) इसके बाद दमयन्ती ने क्या कहा होगा उसे सुनने के लिए मैं व्याकुल हो रहा हूँ। अच्छा (प्रकट में) इसके बाद (उसने) क्या कहा?

कलहंस- दमयन्ती ने कुछ नहीं कहा।

राजा- (खेद के साथ मन में) ओह, मैं मारा गया।

कलहंस- किन्तु कपिञ्जला नाम की भीम नरेश की चाँवर डुलाने वाली (जो) दमयन्ती के समीप स्थित थी उसने यह कहा।

राजा- (सम्भ्रमपूर्वक) उसने क्या कहा था?

कलहंस- कपिञ्जला ने यह कहा था कि कलहंस रूप-सौन्दर्य में एक समान दोनों नल-दमयन्ती का संयोग करना चाहते हैं।

राजा- (सहर्षमात्मगतम्) इयत्प्रत्युज्जीविताः स्मः। जानाति तवदेतत्परिकरलोको कथा दमयन्त्या निषधपतिरनुरूपो वरः। (प्रकाशम्) ततस्ततः।

कलहंसः- अनन्तरं च स्मितं कृत्वा राजतनया देवस्य प्रतिकृतिपटं मम करतलादादाय पुनः प्रतिकृतिं पुलककोरकितमात्मानं सुचिरमालोकितवती।

राजा- (ससम्भ्रमम्) लक्षितः कोऽप्यवलोकनस्याभ्युपायः कलहंसेन?

विदूषकः- (सरोषम्) (१) भो! किं पृच्छेसि? पुलकिदेणं अंगेणं ज्जेव निवेदिदं।

कलहंसः- लक्षितः कपिञ्जलावचनात्।

राजा- (ससम्भ्रमम्) किं तत् कपिञ्जलावचः?

राजा- (हर्ष के साथ मन में) तो यह सुनकर मैं पुनः जीवित हो गया। जैसा कि उसके नौकर-चाकर (भी) जानते हैं कि दमयन्ती के लिए अनुकूल वर (पति) निषधाधिपति नल ही हैं। (प्रकट में) उसके बाद, उसके बाद।

कलहंस- और इसके बाद दमयन्ती ने थोड़ा हँसकर महाराज (नल) की प्रतिकृति वाली पट्टिका को मेरे हाथ से लेकर फिर प्रतिकृति को (अर्थात् छाया चित्र को बार-बार देखती) पुनः अपने को रोमाञ्चित करती हुई देर तक देखती रही।

राजा- (सम्भ्रमपूर्वक) दमयन्ती के द्वारा प्रतिकृति) देखने का कोई कारण क्या कलहंस ने देखा?

विदूषक- (क्रोध के साथ) अरे! पूछ क्या रहे हो? उस (दमयन्ती) के रोमाञ्चित अङ्गों ने तो स्पष्ट कर ही दिया।

कलहंस- कपिञ्जला के वचन से लक्षित हुआ।

राजा- (सम्भ्रमपूर्वक) कपिञ्जला का वह वचन क्या था?

(१) भो! किं पृच्छेसि? पुलकितेनाङ्गेनैव निवेदितम्।

कलहंसः— इदं वचो यथा देवि! किमर्थमत्यर्थमायास्यते पुनः पुनरवलोकनेन दृष्टिः? सर्वथाऽनुहरत्येवैषा प्रतिकृतिर्देवीवपुषः।

राजा— साधु कपिञ्जले! भावज्ञानकुशले! साधु, ततस्ततः।

कलहंसः— अत्रान्तरे च देवी प्रतिकृत्या सह निरूप्यते न पुनर्मूलरूपेणेति वदन्ती मकरिका कापालिकानीतां प्रतिकृतिं राजपुत्र्या दर्शितवती।

राजा— समीचीनमाह मकरिका।

यथा मुख्यस्य सौन्दर्यं प्रतिबिम्बस्य नो तथा।

सूर्याचन्द्रमसौ वारिसङ्क्रान्तौ क्लान्ततेजसौ।।१५।।

कलहंसः— ततो मकरिके! मत्करलिखितेयं प्रतिकृतिः कुतस्तवैतस्याः प्राप्तिरिति सरोषं राजपुत्री व्याहरत्।

कलहंस— (कपिञ्जला का) यह वचन था, हे दमयन्ति! बार-बार देखने के द्वारा तुम अपनी दृष्टि को क्यों अत्यधिक कष्ट दे रही हो? यह प्रतिकृति निश्चित रूप से दमयन्ती के शरीर से मिलती है (अर्थात् दमयन्ती के पति के अनुकूल है)।

राजा— वाह! मनोगत भावों को जन्मने में प्रवीण कपिञ्जले! वाह, उसके बाद, उसके बाद।

कलहंस— और इसी बीच में देवी (दमयन्ती) प्रतिकृति के साथ मिलान कर रही हैं, न कि मूलरूप से ऐसा कहती हुई मकरिका ने कापालिक द्वारा लायी गयी प्रतिकृति को दमयन्ती को दिखाया।

राजा— मकरिका ने युक्तिसंगत बात कही।

जैसा सौन्दर्य मुख्य (अर्थात् मूल रूप में विद्यमान) वस्तु में होता है वैसा सौन्दर्य प्रतिबिम्ब (अर्थात् किसी वस्तु की बनाई गई छायाचित्र) में नहीं होता है। (क्योंकि) जल में संक्रमित (अर्थात् जल में दिखलाई पड़ने वाले सूर्य और चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में) सूर्य और चन्द्रमा भी मलिन कान्ति (प्रभा, प्रकाश, तेज) वाले (ही) होते हैं।।१५।।

कलहंस— इसके बाद, क्रोधपूर्वक राजपुत्री दमयन्ती ने कहा, मकरिके! मेरे हाथ से बनाई गई यह प्रतिकृति तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई।

राजा- (सभयम्) कोऽयमुत्पातः? ततस्ततः।

कलहंसः- अनन्तरं च कपिञ्जले! प्रतिकृतिमेतां ताताय दर्शय,
चित्रपटमेतं च देवतागृहे निधेहीत्यभिधाय राजतनया मां विसृष्टवती।

राजा- (सभयम्) कथं न किमपि प्रत्युत्तरम्?

कलहंसः- किन्तु देवप्रतिकृतिपटस्य देवतागृहविमोचनेन दत्तमेव
राजपुत्र्या प्रत्युत्तरम्।

राजा- वाचिकं श्रोतुमिच्छामि।

मकरिका- (१) इदं पच्छा मम कहिदं। जहा-

राजा- (भय के साथ) यह कौन सा विघ्न उपस्थित हो गया? उसके बाद,
उसके बाद।

कलहंस- और इसके बाद, कपिञ्जले! इस प्रतिकृति को पिता जी को दिखाओ
तथा इस प्रतिकृति को मन्दिर में रख दो यह कहकर दमयन्ती ने मुझे (वहाँ से) विदा
किया।

राजा- (भयपूर्वक) उसने कुछ उत्तर क्यों नहीं दिया?

कलहंस- किन्तु महाराज की प्रतिकृति को देवगृह में रख दो, इस तरह से
तो दमयन्ती ने उत्तर दे ही दिया।

राजा- (दमयन्ती के) वचन को सुनना चाहता हूँ।

मकरिका- पश्चात् उसने हमसे यह कहा। जैसा कि—

(१) इदं पश्चात् मम कथितम्। यथा—

इहास्ति घोरघोणो यथार्थनामा कापालिक एकः।

क्रूरत्वस्य कापट्यस्य प्रथमं प्रतिष्ठानम्॥

लम्बस्तनीति नाम भार्या तस्यास्ति कुब्जतनुयष्टिः।

सकलानां दोषाणां स्थानं दूती च मिथुनानाम्॥

इह अत्थि घोरघोणो जहत्थनामा कवालिओ एगो।

कूरत्तणस्स कवडित्तणस्स पढमं पइट्ठाणं।।१६।।

लंबत्थणी त्ति नामं भज्जा तस्सत्थि कुज्जतणुल'ट्ठी।

सयलाणं दोसाणं ठाणं दूर्इ य मिहुणाणं।।१७।।

राजा- (कलहंसं प्रति) असंस्कृतवागियं मकरिका न स्फुटमर्थमावेदयति।
ततस्त्वमेव कथय।

कलहंसः- घोरघोणेन च भीमरथाय सन्दिष्टम्, यथेयं दमयन्ती
कलचुरिपतेर्भार्या भविष्यति।

राजा- (सभयमात्मगतम्) मुषिताः स्मः (प्रकाशम्) स घोरघोणः
किमतीन्द्रियमर्थं जानाति?

नाम के अनुरूप कूरता का तथा वञ्चना (धोखा धड़ी, जालसाजी) का एक मात्र
आधार घोरघोण नामक (भयङ्करनासिका वाला होने से यथार्थनामा) एक कापालिक
(औघड़) यहाँ (रहता) है।।१६।।

समस्त दोषों का निवास-स्थान तथा युगल प्रेमी-प्रेमिका को (मिलाने में) दूती
(का कार्य करने वाली) कुबड़े शरीर वाली लम्बस्तनी उस कापालिक घोरघोण की
पत्नी है।।१७।।

राजा- (कलहंस से) प्राकृत बोलने वाली मकरिका की यह वाणी स्पष्ट अर्थ
को नहीं कह रही है। इसलिए तुम ही कहो।

कलहंस- कापालिक घोरघोण ने राजा भीमरथ को सूचित किया है कि दमयन्ती
कलचुरिनरेश की भार्या (अर्थात् दमयन्ती का विवाह कलचुरिनरेश के साथ होगा)
होगी।

राजा- (भयपूर्वक अपने मन में) तो हम ठगे गये (प्रकट में) क्या वह घोरघोण
मनोगत भावों को भी जानता है?

१. ख. ग. जट्टी।

टिप्पणी- कलचुरि वंश के शासक जहाँ शासन करते थे उस देश को 'चेदि' भी कहा
जाता था। जबलपुर से नीचे भरे घर के आसपास विन्ध्य और रिक्ष पर्वतों के मध्य
में नर्मदा के किनारे पर स्थित माहिष्मती नगरी में कलचुरि लोग राज्य करते थे।

कलहंसः— दाम्भिकोऽयं न किमपि जानातीति तत्रत्याः कथयन्ति।
मया पुनर्विषयतापि न कोऽपि दम्भो लक्षितः।

राजा— अत्रार्थे तत्रत्याः प्रमाणं न भवान्। यतः—

आगन्तुकोऽनुरागं नेतुमविज्ञातदूषणः शक्यः।

विज्ञातदूषणः खलु जनस्तु शक्यो न सहवासी॥१८॥

किन्तु कथय सहवास्यपि राजा केन हेतुना तस्य दम्भं नावधारयति।

कलहंसः— राज्ञो व्यामोहो घोरघोणस्य च भाग्यमनवधारणे हेतुः।

राजा— उपपन्नमिदम्—

जन्मिनां पूर्वजन्माप्तभाग्यमन्त्राभिमन्त्रितः।

अचेतनोऽपि वश्यः स्यात् किं पुनर्यः सचेतनः॥१९॥

ततस्ततः।

कलहंस— यह पाखण्डी है, कुछ भी नहीं जानता है ऐसा वहाँ के लोग कहते हैं। (परन्तु) मेरे द्वारा अन्वेषण करने पर भी उसके पाखण्डी होने का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ा।

राजा— इस विषय में वही के लोग प्रमाण हैं आप नहीं। क्योंकि—

अतिथि (नवागन्तुक) के प्रेम (स्नेह) को ले जाने (अर्थात् किसी तक पहुँचाने) के लिए (यह उसी से) सम्भव है, जो (उसके) दोष से अनभिज्ञ है, जबकि दोष को जानने वाला व्यक्ति तो साथ में रहने योग्य भी नहीं है॥१८॥

लेकिन यह कहो कि एक साथ रहने पर भी राजा भीम यह किस कारण से नहीं जानते हैं कि वह (घोरघोण) पाखण्डी है।

कलहंस— उसके पाखण्डीपन को नहीं जानने का कारण राजा का व्यामोह व्याकुलता और घोरघोण का भाग्य है।

राजा— यह युक्तियुक्त है—

शरीरधारियों के पूर्वजन्म के प्रारब्ध से प्राप्त सिद्ध किये गये मन्त्र से (जब) अचेतन (निर्जीव) वस्तु भी (उसके) वश में हो जाती है तो फिर जो चेतनायुक्त हैं उनकी क्या चर्चा?॥१९॥

उसके बाद, उसके बाद।

कलहंसः— ततो राजापि कापालिकप्रत्ययेन स्वदुहितरं चित्रसेनाय दातुमिच्छति।

राजा— ततस्ततः।

कलहंसः— ततो दमयन्त्या मकरिकाऽभिहिता यथा यदि निषधाधिपतिर्लम्बस्तनीं कथमप्यनुकूलयति, तदा पुनरपि सा तातं कदाग्रहान्निवर्तयति, मां च निषधाधिपतये दापयति।

राजा— (सत्वरम्) किं पुनर्लम्बस्तनी सहैव ज्ञानीता?

कलहंसः— आनीताऽस्ति।

राजा— क्वासौ?

कलहंसः— अस्ति मत्तमयूरोद्याने।

राजा— अये शोखर! लम्बस्तनीं शीघ्रमाकारय।

कलहंस— इसलिए राजा भी कापालिक की सम्मति से अपनी पुत्री दमयन्ती को चित्रसेन को देना चाहते हैं (अर्थात् दमयन्ती का विवाह चित्रसेन से कराना चाहते हैं)।

राजा— उसके बाद, उसके बाद।

कलहंस— इसलिए दमयन्ती ने मकरिका से कहा कि यदि निषधाधिपति नल किसी तरह लम्बस्तनी को अनुकूल कर (मना) लें, तो फिर सम्भव है कि वह पिता को पूर्व विचार से निवृत्त भी कर दे और मुझको निषधाधिपति नल के लिए (पिता से) दिला (भी) दे।

राजा— (शीघ्रतापूर्वक) तो क्या लम्बस्तनी को साथ में लाये हो?

कलहंस— लाया हूँ।

राजा— वह कहाँ है?

कलहंस— वह (लम्बस्तनी) मत्तमयूर वाले उद्यान में है।

राजा— अरे शोखर! लम्बस्तनी को शीघ्र बुलाओ।

शेखरः— यदादिशति देवः (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति कटितटं नर्तयन्ती लम्बस्तनी)

राजा— (विलोक्य) आकृत्या कृत्येव लक्ष्यते।

कलहंसः— (अपवार्य) न केवलमाकृत्या कर्मणाऽपीयं कृत्या।

(पुनर्विदूषकं प्रति) तवापि योग्यमिदं मया विदर्भदेशादानीतम्।

विदूषकः— (विलोक्य सभयकम्पम्) (१) भो रायं! अहं एयाओ
ठाणाओ उट्टिस्सं।

राजा— किमिति?

विदूषकः (२) जई एसा थूलमहिसी कडियडं नच्चावंती ममोवरि
पडेदि, ता धुवं मं मारेदि।

शेखर— महाराज की जैसी आज्ञा (यह कहकर शेखर रङ्गमञ्च पर से चला जाता है)।

(पश्चात् अपने कटिप्रदेश को नचाती हुई लम्बस्तनी प्रवेश करती है)

राजा— (देखकर) स्वरूप से तो कृत्या नामक राक्षसी सी लगती है।

कलहंस— (अपवारित में) केवल आकृति से ही नहीं, कर्म से भी यह कृत्या राक्षसी ही है। (पुनः विदूषक से) आपके योग्य इस (लम्बस्तनी) को मैं विदर्भदेश से लाया है।

विदूषक— (देखकर भय से काँपता हुआ) हे राजन्! (अब) मैं इस स्थान से उटूँगा (अर्थात् चलूँगा)।

राजा— क्यों?

विदूषक— स्थूल भैस की तरह मोटी यह कमर को नचाती हुई यदि मेरे ऊपर गिर गयी, तो निश्चित ही मुझे मार डालेगी।

(१) भो राजन्! अहमेतस्मात् स्थानादुत्थास्यामि।

(२) यद्येषा स्थूलमहिषी कटितटं नर्तयन्ती ममोपरि पतेत्, तदा ध्रुवं
मां मारयेत्।

राजा- वयस्य! अस्मास्वनुग्रहेण राजपुत्र्येयं प्रेषिता, तदेतामवज्ञातुं नार्हसि।

विदूषकः- (१) भो! न मए एदाए अवज्जा कीरदि, किन्तु अप्पणो रक्खा।

राजा- (सरोषमिव) सर्वथा परिहासावसरं न वेत्सि।

विदूषकः- (निःश्वस्य) (२) जदि मए मुदेण कावि फलसिन्धी भोदि, ता भोदु, इह ज्जेव चिद्धिस्सं।

राजा- लम्बस्तनि! इदमासनमास्यताम्।

विदूषकः- (३) भोदी लंबत्थणीए दुब्बलं खु 'एदं आसणं। ता तुमए सावहाणाए 'उवविसियव्वं।

राजा- मित्र! हमारे ऊपर अनुग्रह करके ही दमयन्ती ने इसको भेजा है, अतः तुम्हें इसकी अवमानना नहीं करनी चाहिए।

विदूषक- हे राजन्! मैं इसकी अवमानना नहीं करता हूँ, अपितु अपनी रक्षा के लिए।

राजा- (क्रोधित हुए की तरह) निश्चित रूप से परिहास के समय को नहीं जानते हो।

विदूषक- (साँस लेकर) यदि मेरे मरने से तुम्हारे किसी कार्य की सिद्धि हो, तो होवे, यहीं रहूँगा।

राजा- लम्बस्तनि! इस आसन पर बैठिये।

विदूषक- हे लम्बस्तनि! यह आसन बहुत ही कमजोर है इसलिए तुम्हें सावधानीपूर्वक आसन पर बैठना चाहिए।

(१) भोः! न मयैतस्या अवज्ञा क्रियते, किन्त्वात्मनो रक्षा।

(२) यदि मया मृतेन काऽपि फलसिद्धिर्भवति, तदा भवतु, इहैव स्थास्यामि।

(३) भगवति! लम्बस्तन्या दुर्बलं खल्वेतदासनम्, ततस्त्वया सावधानम् उपवेष्टव्यम्।

१. क. एयं। २ क. उववसि।

(कलहंसः संज्ञया विदूषकं वारयति)

राजा- लम्बस्तनि! कुशलवत्यसि?

लम्बस्तनी- (मुखं नर्तयित्वा) (१) अत्तणो जोगस्स 'पसादेण।

विदूषकः- (२) भोदी! किं अइदुब्बला सि?

लम्बस्तनी- (३) मग्गपरिस्समेण।

विदूषकः- (४) भो कलहंसा! कित्तिएहिं 'गोणेहिं मुद्दे (ट्टे) हिं (वा) एसा इध संपत्ता?

(कलहंसो विहस्याधोमुखस्तिष्ठति)

राजा- (सभयमात्मगतम्) ध्रुवमयमेतां दुरात्मा कोपयिष्यति। भवतु (प्रकाशम्) लम्बस्तनि! अकुटिलहृदयः प्रकृतिपरिहासशीलोऽयं ब्राह्मणः। तदस्य वचोभिर्न कोपितव्यम्।

(कलहंस संकेत से विदूषक को मना करता है)

राजा- लम्बस्तनि! कुशलवती तो हो?

लम्बस्तनी- (मुख को नचाती हुई) अपनी योग-साधना के फलस्वरूप।

विदूषक- हे लम्बस्तनि! अधिक दुर्बल क्यों दिख रही हो?

लम्बस्तनी- मार्गजन्य परिश्रम के कारण।

विदूषक- हे कलहंस! कुछ बैलों के द्वारा मारकर फुलाई गई यह क्या यहीं प्राप्त हुई (मिली)?

(कलहंस हँसकर मुख को नीचे कर बैठ जाता है)

राजा- (भयपूर्वक मन में) यह दुष्ट निश्चित ही इसको कुपित कर देगा। अच्छा (प्रकट में) लम्बस्तनि! दुष्टता से रहित हृदय वाला यह ब्राह्मण स्वभाव से हास-परिहास वाला है। इसलिए इसके वचन से आप कुपित न हों।

(१) आत्मनो योगस्य प्रसादेन। (२) भगवति! किमतिदुर्बलाऽसि?

(३) मार्गपरिश्रमेण। (४) भो कलहंस! कियद्भिर्गोभिर्मृतैरेषाऽत्र।

१ क. पसाएण। २ ख. गुणेहिं मुदेहिं।

लम्बस्तनी- (कटितटं करतलेनाहत्य, मुखं वक्रीकृत्य) (१) नाहमीदिसाणं गद्दहमुहाणं उत्तरं देमि।

राजा- (विहस्य) महाप्रभावा श्रूयते भवती। तदावेदय किमपि।

लम्बस्तनी- (सगर्वम्) (२) भो महाराय! अपुत्ताणं पुत्तं देमि, अणायारसंजादे? गम्भे पाडेमि, दुल्लहं पि पिअजणं संपाडेमि। किं बहुणा? जं तिहुयणे वि असज्झं तं साहेमि।

राजा- (अपवार्य कलहंसं प्रति) अहो धृष्टता! अहो निर्लज्जता! विमृश, संवदति किमप्येतदुक्तम्?

कलहंसः- न किमपि, गर्भपातं पुनर्जानाति।

लम्बस्तनी- (कटि प्रदेश को हाथ से ठोककर, मुख को टेढ़ाकर) इस तरह के गर्दभमुख को मैं जबाब नहीं देती।

राजा- (हँसकर) सुना है कि आप बहुत ही प्रभावशालिनी हैं। इसलिए कुछ कहिये।

लम्बस्तनी- (गर्व के साथ) हे महाराज! निःसन्तान को सन्तान देती हूँ। व्यभिचार से धारण किये गये गर्भ को गिराती हूँ। अत्यन्त दुर्लभ प्रियजन को मिलाती हूँ। अधिक क्या? लोक में जो कार्य सम्भव नहीं, उसे भी सिद्ध करती हूँ।

राजा- (अपवारित में कलहंस से) वाह रे इसकी धृष्टता! वाह रे इसकी निर्लज्जता! और इसका सोचविचार, यह तो बिल्कुल असम्बद्ध बात कह रही है?

कलहंस- कुछ नहीं, पुनः केवल गर्भ को गिराना जानती है।

(१) नाहमीदृशानां गर्दभमुखानामुत्तरं ददामि।

(२) भो महाराज! अपुत्रेभ्यः पुत्रं ददामि। अनाचारसंजातान् गर्भान् पातयामि। दुर्लभमपि प्रियजनं सम्पादयामि। किं बहुना? यत् त्रिभुवनेऽप्यसाध्यं तत् साधयामि।

१. ख. ग. श्रूयते त।

२. क. संजाए।

३. क. संपडावेमि।

राजा- (सविचिकित्सम्) अदृश्यमुखेयं तर्हि।

विदूषकः- (४) भोदी! एगं दाव मे संसयं भंजेहि। मह बंभणीए माया धूलकुट्टिणी जा पाडलिपुत्ते वसदि, सा किं तुमं आदु अत्रा का वि?

राजा- (सरोषम्) अयि मुखरब्राह्मण! नाद्यापि परिहासाद् विरमसि।
(पुनर्लम्बस्तनीं प्रति) भविष्यति नः किमपि भवद्दर्शनफलम्?
लम्बस्तनी- (१) अवस्सं भविस्सदि।

राजा- (अपवार्यं) तर्हि विदर्भजां सम्पादय।

लम्बस्तनी- (२) इत्थ को वि किं संदेहो? एसा संपाडेमि।

राजा- (सहर्षम्) कोऽत्र भो भाण्डागारिषु?

राजा- (घृणा के साथ) तो इसका मुख देखने योग्य नहीं है।

विदूषक- देवि! हमारे एक सन्देह को आप दूर करें। मेरी ब्राह्मणी (पत्नी) की माता (जिसका नाम स्थूलकुट्टिनी है) जो पाटलिपुत्र (पटना) में रहती हैं, क्या आप वही हैं अथवा कोई और।

राजा- (क्रोधपूर्वक) अरे वाचालब्राह्मण! अब भी हास-परिहास से विरत नहीं हो रहे हो। (पुनः लम्बस्तनी से) आपके दर्शन का कोई फल हमको (प्राप्त) होगा?

लम्बस्तनी- अवश्य होगा।

राजा- (अपवारित में) तो दमयन्ती को यहाँ लाओ।

लम्बस्तनी- तो इसमें भी क्या कोई सन्देह है? उसे अभी लाती हूँ।

राजा- (हर्ष के साथ) अरे यहाँ भाण्डारगृह में कौन है?

(१) भगवति! एकं तावन्मे संशयं भङ्क्ष्व। मम ब्राह्मण्या माता स्थूलकुट्टिनी या पाटलिपुत्रे वसति, सा किं त्वमथवाऽन्या काऽपि?

(२) अवश्यं भविष्यति।

(३) अत्र कोऽपि किं सन्देहः? एषा सम्पादयामि।

(प्रविश्य)

पुरुषः एषोऽस्मि।

राजा- अये कोरक! एतस्याः सर्वाङ्गीणं कनकाभरणं प्रयच्छ।

कोरकः- आदेशः प्रमाणम् (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

राजा- लम्बस्तनि! त्वमपि स्वदेशे विजयस्व।

लम्बस्तनी- (१) सत्थि महारायस्स। (इत्यभिधाय कटितटीं नर्तयन्ती निष्क्रान्ता)

राजा- (स्मृतिमभिनीय) अमात्य! लम्बोदरः कापालिकः कथं वर्तते?

किम्पुरुषः- देव! लम्बोदरो युवराजकूबरेण क्रीडापात्रं कर्तुं नीतोऽस्ति।

राजा^१- एवम् (विमृश्य)

(प्रवेशकर)

पुरुष- यह मैं हूँ।

राजा- हे कोरक! इसके समस्त अङ्गों के लिए स्वर्णालंकार दो।

कोरक- आदेश शिरोधार्य है (यह कहकर चला जाता है)।

राजा- लम्बस्तनि! तुम भी अपने देश को प्रस्थान करो।

लम्बस्तनी- महाराज का कल्याण हो। (यह कहकर कमर को नचाती हुई निकल जाती है)

राजा- (स्मृति का अभिनयकर) अमात्य! लम्बोदर नामक कापालिक कहाँ है?

किम्पुरुष- हे राजन्! लम्बोदर युवराज नलकूबर द्वारा क्रीड़ा के योग्य व्यक्ति बनाने के लिए ले जाया गया है।

राजा- तो यह बात है (विचार कर)

(१) स्वस्ति महाराजाय

दुष्टसङ्गः कुमारस्य सोऽयं तेजःक्षयावहः।

मार्तण्डमण्डलस्येव सैहिकेयसमागमः॥२०॥

कलहंसः— दुरात्मनः कापालिकस्य संसर्गाद् दुष्प्रकृतिरपि काऽपि कुमारस्य सम्भाव्यते।

किम्पुरुषः— प्रतिहतोऽयं वितर्कः। यतः—

शुभा वा लोकस्य प्रकृतिरशुभा वा सहभवा

परेषां संसर्गात्न खलु गुण-दोषौ प्रभवतः।

अपां पत्युर्मध्ये सततमधिवासेऽपि मृदुतां

न यान्ति प्रावाणः स्पृशति न च पाथः परुषताम्॥२१॥

राहु के समागम (सम्पर्क) से सूर्य का बिम्ब (जैसे) क्षीण तेज वाला हो जाता है, उसी तरह उस दुष्ट लम्बोदर के संसर्ग से यह कुमार भी क्षीण तेज वाला हो जायेगा॥२०॥

कलहंस— दुरात्मा कापालिक के संसर्ग से कुमार भी दुष्प्रकृति का हो जायेगा इसकी कोई सम्भावना ही करते हैं।

किम्पुरुष— यह तर्क व्यर्थ है। क्योंकि—

लोक (जगत) की नैसर्गिक स्थिति (चाहे) शुभ (फल देने वाली) हो अथवा अशुभ (फल देने वाली) हो या सहज (सरल, स्वाभाविक) हो, (परन्तु) दूसरे के संयोग (सम्पर्क) से गुण और दोष प्रभावित नहीं होता है। समुद्र के बीच में निरन्तर वास

टिप्पणी— 'सैहिकेय'— "तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैहिकेयो विधुंतुदः" इत्यमरः। राहु एक राक्षस का नाम था। विप्रचित्त और सिंहिका का पुत्र होने के कारण इसे सैहिकेय भी कहा जाता है। जब समुद्रमंथन के परिणामस्वरूप समुद्र से निकला अमृत देवताओं को परोसा जाने लगा तो राहु ने वेश बदलकर उनके साथ स्वयं भी अमृत पीना चाहा। परन्तु सूर्य और चन्द्रमा को इस षड्यन्त्र का पता लगा, तो उन्होंने विष्णु को इस चालाकी का ज्ञान कराया। फलतः विष्णु ने राहु का सिर काट डाला, चूँकि थोड़ा सा अमृत वह चख चुका था, तो उसका सिर अमर हो गया। परन्तु कहते हैं कि पूर्णिमा या अमावस्या को वे दोनों चन्द्र और सूर्य को अब भी सताते रहते हैं। ज्योतिष में राहु भी केतु की भाँति समझा जाता है, यह आठवाँ ग्रह है, या चन्द्रमा का आरोही शिरबिन्दु है।

टिप्पणी— 'पाथः'— "पाथोऽकेऽग्नौ जले" इदि मेदिनी।

अपि च देवस्य निषधस्यामि सन्ततिर्दुष्प्रकृतिर्भवतीति श्रद्धालवोऽपि न प्रतिपद्यन्ते, किमङ्ग! हृदयालवः?

कलहंसः— (सरोषम्) प्रतिहततमोऽयं वितर्कः।

भजन्ते कार्याणि प्रकृतिविभवं कारणगतं

प्रवादो लोकानां ध्रुवमयमनेकान्तकलुषः।

मृदुत्वं तत् किञ्चिज्जलदपयसां विश्वविदितं

स कश्चिन्मुक्तानामथ च किल काठिन्यनिकषः॥२२॥

राजा— किमपरमुच्यते?

करने पर भी पत्थर कोमल नहीं हो जाता है और न तो जल पत्थर की कठोरता को ही छूता है। (अर्थात् जल पत्थर के समान कठोर नहीं हो जाता है)॥२१॥

और भी, महाराज नल की सन्तति (सन्तान) दुष्प्रकृति की होगी ऐसा तो निष्ठावान् (विश्वास करने वाले) भी नहीं प्रतिपादित करते (अर्थात् कहते) हैं (तो फिर) हे राजन्! कोमलहृदय वालों (अच्छे दिल वालों) की बात ही क्या है।

कलहंस— (क्रोध के साथ) यह तर्क बिल्कुल व्यर्थ है।

कार्य कारण में रहने वाले स्वाभाविक (नैसर्गिक) गुणों को प्राप्त करता है यह किंवदन्ती लोक में निश्चय ही किसी भी दोष से रहित है। उसके बाद, जगत्प्रसिद्ध है (कि) मेघ से गिरने वाले जल में भी कोमलता रहती है तथा कोई मुक्तामणि निश्चित रूप से कठोर होता है (क्योंकि उसकी) कठोरता ही उसकी कसौटी है॥२२॥

राजा— क्या इसमें भी सन्देह है?

१ क. लवो न।

टिप्पणी— 'श्रद्धालवः'— श्रद्धा + आलुच् + प्रथमाविभक्ति, बहुवचन। 'हृदयालवः'— हृदय + आलुच् + प्रथमाविभक्ति, बहुवचन।

टिप्पणी— 'कारणगतम्'— वस्तुतः कार्य कारण के गुणों को प्राप्त करता है। यही कारण है कि कमलिनी के नाल के अग्रभाग को खाने वाला हंस अन्न के अनुरूप शरीर के रूप की समृद्धि अर्थात् स्वर्णशरीर को प्राप्त करता है। "अज्ञानरूपां तनुरूपमृद्धिं कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते"।

असौ पाखण्डिचाण्डालो युवराजस्य निश्चितम्।

वातापितापकारीव विन्ध्यस्योन्नतिघातकः॥२३॥

(नेपथ्ये)

अखिलानां बिसिनीनां कमलमुखान्येकहेलया द्रष्टुम्।

गगनाचलगर्भमसावधिरोहति कमलिनीनाथः॥२४॥

राजा— (स्वगतम्) कथमयं मागधो मध्यन्दिनवर्णनापदेशेन प्रियामुखदर्शनं
पिशुनयति! भवतु (प्रकाशम्) कलहंस! दर्शय मार्गं, येन मध्याह्नस्नानाय
व्रजामः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥द्वितीयोऽङ्कः॥

विन्ध्यपर्वत की उन्नति की बाधक वातापि नामक राक्षस को सन्तप्त करने वाले
अगस्त्य की तरह पाखण्डियों में चाण्डाल यह लम्बोदर नामक कापालिक निश्चय ही
युवराज की उन्नति में बाधक है॥२३॥

(पर्दे के पीछे)

समस्त कमलिनी रूपी नायिकाओं के कमल रूपी मुखों को आसानी से देखने
के लिए कमलिनीनाथ (भगवान् सूर्य) आकाश और पर्वत के मध्य चढ़ रहे हैं॥२४॥

राजा— (मन ही मन) क्या यह बन्दीजन मध्याह्नकालिक वर्णन के द्वारा प्रिया
दमयन्ती के मुख दर्शन की सूचना दे रहा है। अच्छा (प्रकट में) कलहंस! रास्ता
दिखाओ, जिससे मध्याह्नकालिक (दोपहर के समय का) स्नान के लिए चलें।

(यह कहकर रङ्गमञ्च पर से सभी चले जाते हैं)

॥द्वितीय अङ्क समाप्त॥

तृतीयोऽङ्कः ।

(ततः प्रविश्य)

कुरङ्गकः— (उच्चैःस्वरमाकाशे) अये मुकुल^१! बकुलप्रभृतीनि प्रगुणय सुरभिकुसुमानि। उपनय पाकाताप्राप्रप्रमुखानि फलानि। ननु पञ्चबाणायतनमिदानीं देवी दमयन्ती सगन्धर्वलोका समलङ्करिष्यति।

(प्रविश्य)

मुकुलः— आर्य कुरङ्गक! सर्वं प्रगुणमेव पूजोपकरणम्, किन्तु कथय किन्निमित्तोऽयमद्य सकलेऽपि राजकुले संरम्भः?

कुरङ्गकः— (सरोषमिव) अये सरल मुकुल! वैदेशिक इव लक्ष्यसे। एतदपि न जानासि, ननु देव्या दमयन्त्याः श्वः स्वयंवरविधिः।

(उसके बाद प्रवेशकर)

कुरङ्गक— (आकाश में देखकर अकेले ही जोर से कहता है) अरे मुकुल! मौलसिरी (केसर) प्रभृति सुगन्धित पुष्पों को व्यवस्थित करो। पक जाने के कारण लाल हो गये आम आदि प्रधान फलों को लाओ। निश्चय ही इस समय (अब) दमयन्ती देवी गन्धर्वोंसहित कामदेव के गृह को सुशोभित करेंगी।

(प्रवेशकर)

मुकुल— हे आर्य कुरङ्गक! पूजा की सभी सामग्री व्यवस्थित कर ली गई है, लेकिन कहो क्या कारण है कि आज समस्त राजपरिवार में हड़बड़ी (खलबली) है?

कुरङ्गक— (क्रोधित हुए ही तरह) अरे निश्चल मुकुल! तुम तो परदेशी जैसे लग रहे हो। यह भी नहीं जानते हो कि कल स्वयंवररीति से देवी दमयन्ती का विवाह होगा।

१. क. मुकुल मुकुल.

टिप्पणी— 'बकुल' — "केसरे वकुलः" इत्यमरः। "केसरे वकुलः" इति वैजयन्ती। बकुल (वकुल) स्य मौलसिरी इति ख्यातस्य। 'पञ्चबाण' — "कामः पञ्चशरः स्मरः"।

टिप्पणी— 'वैदेशिकः' — विदेशे भवः वैदेशिकः, विदेशे ठञ् (इक्) आदि अच् की वृद्धि।

मुकुलः- श्वः स्वयंवरविधिः?

कुरङ्गकः- अथ किम्।

मुकुलः- (विकिन्त्य) ननु दमयन्तीं चेदिपतये चित्रसेनाय दातुमभि'लाषुको विदर्भ'पतिरासीत्।

कुरङ्गकः- आसीत् प्रतिकृतिदर्शनात् पूर्वम्।

मुकुलः- (ससम्भ्रमम्) विततमावेदय।

कुरङ्गकः- तां निषधादागतां दमयन्तीप्रतिकृतिमालोक्य कथमियं निषधायां गतेति गवेषयता देवेन ज्ञातं यथा- घोरघोणः कापालिको दमयन्तीपरिणयनोत्कण्ठितस्य चित्रसेनस्य मेषमुखनामा प्रणिधिः। सोऽपि लम्बोदरोऽस्यानुचरः कोष्टकनामा चार एव।

मुकुलः- (सत्वरम्) ततस्ततः।

मुकुल- तो कल स्वयंवर का अनुष्ठान होगा?

कुरङ्गक- और क्या।

मुकुल- (मन में विचारकर) विदर्भपति भीमरथ तो दमयन्ती को चेदिपति चित्रसेन को देना (अर्थात् दमयन्ती का विवाह चित्रसेन से करना) चाहते थे।

कुरङ्गक- हाँ थे, किन्तु छयाचित्र को देखने से पहले।

मुकुल- (उत्कण्ठापूर्वक) यह वृत्तान्त विस्तार से कहिये।

कुरङ्गक- निषधदेश से आई दमयन्ती की उस प्रतिकृति को देखकर यह प्रतिकृति निषधदेश में कैसे गई ऐसा अन्वेषण करते हुए महाराजको ज्ञात हो गया कि कापालिक घोरघोण, दमयन्ती से विवाह करने को उत्कण्ठित चित्रसेन का, मेषमुख नामक गुप्तचर है और उस (घोरघोण) का अनुयायी वह लम्बोदर भी कोष्टक नाम का गुप्तचर ही है।

मुकुल- (शीघ्रतापूर्वक) उसके बाद, उसके बाद।

१. क. लाषो।

२. क. पते।

टिप्पणी- 'प्रतिकृति' — "प्रतिकृतिरथार्चायां प्रतिनिधिप्रतीकार्योश्च स्त्री" इति मेदिनी।

कुरङ्गकः- ततो धर्मकर्मविप्लवमवधार्य छिन्नकण्ठनासिकया लम्बस्तनिकया सह गर्दभमारोप्य देवेन घोरघोणो निर्विषयः कृतः।

मुकुलः- (साश्चर्यम्) पश्य मलिनकर्माऽपि कियतीं प्रतिष्ठामधिरोपितो देवेनायं घोरघोणः।

कुरङ्गकः- विस्मयनीयं नैवैतत्।

आस्तां क्षयं किमिह पातकिनो न यान्ति
यान्ति श्रियं समधिकं किमु धार्मिकेभ्यः।
तेनासमञ्जसमसौ रचयन् विशङ्को
लोकश्चिरं मनसि वाचि तनौ च हृष्येत्॥१॥

मुकुलः- साम्प्रतं क्वासौ?

कुरङ्गकः- साम्प्रतमसौ निषधामधिवसतीति श्रूयते।

(नेपथ्ये)

भोः! कः साम्प्रतं निषधामधिवसति?

कुरङ्गक- उसके बाद, धार्मिक अनुष्ठान में विघ्न (हो सकता है ऐसा) मानकर महाराज ने कान, होंठ तथा नाक काटकर लम्बस्तनी के साथ उस (घोरघोण) को गधे पर बैठाकर विदर्भभूमि से निर्वासित कर दिया।

मुकुल- (आश्चर्य के साथ) देखो, दुष्टकर्म करने वाले उस घोरघोण को महाराज ने कितनी (अधिक) प्रतिष्ठा दे दी।

कुरङ्गक- इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

ठीक है, (परन्तु) क्या दुष्प्रवृत्ति वाले दुरात्मा जन पतन को प्राप्त नहीं करते हैं अर्थात् करते ही हैं। और क्या धार्मिक कार्यों को करने वाले पुरुषों से अधिक शोभा (प्रतिष्ठा) को प्राप्त करते हैं? इसी प्रकार वे दोनों दुष्ट बोधगम्य न होने वाले आचरण की स्थिति को उत्पन्न करते हुए इस जगत् में चिरकाल तक लोगों के मन, वाणी और शरीर का हरण करते रहे॥१॥

मुकुल- इस समय वह कहाँ है?

कुरङ्गक- ऐसा सुना जा रहा है कि इस समय वह निषधदेश में रह रहा है।

(नेपथ्य में)

अरे! कौन इस समय निषधदेश में रह रहा है?

कुरङ्गकः- (प्रणम्य) देव! कापालिकघोरघोणः ।

राजा- (स्वगतम्) लम्बोदरोपजनितवासनेन युवराजकूबरेण समाहूतः ।
भवतु (प्रकाशम्) भो भोः सैन्याः! बहिः स्थातव्यं बहिः स्थातव्यम् । न खलु
सहकारनिकराभिरामः सोढुमलमयमारामश्चक्रावमर्दम् ।

कुरङ्गकः- (मुकुलं प्रति) एहि स्वस्थानं व्रजामः ।

(इति प्रणम्य निष्क्रान्तौ)

राजा- अहो! वसन्तावतारव्यतिषङ्गरङ्गत्परिभोगमखिलं जगत् ।

परिमलभृतो वाताः शाखा नवाङ्कुरकोटयो

मधुकररुतोत्कण्ठाभाजः प्रियाः पिकपक्षिणाम् ।

विरलविरलस्वेदोद्गारा वधूवदनेन्दवः

प्रसरति मधौ धात्र्यां जातो न कस्य गुणोदयः? ।।२।।

कुरङ्गक- (प्रणाम करके) देव! कापालिक घोरघोण ।

राजा- (अपने मन में) कापालिक लम्बोदर कारागार रूपी आवास से युवराज कूबर के द्वारा बुलाया गया। अच्छा (प्रकट में) अरे सैनिको! बाहर ही रुको, बाहर ही रुको। (क्योंकि) आम वृक्ष के झुण्डों से सुन्दर यह उद्यान तुम लोगों द्वारा बर्बाद करने के योग्य नहीं है।

कुरङ्गक- (मुकुल के प्रति) आओ, हम अपने स्थान को चलें।

(ऐसा कहकर प्रणाम करके रङ्गमञ्च पर से दोनों चले जाते हैं)

राजा- ओह! वसन्तऋतु के सम्पर्क से यह सम्पूर्ण जगत् भोगमय हो गया है।

सुगन्ध को धारण करने वाला वायु, शाखाओं के नवीन पल्लव समूह, भौरों की गुञ्जन ध्वनि और कोयल पक्षी की प्रियाओं की कू-कू ध्वनि, प्रिय के लिए उत्कण्ठित अङ्गनाओं के चन्द्रमारूपी मुख पर कुछ-कुछ स्वेदबिन्दुओं को बहाने वाले वसन्त ऋतु के इस पृथ्वी पर विस्तार हो जाने से ऐसा कौन सा गुण है, जो उत्पन्न नहीं हो जाता है? अर्थात् सभी प्रकार के गुण उत्पन्न हो जाते हैं? ।।२।।

(दिशोऽवलोक्य)

अभिनभः प्रसृतैर्नवमल्लिकाकुसुमपुञ्जरजोभिरयं मधुः।

यवनिकां विदधाति वियोगिनां शशिकरव्यतिषङ्गनिवृत्तये।।३।।

कलहंस! विदितवृत्तान्तः स भवान् विदर्भानाम्। तद् विलोक्य
किमप्यतिरमणीयमत्र कुसुमाकरोद्यानेऽस्माकमावासस्थानम्।

कलहंसः— यदादिशति देवः।

विदूषकः— (१) ही ही! पडिपुत्रा मे बंभणीए मणोरथा।
सत्थिवायणगं पि किं पि दाणं मे रायदुहिया पडिवादयस्सदि। अथवा न
सत्थिवायणं करिस्सं, सा मं गहहमुहं भणादि। भोदी मयरिए! णं
पुच्छामि, सव्वकज्जे वि विदब्भपुत्ती मं गहहमुहं वाहरदि?

(दिशाओं में देखकर)

आकाश में फैले हुए नवीन मल्लिका पुष्प समूह के परागरूपी धूलि के द्वारा
यह वसन्त ऋतु वियोगियों के लिए चन्द्रमा की किरणों के सम्पर्क को रोकने हेतु
आकाश में पर्दे का रूप धारण कर रहा है।।३।।

हे कलहंस! तुम विदर्भदेश के वृत्तान्त से भलीभाँति परिचित हो, इसलिए देखो
कि पुष्पसमूह वाले इस उद्यान में हम लोगों के ठहरने योग्य कोई रमणीय स्थान है।

कलहंस— महाराज की जैसी आज्ञा।

विदूषक— अहह! मेरी ब्राह्मणी(पत्नी) का मनोरथ पूर्ण हो गया। मांगलिक गान
करने के कारण भीमनरेश की पुत्री दमयन्ती निश्चित ही कुछ न कुछ दान के रूप में
मुझे देगी ही अथवा मैं मांगलिक गान नहीं करूँगा, क्योंकि उसने मुझे गर्दभमुख कहा
है। हे मकरिके! मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या वह दमयन्ती मुझे हमेशा गर्दभमुख ही
कहती है।

(१) अहो अहो! प्रतिपूर्णा मे ब्राह्मण्या मनोरथाः। स्वस्तिवाचनकमपि
किमपि दानं मे राजदुहिता प्रतिपादयिष्यति। अथवा न स्वस्तिवाचनं करिष्ये,
मां गर्दभमुखं भणति। भवति मकरिके! त्वां पृच्छामि-सर्वकार्येऽपि विदर्भपुत्री
मां गर्दभमुखं व्याहरति?

मकरिका- (स्मित्वा) (१) न परं गद्दहमुहं, मक्कडकन्नं वंकपायं
च।

विदूषकः- (२) हला मुहरे! सुमरेसि 'एदं भणिदं?

राजा- (स्वगतम्)

आमन्त्रिता वयमतः प्रमदः परेऽपि

सन्त्यागताः क्षितिभुजोऽथ विषादतापः।

अङ्ग विधानमिव सन्धिषु रूपकाणां

तुल्यं स्वयंवरविधिः सुख-दुःखहेतुः॥४॥

कलहंसः- अयं तरुणतरणिकिरणकरणिधारिचारुप्रवालपटल-
पुलाकितानेकशाखाप्रतानविनिवारितातपप्रचारः सहकारस्त-
दास्यतामस्यालवाल-वारिशीकरासारोपगूढ-प्ररूढहरितोपजातपर'भागे
मूलभागे देवेन।

मकरिका- (हँसकर) केवल गर्दभमुख ही नहीं अपितु बन्दर की कान वाला
तथा टेढ़े पैरों वाला भी कहती है।

विदूषक- अरी वाचाल! क्या इस कथन का स्मरण कर रही है?

राजा- (अपने मन में)

हम आमन्त्रित हैं इसलिए प्रसन्न हैं, किन्तु अन्य राजा भी आये हुए हैं यह विषाद
का कारण है। (वस्तुतः) रूपकों में सुख और दुःख उत्पन्न करने के लिए जैसे मुखादि
पञ्च सन्धिषु के अङ्गों का विन्यास किया जाता है उसी प्रकार यह स्वयंवर अनुष्ठान
सुख और दुःख दोनों का कारण है॥४॥

कलहंस- मध्याह्नकालिक सूर्य-किरणों के ताप के प्रभाव को रोकने वाला,
धारण किये हुए सुन्दर नवीन पल्लवों से आच्छादित अतएव रोमाञ्चित फैले हुए अनेक
शाखाओं वाला यह आम का वृक्ष है जिसके आलवाल (थाला) में जल बूंदों को ग्रहण

(१) न परं गर्दभमुखम्, मर्कटकर्णं वक्रपादं च।

(२) अरे मुखरे! स्मरसि एतद् भणितम्?

१. क. एवं। २. ख.ग. परभागे दे.

राजा- (तथा कृत्वा) कलहंस! पश्य सहकारशाखासनीडे नीडे।

प्रियतमावदनेन्दुविलोकि तैरसुहितः कलकण्ठयुवा नवः।

प्रतिमुहुः प्रतिगत्य नभस्तलाद् वलति याति वलत्यथ यात्यथ॥५॥

अपि च-

उत्तंसकौतुकनवक्षतदक्षिणाशा-

शाखाप्रपल्लवलवा सहकारवीथी।

सेयं समादिशति नः स्फुटमङ्गनानां

सद्यः सलीलगतमञ्चितयौवनानाम्॥६॥

कलहंसः-

स्विघ्नन्नितम्बभरपूरनिमग्नपार्ष्णि-

भागातिनिमग्नपदपद्भतिबन्धुराङ्गी।

स्त्रीणां न केवलमसौ सहकारवीथी

यातं दिशत्यवनिरप्यवनीशचन्द्रः॥७॥

कर शीतलता प्रदान करने वाली तेज वायु से आलिङ्गित इसके समीप हरी घास युक्त स्थान है अतः महाराज इस वृक्ष के समीप बैठें।

राजा- (वैसा ही करके) हे कलहंस! आग्र वृक्ष की शाखा के निकटस्थ विश्रामस्थल को देखो।

प्रियतमा के चन्द्रमारूपी मुख को देखने में अतृप्त नवीन युवा पिक आकाशतल से जाकर बार-बार आता है जाता है, फिर लौटकर आता है और फिर जाता है॥५॥

और भी,

(कर्ण) आभूषण (धारण करने) के कुतूहल के कारण तत्काल तोड़े गये दक्षिण दिशा की डालियों के पल्लवाङ्कुरों वाली यह आग्रवृक्ष की पंक्ति लीलापूर्वक गमन की गई यौवन से आलिङ्गित अङ्गनाओं के मार्ग की हमें स्पष्ट सूचना (भी) दे रही है॥६॥

कलहंस- हे पृथ्वीनाथ! नितम्बभार के कारण पीछे के भाग के अधिक दब जाने से पसीने से तर छोटे-छोटे कदमों के निक्षेप से सुन्दर गात्रों वाली स्त्रियों के गमन मार्ग को केवल यह आग्रवृक्ष की पंक्ति ही नहीं, अपितु यह पृथ्वी भी उसके जाने को कह रही है॥७॥

राजा- (कर्ण दत्त्वा स्वगतम्) कथमनक्षरगीतध्वनिः? (प्रकाशम्)
कलहंस! शृणोषि किमपि?

विदूषकः- (१) चीरीयाणं महुरं रसिदं सुणेमि।

राजा- धिग् मूर्ख! नन्वेष-

उत्कर्णयन् वनविहारिकुरङ्गयूथा-

न्याश्लेषयन् विरहकान् कलिकाकलापैः।

सम्पूर्णपञ्चमकलासुभगम्भविष्णुः

कर्णो विनिद्रयति मुद्रितगीतनादः॥८॥

कलहंसः- यथाऽऽदिशति देवः।

राजा- अहह! सहृदयहृदयापहारिहारितम् (मा) अशेषविषयशेखरो
गीतनादः।

राजा- (कान लगाकर अपने मन में) यह अस्पष्ट संगीतध्वनि कहाँ से? (प्रकट
में) हे कलहंस! क्या कुछ सुन रहे हो?

विदूषक- झीङ्गर की मधुर ध्वनि सुन रहा हूँ।

राजा- अरे मूर्ख!

यह तो—

वन में विहार करने वाले मृग झुण्डों के कानों को ऊपर उठाने वाली अर्थात्, श्रवण के लिए उत्कण्ठित करने वाली, कोयलों की मधुर कू-कू की ध्वनि से विरहीजन को उत्कण्ठित करने वाली, पञ्चमस्वर को पूर्णता प्रदान करने वाली गीत ध्वनि हो रही है, जो गीत ध्वनि श्रवणेन्द्रियों को खोल रही है, अर्थात् गीत श्रवण के लिए श्रवणेन्द्रिय उधर संलग्न हो रही है॥८॥

कलहंस- महाराज की जैसी आज्ञा।

राजा- वाह! सहृदयजनों के हृदय को आकृष्ट करने वाली यह सभी रूपादि विषयों में मूर्धन्य सर्वोत्तम गीत ध्वनि है।

(१) चीरीकाणां मधुरं रसितं शृणोमि।

कलहंस!

अजल्यं जल्पामः किमपि किल पाषाणसुहृदां

सदा तेषां भूयाज्जगति पुरुषाणामजननिः ।

असारं संसारं विदधति न सारं प्रतिमुहुः

पिबन्तो ये सूक्तीरथ च कलगीतीर्मधुमुचः ॥१॥

अपि च—

न गीतशास्त्रमर्मज्ञा न तत्त्वज्ञाश्च ये किल ।

अपौरपशुदेश्येभ्यस्तेभ्यः पुम्यो नमो नमः ॥१०॥

कलहंसः— देव!

आस्तां मर्मपरिज्ञानं येषां गीतस्पृहाऽपि न ।

कुरङ्गेभ्योऽपि हीनेषु मर्त्यत्वं तेषु वैशसम् ॥११॥

हे कलहंस!

हम कुछ अकथनीय बात कह रहे हैं (वह यह कि) उन पाषाण तुल्य नीरस पुरुषों का संसार में जन्म न हो जो मधुरस बहाने वाली मधुर गीतियों को और सूक्तियों का पान करते हुए भी बार-बार इस संसार को असार कहते हैं, सारवान् नहीं ॥१॥

और भी—

जो न तो संगीतशास्त्र को जानने वाले हैं और न उसके मर्म (तत्त्व) को ही समझने वाले हैं ऐसे, गाँवों में रहने वाले पशुतुल्य पुरुषों को (मैं राजा नल) हमेशा-हमेशा नमस्कार करता हूँ ॥१०॥

कलहंस— हे महाराज!

जिनको गीत तत्त्वों का सम्यक् ज्ञान तो दूर रहा संगीत में स्पृहा ही नहीं है (ऐसे)मृगों से भी हीन मनुष्य का मनुष्यत्व भी निष्फल (ही) है ॥११॥

टिप्पणी— सूक्ति— सु = सुष्ठु + उक्ति = सुन्दर वचनावली

राजा- अलमलमतिविस्तरेण। जानीहि कुतस्त्योऽयं पञ्चमोद्गारसारः
समुच्छलति गीतामृतासारः?

कलहंसः- (किञ्चित् परिक्रम्य पश्यति) देव! दवीयसि काननोद्देशे
बहलपल्लवाविलानेकतिलकचम्पकप्रभृतिरुतिरोहितं देवताऽऽयतनम्।

राजा- न केवलं देवतायतनं पण्याङ्गनाचक्रं च सङ्गीतक-
मादधानमवलोकयामि। (सर्वे निपुणमवलोकयन्ति) कलहंस! पश्य पश्य।

प्रेङ्खविघट्टनरुषा कलहायमान-

दोर्वल्लिकङ्कणरणत्कृतिपीतगीतम्।

‘नृत्यं कुरङ्गकदशां विलसद्विलास-

मुल्लासयेत् स्मरमते दृषदोऽपि रन्तुम्।।१२।।

(विमृश्य) कलहंस!

सर्वेषामपि सन्ति वेश्मसु कुतः कान्ताः कुरङ्गीदृशो

न्यायार्थी परदारविप्लवकरं राजा जनं बाधते।

राजा- अधिक विस्तार की आवश्यकता नहीं। इसका पता लगाओ कि पञ्चमस्वर के तत्त्व से परिपूर्ण संगीत की अमृतरूपी वर्षा कहाँ से हो रही है।

कलहंस- (कुछ भ्रमण करके देखता है, पश्चात्) हे महाराज! दूरवर्ती जंगल के एक भाग में बहुत अधिक पल्लवों के कारण अस्पष्ट अनेक प्रकार के तिलक, चम्पक प्रभृति वृक्षों से आच्छादित देवस्थल है।

राजा- केवल देवस्थल को ही नहीं अपितु गीत गाती हुई पण्याङ्गनाओं का समूह भी देख रहा हूँ। (सभी अच्छी तरह से देखते हैं) हे कलहंस! देखो, देखो।

(नृत्य के समय) गति के कारण (उत्पन्न) घर्षण से क्रोधित, हिलती हुई भुजलताओं में पहनी गई कंकण की खन-खन की ध्वनि से उत्पन्न गीत का पान कर चुके, शृङ्गारक्रीड़ा से शोभायमान मृगनयनियों का नृत्य पत्थर को भी कामक्रीड़ा में रमण करने के लिए उत्सुक कर रहा है।।१२।।

टिप्पणी- पश्य पश्य— शीघ्रता (घबराहट) में किसी क्रिया का दो बार कथन होता है—

‘सम्भ्रमे द्विरुक्तिः।

१. क. नृत्तं।

आज्ञां कारितवान् प्रजापतिमपि स्वां पञ्चबाणस्ततः

कामार्तः क्व जनो व्रजेत् परहिताः पण्याङ्गनाः स्युर्न चेत् ॥१३॥

पुनः कामसर्वस्वगर्भम्। यदि वा-

शृङ्गारसौरभरहस्यजुषां विधातुं

पण्याङ्गनाः समुचितं किमु नेत्रपात्रम्?

कुर्वन्ति याः कुसुमकार्मुकजीवितस्य

शर्म श्रियो रतिभुवः किल मूल्यमात्रम् ॥१४॥

कलहंसः— एवमेतत्।

(विचारकर) हे कलहंस! मृगनयनी रमणियों का सभी के घर में होना सम्भव नहीं (और) दूसरे की स्त्री का हरण करने वाले जन को न्यायप्रिय राजा दण्ड भी देता है, तब जो कामदेव प्रजापति (ब्रह्मा) से भी अपनी इच्छानुसार (कार्य) करवाता है उस कामदेव के प्रभाव से काम से पीड़ित जन (अपनी वासना निवृत्ति के लिए) यदि दूसरे के स्वार्थ को सिद्ध करने वाली पण्याङ्गनाओं (वेश्याओं) के पास न जाँय, तो कहा जाँय? ॥१३॥

पुनः काम सभी का मूल है। अथवा—

शृङ्गाररस की सुगन्धि के रहस्य से युक्त पुरुषों के नेत्र द्वारा सम्यक् प्रकार से देखे जाने योग्य क्या पण्याङ्गनायें नहीं हैं? अर्थात् हैं ही, जो पण्याङ्गनायें कामदेव के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली रतिविषयक उत्कण्ठा को धनमात्र से निश्चय ही शान्त करती हैं ॥१४॥

कलहंस— ऐसा ही है।

जिस विट के द्वारा मनरूपी आँखों से देखने वाली व्यवहार से ही (जो) कुलाङ्गनायें निश्चित ही लज्जित हो जाती हैं ऐसी अङ्गनाएँ जिस देश की वेश्या हैं, तो क्या उनकी अभिलाषा करनी चाहिए? ॥१५॥

टिप्पणी— पण्याङ्गना— इसका अर्थ है पैसे से बिकने वाली रमणियाँ अर्थात्, ऐसी रमणियाँ जो धन लेकर उसके बदले दूसरे की काम वासना की निवृत्ति करती हैं, उन्हें 'पण्याङ्गना' कहा जाता है।

विटचेष्टया यया किल कुलसुदृशो दृष्टयापि लज्जन्ते।

सैव च यासां देश्या^१ वेश्यास्ताः किं कृती स्पृहयेत्? ॥१५॥

राजा- कलहंस! निरूपय, किमस्ति काऽप्यस्मिन् पण्याङ्गनारङ्गे
विदर्भदुहितुः सखी वा चेटी वा?

कलहंस:- यदादिशति देवः। (इति परिक्रामति)

विदूषक:- (१) भो! न गंतव्यं, अच्छरापेडयं खु एदं, न
माणुसीपेडयं।

राजा- (सरोषम्) खरमुखवचनमपि भवान् कर्णे करोति!
अनर्गलवदनोऽयं ब्राह्मणः, तद् गम्यताम्।

विदूषक:- (२) जय (इ) वि अहं अणगलवयणो बंभणो, तहावि
एदस्स कलहंसस्स एगागिणो परमहिलाणं मज्जे गमणं न समुचिदं। ता
एसा मयरिया गच्छदु।

राजा- हे कलहंस! अच्छी तरह से देखो कि पण्याङ्गनाओं से युक्त रङ्गमञ्च
पर विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती अथवा उसकी सहेली अथवा उसकी दासी में से
कोई है या नहीं?

कलहंस- महाराज की जैसी आज्ञा। (यह कहकर घूमता है)

विदूषक- अरे कलहंस! वहाँ मत जाओ, निश्चय ही वहाँ अप्सराओं का समूह
है, न कि मानुषी स्त्रियों का समूह।

राजा- (क्रोधपूर्वक) आप खरमुख के वचन पर भी ध्यान देते हैं। यह ब्राह्मण
अनापसनाप बकने वाला है, इसलिए आप जाँय।

विदूषक- यद्यपि मैं अनापसनाप बकने वाला ब्राह्मण हूँ तथापि दूसरी महिलाओं
के मध्य अकेले कलहंस का जाना उचित नहीं है, इसलिए वहाँ यह मकरिका ही जाये।

(१) भोः! न गन्तव्यम्, अप्सरःपेटकं खल्वेतत्, न मानुषीपेटकम्।

(२) यद्यप्यहमनर्गलवदनो ब्राह्मणः, तथाप्येतस्य कलहंसस्यैकाकिनः
परमहितानां मध्ये गमनं न समुचितम्; तदेषा मकरिका गच्छतु।

१. ख.ग. देशो।

राजा- (विहस्य) वयस्य! चिरादुपपन्नमभिहितवानसि। मकरिके! त्वं
व्रज।

मकरिका- (कतिचित् पदानि गत्वा प्रतिनिवृत्य सरभसम्) (१) भट्टा!
दिद्विया दिद्विया^१।

राजा- किं किं सुमुखि?

मकरिका- (२) एसा कविंजलादत्तावलंबा देवी दमयन्ती संगीदयं
कारयन्ती कामायदणमंडवे चिद्वदि।

राजा- (सरभसमवलोक्य) मकरिके! एषा देवी दमयन्ती।

कलहंसः- सत्यमेतदनुभूतं तर्हि रूपदर्शनमात्रकेणापि निषधाधिपतिना
निजस्य जन्मनः फलम्।

राजा- (मुसकराकर) मित्र! बहुत दिनों के बाद तुमने युक्तिसंगत बात कही है।
हे मकरिके! तुम जाओ।

मकरिका- (कुछ पग जाकर पुनः लौटकर शीघ्रतापूर्वक) महाराज! सौभाग्य
से सौभाग्य से।

राजा- हे सुमुखी क्या?

मकरिका- वह दमयन्ती देवी संगीत करवाती हुई कपिञ्जला के सहारे कामदेव
के मन्दिर में ठहरी हुई है।

राजा- (शीघ्रता से देखकर) मकरिके! तो वही देवी दमयन्ती है।

कलहंस- आपने सही अनुमान किया, तो दमयन्ती के रूप-दर्शन से भी
महाराज अपने जन्म को सफल करें।

(१) भर्तः! दिष्ट्या दिष्ट्या।

(२) एषा कपिञ्जलादत्तावलम्बा देवी दमयन्ती संगीतकं कारयन्ती
कामायतनमण्डपे तिष्ठति।

१. ख.ग. भट्टा दिद्विया।

विदूषकः- (१) भो! जथा एसा पुणो पुणो इदो दिट्ठिं पट्टवेदि, तथा जाणे मं नवजुव्वणं बंभणं निरूवेदि।

मकरिका- (अपवार्य) (२) पडिहदो सि।

राजा- सहकारतिरोहितास्तिष्ठामो येनेयं स्वैरं विहरति, वदति, विलोकयति च।

(सर्वे तथा कुर्वन्ति। ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टा दमयन्ती)

दमयन्ती- (३) सहि कविंजले! कुसुमायरे निसिठावइणो आवासं जाणिय कामपूयाववएसेण अहं दाव इह समागदा। गवेसिदो य मए तरुनिरूवणामिसेण सयलो वि आरामो। परं न को वि कहिं पि दिट्ठो। ता किं नेदं, किं न किं पि मयरियामंतसरिसं भविस्सदि?

विदूषक- अरे जिस प्रकार से वह अपनी दृष्टि से बार-बार इधर देखती है, उससे तो यही लगता है कि नवीन युवावस्था से सम्पन्न मुझ ब्राह्मण को ही अच्छी तरह से देख रही है।

मकरिका- (अपवारित करके) तुम ठगे गये।

राजा- तो हम लोग इस आम्रवृक्ष की आड़ में ठहरें जिससे दमयन्ती अपनी इच्छानुसार विचरण करे, बोले और देखे।

(सभी वैसा ही करते हैं। पश्चात् यथानिर्दिष्ट दमयन्ती प्रवेश करती है)

दमयन्ती- सखि कपिञ्जले! पुष्प उद्यान में निषधपति नल का निवास है ऐसा जानकर मैं कामदेव पूजा के बहाने यहाँ आयी। मैंने वृक्षों को देखने के बहाने सम्पूर्ण उद्यान को देखा, परन्तु कोई भी कहीं नहीं है। तो क्या जैसा कि मकरिका ने कहा था वैसा नहीं होगा।

(१) भो! यथैषा पुनः पुनरितो दृष्टिं प्रस्थापयति, तथा जाने मां नवयौवनं ब्राह्मणं निरूपयते।

(२) प्रतिहतोऽसि।

(३) सखि कपिञ्जले! कुसुमाकरे निषधपतेरावासं ज्ञात्वा कामपूजाव्यपदेशेनाहं तावदिह समागता। गवेषितश्च मया तरुनिरूपणामिषेण सकलोऽप्यारामः, परं न कोऽपि क्वापि दृष्टः। तत् किं न्वेतत्, किं न किमपि मकरिकामन्त्रसदृशं भविष्यति?

कपिञ्जला-(१) भट्टिणि! मा उत्तम, आराम परिमलणसंकाए न को वि मज्जे पइट्ठो। किं न पिक्खदि देवी आरामपरिसरेसु समावासिदं सिन्नं? अवि य सहयारवीहियाए माणुसाइं पि दीसंति।

राजा- कथमस्मान् कपिञ्जला दर्शयति! अहह पञ्चबाणबाणः कटाक्षविक्षेपः!

भयतरलकुरङ्गीनेत्रसब्रह्मचारी

विकचकुवलयश्रीरेष दृष्टेर्विलासः।

परिणतपरिबोधोद्बोधधाम्नां मुनीना-

मपि मनसि विकारोद्गारमाविष्करोति।।१६।।

कपिञ्जला- (२) भट्टिणि! जाव को वि कुदो वि समागच्छदि, दाव मयणस्स पूयं निवत्तेहि। कोसलिए! उवणेहि भट्टिणीपूअं वगरणं।

कपिञ्जला- स्वामिनि! बिहल न हों। उद्यान के नष्ट हो जाने के भय से ही कोई उद्यान के मध्य में नहीं है। क्या देवी नहीं देख रही हैं कि उद्यान के परिसर में सैनिकों का निवास है। यही नहीं आप्रवृक्ष की गली में मनुष्य भी दिखाई दे रहे हैं।

राजा- तो क्या कपिञ्जला (दमयन्ती) को हमें दिखा रही है? ओह, कामदेव के बाण सदृश कटाक्ष-विक्षेप!

भय से चञ्चल हरिणी के नेत्र सदृश, खिले हुए नील कमल की कान्ति वाला इस (दमयन्ती) के नेत्रों का हाव-भाव तत्त्व का चिन्तन करने से परिपक्व बुद्धिवाले समाधिस्थित मुनिजनों के मन में भी (कामजन्य) अनुराग को प्रवाहित कर रहा है।।१६।।

कपिञ्जला- स्वामिनि! जब तक कोई कहीं से आ नहीं जाता है तब तक आप कामदेव की पूजा से निवृत्त हो जाँय। कौशलिके! स्वामिनी के लिए पूजा सामग्री को लाओ।

(१) भर्त्रि! मा उत्ताम्य, आरामपरिमर्दनशङ्कया न कोऽपि मध्ये प्रविष्टः। किं न प्रेक्षते देवी आरामपरिसरेषु समावासितं सैन्यम्? अपि च सहकारवीथिकायां मनुष्या अपि दृश्यन्ते।

(२) भर्त्रि! यावत् कोऽपि समागच्छति, तावत् मदनस्य पूजां निवर्तय। कौशलिके! उपनय भर्त्रीपूजोपकरणम्।

दमयन्ती-(१) अहं सयं उक्चिणिय कुसुमाइं मयणं पूयइस्सं। ता चिट्टुदु कोसलिया, पयट्टावेह दाव संगीयं।

राजा- यथेयं पञ्चमस्य सुश्लिष्टमूर्च्छना तानेषु प्रतिमुहुः सुखायते, तथा जाने गीतमर्मज्ञा।

अविदितमर्मा कर्मसु न शर्म तज्जन्म चुम्बति प्रायः।

अकलितहृदयस्त्रीणां स्मरोपनिषदो बहिः प्लवते।।१७।।

(सत्वरम्) मकरिके! प्रभवसि राजपुत्रीमिह समानेतुम्?

मकरिका-(२) अहं दाव पयदिस्सं, आगमणं पुण दिव्वस्स आयत्तं।

राजा- तर्हि यतस्व।

(मकरिका परिक्रामति)

दमयन्ती- मैं स्वयं पुष्पों की चयन करके कामदेव की पूजा करूँगी। अतः कौशलिके तुम ठहरो, तब तक संगीत आरम्भ करो।

राजा- जिस प्रकार से यह पञ्चम स्वर के सुन्दर श्लिष्ट मूर्च्छना को बार-बार सुनकर सुखी हो रही है, उससे प्रतीत होता है कि यह (दमयन्ती) संगीत के तत्त्व को जानने वाली है।

संगीत के तत्त्व को नहीं जानने वाला उससे उत्पन्न (होने वाले) शान्ति (कल्याण) से अछूता ही रहता है और (उनके लिए) चञ्चलहृदय वाली स्त्रियों का रतिघोतक हाव-भावरूपी सारतत्त्व बाहर ही बह जाता (अर्थात् व्यर्थ) है।।१७।।

(शीघ्रतापूर्वक) मकरिके! भीमनरेश की पुत्री दमयन्ती को यहाँ लाने में तुम ही समर्थ हो?

मकरिका- मैं तो प्रयत्न ही कर सकती हूँ, किन्तु उस (दमयन्ती) का आना तो देवाधीन है।

राजा- तो जाओ।

(मकरिका घूमती है)

(१) अहं स्वयमुपचीय कुसुमानि मदनं पूजयिष्यामि। ततस्तिष्ठतु कौशलिका, प्रवर्तयत तावत् संगीतम्।

(२) अहं तावत् प्रयतिष्ये, आगमनं पुनर्देवस्य आयत्तम्।

दमयन्ती-(१) कविंजले! न को वि दाव समागदो, ता अंतेउरं वच्चामो।

कपिञ्जला-(२) भट्टिणि! दिट्टिया दिट्टिया समागदा मयरिया।

(मकरिका उपसृत्य प्रणमति)

दमयन्ती-(सहर्षमालिङ्ग्य) (३) मयरिए! अन्नो वि को वि समागदो, आदु तुमं ज्जेव?

मकरिका- (४) अन्नो वि।

दमयन्ती- (अपवार्य) (५) कथं राया नलो?

मकरिका- (६) अथ इं।

दमयन्ती- (सत्वरम्) (७) कहिं सो?

दमयन्ती- कपिञ्जले! यहाँ तो कोई नहीं आया है, अतः अन्तःपुर को चलो।

कपिञ्जला- स्वामिनि! सौभाग्य से मकरिका आ गयी है।

(मकरिका समीप जाकर प्रणाम करती है)

दमयन्ती- (हर्षपूर्वक आलिङ्गन करके) मकरिके! और भी कोई आया है या अकेली तुम ही आई हो?

दमयन्ती- (अपवारित में) क्या राजा नल भी?

मकरिका- हाँ।

दमयन्ती- (शीघ्रतापूर्वक) वे कहाँ हैं?

मकरिका- उस आम्रवृक्ष की गली में।

(१) कपिञ्जले! न कोऽपि तावत् समागतः, ततोऽन्तःपुरं व्रजामः।

(२) भट्टि! दिष्ट्या दिष्ट्या समागता मकरिका।

(३) मकरिके! अन्योऽपि कोऽपि समागतः, अथवा त्वमेव?

(४) अन्योऽपि। (५) कथं राजा नलः? (६) अथ किम्।

(७) क्व सः?

मकरिका- (१) एसो सहयारवीहियाए।

दमयन्ती- (भुजमुत्सिष्य) (२) मयरिए! एसो नलो (पुनः सभयमात्मगतम्)
मा नाम विलासिणीलोएण दिट्टम्हि। भोदु एवं दाव (प्रकाशम्) मयरिए!
एदस्स वि नामं तुमं न जाणासि? णं तिणविसेसो एसो नलो।

कपिञ्जला- (विहस्य) (३) सच्चं एसो नलो, न उण तिणविसेसो,
किंतु तिणविसेसीकदअवरराजलोओ।

दमयन्ती- (४) कविंजले! तुमं वंकभणियाइं जाणासि।

राजा- (उपसर्प्य) कलहंस!

सखीशङ्काशङ्कुप्रणयपरितापव्यसनिनी
त्रिभागाभोगाग्रप्लवनबहलीभूतशितिमा।

दमयन्ती- (बाहु उठाकर) मकरिके! वे नल हैं? (पुनः भयभीत हो मन में) इन विलासिनी स्त्रियों से मैं देखी न जाऊँ। ठीक है यही हो (प्रकट में) मकरिके! क्या तुम इसका नाम भी नहीं जानती हो? क्या यह नल नामक घास-विशेष है?

कपिञ्जला- (मुसकराकर) यह सत्य है कि वे नल ही हैं, न कि नल नामक घास-विशेष, किन्तु राजा नल ने अन्य राजाओं को (अपने सामने) घास-विशेष की तरह कर दिया (अर्थात् तिरस्कृत कर दिया) है।

दमयन्ती- कपिञ्जले तुम मजाक करना जानती हो।

राजा- (समीप जाकर) कलहंस!

सखी की शङ्का रूपी काँटे के कारण प्रेम पीड़ा से निष्फल प्रयत्न वाली, कटाक्ष

(१) एष सहकारवीथिकायाम्।

(२) मकरिके! एष नलः?"? मा नाम विलासिनीलोकेन दृष्टास्मि। भवतु एवं तावत्। मकरिके! एतस्यापि नाम त्वं न जानासि? ननु तृणविशेष एष न नलः।

(३) सत्यमेषो नलः, न पुनस्तृणविशेषः, किन्तु तृणविशेषीकृतापरराजलोकः।

(४) कपिञ्जले! त्वं वक्रभणितानि जानासि।

द्रुमालोकव्याजाद् विषमपरिपाता मम वपुः

समं सेयं दृष्टिर्जडयति च संरम्भयति च॥१८॥

(विमृश्य)

कुचकलशयोर्वृत्तं नृत्तं भ्रुवोर्मृदुता गिरां

दृशि तरलता वक्रे कान्तिस्तनौ तनिमा तथा।

तदिदमखिलं वेषश्चेतस्यहं यदि वल्लभो

ध्रुवमपरथा दोषः स्वार्थं जनो बहु मन्यते॥१९॥

कलहंसः- परमार्थोऽयम्

मांसदृशो गुण-दोषौ भ्रुवते स्वार्थास्तिभङ्गसापेक्षाः।

ज्ञानदृशस्तु यथास्थितपदार्थवृत्तान्तमनुरुध्य॥२०॥

मकरिका- (१) भट्टिणि! पसन्ना होहि।

परिसर के अग्रभाग में बहुत अधिक घूमने के कारण कालिमा से युक्त (नेत्रों वाली) वह दमयन्ती वृक्ष देखने के बहाने (समझने में) दुष्कर (अपनी) दृष्टि डालती हुई मेरे शरीर को एक साथ चेतनारहित और वेग से युक्त कर रही है॥१८॥

(विचारकर)

(इस दमयन्ती के) कलशतुल्य स्तनों की वर्तुलाकारता, भौहों का नर्तन, वाणी की मृदुलता नेत्रों में चञ्चलता, मुख में कान्ति, अङ्ग की कृशता ये सभी शोभाकर तभी हैं जब मैं उसके चित्त में वल्लभ बना हूँ अन्यथा ये सभी दोष हैं। मनुष्य स्वार्थ को ही आदर देता है॥१९॥

कलहंस- यह वास्तविक है—

अपने स्वार्थ की अपेक्षा मेरे जैसा जन गुण और दोष को स्वार्थानुसार पृथक् करके कहता है, किन्तु ज्ञानीजन तो पदार्थ (वस्तु) के वास्तविक स्वरूप का अनुरोध करके कहते हैं॥२०॥

मकरिका- स्वामिनि! प्रसन्न हों।

(१) भर्त्रि! प्रसन्ना भव।

टिप्पणी- वृत्तोऽधीतेऽप्यतीतेऽपि वर्तुलेऽपि मृते वृत्ते— इति मेदिनी। वेष- आकल्पवेषौ नेपथ्ये प्रतिकर्म प्रसाधनम्-इत्यमरः।

दमयन्ती-(१) मयरिए! अहं कया वि किं अप्यसत्रा, जं एवं मंतेसि?

मकरिका- (२) कहं नाम न अप्यसत्रा, जं हृदयवल्लहं जणं पिच्छिय दूरं चिट्ठसि?

दमयन्ती-(३) मयरिए! नाहमिदिसं कन्नाजणस्स अणुचिदं अणुट्ठिदुं साहसिणी। किं च-

आलाव-हास-परिरंभणाइं पेमस्स परियरो एसो।

पेमं उण नयणतिभागभूरिपरिघोलिरा दिट्ठी।।२१।।

दमयन्ती- मकरिके! क्या मैं कभी अप्रसन्न होती हूँ? जो ऐसा कह रही हो।

मकरिका- क्या आप अप्रसन्न नहीं हैं? क्योंकि अपने हृदयवल्लभ को देखकर भी आप उनसे दूर स्थित हैं।

दमयन्ती- मकरिके! मैं कन्या के आचरण के विपरीत आचरण करने का साहस नहीं कर सकती।

और भी—

बातचीत, हँसी-मजाक और आलिङ्गन ये सब प्रेम की सामग्री हैं, परन्तु नेत्र कटाक्ष से युक्त बार-बार घूमने वाली आँख से देखना (ही वास्तव में) प्रेम है।।२१।।

(१) मकरिके! अहं कदापि किमप्रसत्रा, यदेवं मन्त्रयसे?

(२) कथं नाम नाप्रसत्रा, यद् हृदयवल्लभं जनं दृष्ट्वा दूरं तिष्ठसि?

(३) मकरिके! नाहमीदृशं कन्याजनस्यानुचितमनुष्ठातुं साहसिनी।

किञ्च—

आलाप-हास-परिरंभणानि प्रेम्णाः परिकर एषः।

प्रेम पुनर्नयनत्रिभागभूरिपरिघूर्णमाना दृष्टिः।।

अन्यच्च, असदृशस्नेहं जनं स्वयमनुसरन्ती कपिञ्जलाया अपि लज्जे।

अत्रं च असरिससिणेहं जणं सयमणुसरंती कविंजलाए वि लज्जेमि।

मकरिका—(सरोषम्) (१) सहयारवीहियं पि अणुसरंती सरिससिणेहा, महाराओ उण विदब्बेसु वि समागदो असरिससिणेहो?

दमयन्ती—(२) मयरिए! न पारेमि तए सह जंपिदुं, ता मयणपूयानिमित्तं कुसुमाइ उवचिणिस्सं।

(इति सर्वाःपरिक्रामन्ति)

राजा— कथमितोऽभिवर्तते देवी?

दृष्टे! द्रष्टुमितः स्पृहां कुरु पुरः पुत्री विदभेशितु-

नत्वागच्छति बिभ्रती स्मरकरिक्रीडावनं यौवनम्।

और दूसरे यह कि, अपरिचित प्रेमी जन का अनुगमन करती हुई मैं कपिञ्जला से लजाती भी हूँ।

मकरिका— (क्रोध के साथ) प्रेमपूर्वक आम्रवृक्ष के मार्ग का अनुगमन करती हुई तुम, फिर अतुलनीयस्नेह वाले महाराज नल भी तो विदर्भदेश में आये हैं।

दमयन्ती— मकरिके! तुम्हारे साथ बात करने में मैं तुम्हारा पार नहीं पा सकती। अतः कामदेव पूजा के लिए मैं फूलों का चयन करती हूँ।

(यह कहकर सभी घूमती हैं)

राजा— तो क्या देवी दमयन्ती इधर ही आ रही है?

(मेरे द्वारा) देख ली गई (हे दमयन्ति)! इधर देखने की स्पृहा करो, क्योंकि जिसके चन्द्रमारूपी मुख की विलासश्री को श्रद्धा के साथ देखने के लिए ही पौलोमीपति इन्द्र ने अपलक सहस्रनेत्रों को धारण किया है (ऐसी) कामरूपी हाथी के क्रीडा-वनवाले

(१) सहकारवीथिकामप्यनुसरन्ती सदृशस्रेहा, महाराजः पुनर्विदर्भेष्वपि समागतोऽसदृशस्रेहः!

(२) मकरिके! न पारयामि त्वया सह जल्पितुम्। ततो मदनपूजानिमित्तं कुसुमान्युपचेष्ये।

यद्वक्रेन्दुविलाससम्पदमतिश्रद्धालुरालोकितुं

पौलोमीपतिरुद्धहत्यनिमिषं चक्षुःसहस्रं किल।।२२।।

कलहंस! उपनय पत्रमेकम्।

कलहंसः— इदम्।

(राजा किमपि पत्रके लिखित्वा समर्पयति)

दमयन्ती—(१) कपिञ्जले! कहिं वणोद्देशे वियङ्गल्लवल्लियाओ चिट्ठंति?

मकरिका—(२) एदस्सिं सहयारनिगुंजे।

(दमयन्ती पुष्पावचयं नाटयति)

राजा—(उपसृत्य) अलमलमनुचिताचरणेन। ननु ललाटन्तपे भगवति कमलिनीनाथे परमानुरागवेतनक्रीते च सविद्यभाजि सर्वकर्मीणे जने कोऽयं स्वयं विचकिलकलिकावचयक्लेशोपद्रवः?

यौवन को धारण करती हुई विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती सामने नहीं आ रही है।।२२।।

हे कलहंस! एक पत्र लाओ।

(राजा पत्र पर कुछ लिखकर कलहंस को देता है)

दमयन्ती— कपिञ्जले! वन के किस भाग में चमेली की लतायें हैं?

मकरिका— इस आम्रवृक्ष-मण्डप में।

(दमयन्ती पुष्प चयन का अभिनय करती है)

राजा—(समीप जाकर) अनुचित आचरण करने की आवश्यकता नहीं। ललाट को तपाने वाले कमलिनीपति अर्थात् सूर्य की रोशनी में, अत्यधिक प्रेमानुरागरूपी वेतन द्वारा खरीदे गये सभी कर्मों में दक्ष इस नल के रहते, तुम चमेली-पुष्पों को चयन करने का कष्ट क्यों करोगी?

(१) कपिञ्जले! कस्मिन् वनोद्देशे विचकिलवल्लयस्तिष्ठन्ति?

(२) एतस्मिन् सहकारनिकुञ्जे।

दमयन्ती- (तिर्यग् विलोक्य स्वगतम्) (१) कहमेस सयं भयवं पंचबाणो? अहवा वरायस्स अणंगस्स कुदो ईदिसो अंगसोहग्गपब्भारो? ता कदत्थो दमयंतीए अंगचंगिमा। (प्रकाशम्) कविंजले! को एस मं वारेइ?

कपिञ्जला- (२) जस्स कदे तुमं इध समागदा।

दमयन्ती- (३) कस्स कदे अहं इध समागदा?

कपिञ्जला- (४) हिययदइयस्स।

दमयन्ती- (५) ता किं भयवं मणसिजो?

कपिञ्जला- (विहस्य) (६) भट्टिणी जाणादि।

दमयन्ती- (तिरछी दृष्टि से देखकर अपने मन में)

तो क्या ये भगवान् कामदेव हैं? अथवा बेचारे अनङ्ग = (शरीररहित) में इस तरह के सौन्दर्य का होना कैसे सम्भव है? अतः दमयन्ती का रूप-सौन्दर्य धन्य है। (प्रकट में) कपिञ्जले! यह कौन है जो मुझे रोक रहा है?

कपिञ्जला- जिसके लिए तुम (यहाँ) आयी हो।

दमयन्ती- किसके लिए मैं यहाँ आयी हूँ?

कपिञ्जला- अपने हृदयवल्लभ के लिए।

दमयन्ती- तो क्या ये भगवान् कामदेव हैं?

कपिञ्जला- (मुसकराकर) स्वामिनी तो जानती ही हैं।

(१) कथमेष स्वयं भगवान् पञ्चबाणः? अथवा वराकस्यानङ्गस्य कुत ईदृशोऽङ्गसौभाग्यप्राग्भारः? तत् कृतार्थं दमयन्त्या अङ्गचङ्गत्वम्। कपिञ्जले! क एष मां वारयति?

(२) यस्य कृते त्वमत्र समागता। (३) कस्य कृतेऽहमत्र समागता?

(४) हृदयदयितस्या। (५) तत् किं भगवान् मनसिजः? (६) भर्त्री जानाति।

दमयन्ती-(सरोषमिव) (१) हंजे! उवहसेसि मं, ता उवचिणिस्सं, न चिड्डिस्सं।

(राजा भुजलतामालम्ब्य 'अलमलम्' इत्यादि पठति)

कलहंसः- देवि! दूरादागतस्य प्रणयिनो जनस्याभ्यर्थनां नावज्ञातुमर्हसि।

दमयन्ती-(२) कथं कलहंसो! कलहंस! मोयावेहि मे पाणिं।

कलहंसः- देवि! कलहंसः पाणेर्ग्राहयिता, न पुनर्मोचयिता।

दमयन्ती-(३) हीमाणहे! न को वि मह पक्खपायं करेदि।

राजा- शान्तं शान्तम्। हे मृगाक्षि! नन्वयमस्मि तव पक्षपाती। समादिश कृत्यम्।

दमयन्ती-(४) जइ एवं ता मुंच मे पाणिं।

दमयन्ती- (क्रोधित हुए की तरह) सखि! मेरा उपहास कर रही हो, तब मैं पुष्पों का ही चयन करूँगी, यहाँ नहीं ठहरूँगी।

(राजा बाहुपाश से आलिङ्गन कर 'अलमलम्' इत्यादि वाक्य पुनः पढ़ता है)

कलहंस- हे देवि! दूर देश से आये हुए प्रियजन की प्रार्थना की अवहेलना नहीं करनी चाहिए।

दमयन्ती- हे कलहंस! यह क्या? कलहंस! मेरा हाथ छोड़ाओ।

कलहंस- देवि! कलहंस तो पाणिग्रहण कराने वाला है न कि छोड़ने वाला।

दमयन्ती- आश्चर्य है, कोई भी मेरा पक्षधर नहीं है।

राजा- शान्त हो शान्त हो। हे मृगलोचने! मैं तुम्हारा पक्षधर हूँ। आदेश दें क्या करना है।

दमयन्ती- यदि ऐसी बात है तो मेरे हाथ को छोड़ दो।

(१) हले! उपहससि माम्, तद् उपचेष्यामि, न स्थास्यामि।

(२) कथं कलहंस! कलहंस! मोचय मे पाणिम्।

(३) अहो! न कोऽपि मम पक्षपातं करोति।

(४) यद्येवं तदा मुञ्च मे पाणिम्।

नलः- कथमपराधकारी मुच्यते?

दमयन्ती-(१) किं एदिणा अवरन्दं?

राजा- अनेन त्वत्प्रतिकृतिमालिख्यायमियति विरहानले पातितः।

दमयन्ती- (स्मित्वा) (२) जइ एवं ता अहं पि ते पाणिं गहिस्सं। तव पाणिलिहिदेण पडेण अहं पि एदावत्थसरीरा जादा।

राजा- नन्वयं पाणिग्रहणार्थ एव सर्वः प्रयासस्तदनुकूलवादिन्यसि नलस्य।

विदूषकः- (३) भोदी! तए अप्पण ज्जेव अप्पा समप्पिदो, ता दाणिं न छुट्टीयदि।

(दमयन्ती सात्विकभावान् नाटयन्त्यधोमुखी भवति)

नल- क्या अपराध करने वाले को छोड़ा जाता है?

दमयन्ती- मैंने कौन सा अपराध किया है?

राजा- चित्रपट पर अपना छायाचित्र बनाकर तुमने इस नल को इतनी अधिक विरहाग्नि में गिरा दिया है।

दमयन्ती- (मुसकराकर) यदि ऐसी बात है तो मैं भी तुम्हारे हाथ को ग्रहण करूँगी। क्योंकि तुम्हारे हाथ से बनाये गये तुम्हारे छायाचित्र के द्वारा मैं भी उसी दशा को प्राप्त हो गयी हूँ।

राजा- यह तो तुम पाणिग्रहण के लिए किए गये नल के सभी प्रकार के प्रयासों के अनुकूल बोल रही हो।

विदूषक- आदरणीये! तुमने स्वयं अपने मन को समर्पित किया है इसलिए अब यह (पाणिग्रहण) न छूटे।

(दमयन्ती सात्विक भावों का अभिनय करती हुई अपना मुख नीचे कर लेती है)

(१) किमेतेनापराद्धम्?

(२) यद्येवं तदाऽहमपि ते पाणिं ग्रहीष्यामि, तव पाणिलिखितेन पटेनाहमप्येतदवस्थशरीरा जाता।

(३) भवति! त्वयाऽऽत्मनैवात्मा समर्पितस्तदिदानीं न छुट्यते।

राजा- (विलोक्य)

इमौ प्रेङ्खे कर्णौ वदनमिदमिन्दुः स्फुटकलः

कलः सोऽयं नादस्तरुणकलकण्ठीकलकलः।

इयं मल्लीवल्लीपुलकमुकुलाङ्गा भुजलता

वसन्तश्रीः साक्षात् त्वमसि मदिराक्षि! ध्रुवमतः॥२३॥

(सहर्षं च—)

चन्द्रोद्यानसरांसि सुन्दरि! मनः कर्षन्ति तावद् गुणै-

र्यावन्नेत्रदले तवास्यकमले दृष्टिर्न विश्राम्यति।

तावत् कोऽपि कलालवो विजयते खद्योतपोतत्विषां

यावन्नात्मकरैर्धिनोति धरणिं देवः सुधादीधितिः॥२४॥

दमयन्ती-(१) अज्जउत्त! (पुनः सलज्जम्) महाराय! अथवा इदि
देआंगे पतंगतावो, ता विरम पाणिग्गहणादो।

राजा- (देखकर)—

हिलते हुए दोनों कानों वाली, व्यक्त कलाओं वाले चन्द्रमा के समान मुख वाली, युवामयूर सदृश मृदुवाणी वाली तथा मल्लिका लता के खिले हुए पुष्पों सदृश बाहुपाश वाली हे मदिराक्षि! तुम मूर्तरूप में वसन्तरूपी लक्ष्मी हो॥२३॥

(हर्ष के साथ और)

हे सुन्दरि! चन्द्रमा, पुष्पवाटिका और सरोवर ये गुणों के द्वारा तब तक मन को आकृष्ट करते हैं जब तक तुम्हारे नयन-कटाक्ष और मुखकमल पर मेरी दृष्टि रुक नहीं जाती है, (अतः) खद्योत (जुगनू) शावकों की प्रकाश कला का अंश तभी तक शोभित होता है जबतक अमृत बरसाने वाले चन्द्रदेव अपनी किरणों का विस्तार पृथ्वी पर नहीं करते हैं॥२४॥

दमयन्ती- आर्यपुत्र ! (पुनः लज्जा के साथ) महाराज! अथवा देव के शरीर को सूर्य की तप्त किरणें तपा रही हैं अतः पाणिग्रहण से विरत हो।

(१) आर्यपुत्र! महाराज! अथवा एति देवाङ्गे पतङ्गतापः, तद् विरम पाणिग्रहणात्।

राजा- अयि कातरकुरङ्गनेत्रे! कोऽयं वाङ्-मनसयोर्विवादः। ननु यथामनसमेवाभिधीयतामार्यपुत्रेति। अपि च शतपत्रपपत्रतरलाक्षि! यदि पतङ्गतापाबाधासाध्वसेन पाणिग्रहणाद् विरमामि, तदानीमनङ्गतापो मां बाधते। किञ्च-

चित्रं त्रस्तैणशावाक्षि! त्वत्पाणिग्रहणोत्सवः।

सन्तापस्य निहन्ता नः प्रतापस्य तु कारणम्॥२५॥

कपिञ्जला-(१) भट्टिणि! लज्जमुज्जिय पयडाणुरायं किपि अणुचिट्ठ।

दमयन्ती-(सरोषमिव) (२) हंजे! तुमं पि कत्रगाजणविरुद्धे कम्मे मं निजोजयसि?

राजा- अयि चन्द्रमुखि! न त्वां कपिञ्जला योजयति। किन्तु कृतमानिनीमानभङ्गः स भगवाननङ्गः। अनङ्गाधीनो हि कुसुमाकरोद्याने सर्वस्य सर्वो व्यापारः। (सर्वाङ्गीणमवलोक्य) कुन्ददति! किञ्चिदुपालभ्यसे।

राजा- भयभीत मृग-नेत्र सदृश नेत्रों वाली हे दमयन्ति! मन और वाणी में परस्पर विरोध क्यों? निस्सन्देह मन की ही बात अर्थात् आर्यपुत्र ही कहिये। और भी, हे कमलपत्र सदृश चञ्चल नयने! यदि मैं सूर्य की गर्मीरूपी अप्रिय पीड़ा के कारण पाणिग्रहण से विरत हो जाऊँ तब काम-पीड़ा मुझे कष्ट देगी।

और भी—

भयभीत मृग-शिशु सदृश नेत्रों वाली हे दमयन्ति! क्या अद्भुत बात है कि हमारी पीड़ा को समाप्त करने वाला एकमात्र कारण तुम्हारे पाणिग्रहण (से उत्पन्न) आनन्द ही है॥२५॥

कपिञ्जला- स्वामिनि! लज्जा को छोड़कर अनुराग (स्नेह) को प्रकट क्यों नहीं कर रही हैं?

दमयन्ती-(क्रोधित हुई सी) तो तुम भी कन्याजन के आचरण के विपरीत कर्म में मुझे लगा रही हो?

राजा- हे चन्द्रमुखि! तुम्हें कपिञ्जला नहीं, अपितु मानिनी के मान को खण्डित करने वाला वह भगवान् कामदेव इस कर्म में लगा रहा है, क्योंकि कामदेव

(१) भर्त्रि! लज्जामुज्जित्वा प्रकटानुरागं किमपि अनुतिष्ठ।

(२) हञ्जे! त्वमपि कन्यकाजनविरुद्धे कर्मणि मां नियोजयसि?

दमयन्ती- (स्वगतम्) (१) हीमाणहे! अप्पाणंमि वि आदिघेईकदे उवालंभो न मुंचदि।

कपिञ्जला- (सभयमात्मगतम्) (२) किं मए किमवि अवरद्धं?

राजा- ननु ब्रवीमि, उपालभ्यसेऽभ्यन्तरपरिजनापराधेन।

दमयन्ती-(३) कहं विय।

राजा-

वक्रेन्दुः स्मितमातनोदधिगते दृष्टी विकासश्रियं

बाहू कण्टककोरकाण्यविभृतं प्राप्ता गिरो गौरवम्।

किं नाङ्गानि तवातिथेयमसृजन् स्वस्वापतेयोचितं

सम्प्राप्ते मयि नैतदुज्जति कुचद्वन्द्वं पुनः स्तब्धताम्॥२६॥

के वाटिकारूपी यौवन में हर किसी की सभी क्रियायें कामदेव के अधीन होती हैं। (अच्छी तरह देखकर) हे कुन्ददत्त! कपिञ्जला थोड़ा सा उलाहना (मजाक कर) दे रही है।

दमयन्ती- (मन ही मन) आश्चर्य है, नवागन्तुक सत्कार करने के लिए आत्मीय जन भी उलाहना दे (मजाक कर) देती है।

कपिञ्जला- (भयभीत सी हुई अपने मन में) तो मुझसे कोई अप्पाध हो गया?

राजा- मैं कहता हूँ, सदा साथ रहने वाले अपने शरीर के अङ्गों के अपराध के कारण ही कपिञ्जला तुम्हें उलाहना दे रही है।

दमयन्ती- यह कैसे?

राजा- (हे देवि!) तुम्हारे चन्द्रमारूपी मुख ने स्मितहास को प्राप्त करके, नेत्रों ने विकसित कमल की शोभा को ग्रहण करके, दोनों भुजलताओं ने वलियों की तरह रोमाञ्च को धारण करके तथा वाणी ने गम्भीरता को प्राप्त करके तुम्हारे भङ्गों ने अपने-अपने वैभव के अनुरूप (मेरा) आतिथ्य सत्कार नहीं किया क्या? उर्थात् किया ही

(१) अहो! आत्मन्यपि आतिथेयीकृते उपालम्भो न मुच्यते।

(२) किं मया किमप्यपराद्धम्? (३) कथमिव?

टिप्पणी- द्रव्यं वित्तं स्वापतेयं रिक्थमृक्थं धनं वसु-इत्यमरः।

(दमयन्ती सलज्जमधोमुखी भवति)

यदि वा देवि! शान्तम्। सत्यमहमेवोपालभ्यो यो गुणमपि
दोषमभिदधामि।

कपिञ्जला-(१) भट्टिणि! कदं कालविलंबेण, रहस्सं किं पि
मंतेहि।

दमयन्ती-(२) नाहं रहस्सं मंतिदुं सिक्खिदा।

राजा-अयि स्मरनागरिके! किमात्मानं वैदग्ध्यवन्ध्यमावेदयसि?
अपि चाहमस्मि शिक्षितः। कलहंस! दर्शय रहस्यमस्मदीयम्।

(कलहंसः पत्रमर्पयति। दमयन्ती वाचयति)

अमीभिः संसिक्तैस्तव किमु फलं वारिदघटे!

यदेतेऽपेक्षन्ते सलिलमवटेभ्योऽपि तरवः।

है फिर मुझे प्राप्त करके भी, (तुम्हारे) स्तनयुगल (अपनी) कठोरता को नहीं छोड़
रहे हैं।। २६।।

(दमयन्ती लज्जा के साथ मुख नीचे कर लेती है)

अथवा हे देवि! धैर्य धारण करो। गुण में भी दोष को कहने वाला मैं ही
निश्चितरूप से उलाहना का पात्र हूँ।

कपिञ्जला- स्वामिनि! समय व्यतीत क्यों कर रही हैं, कुछ प्रच्छन्न बात भी
करो।

दमयन्ती- प्रच्छन्न बात करने में मैं पटु नहीं हूँ।

राजा- हे मदननगरि! क्या स्वयं को चतुराई को नहीं जानने वाली कह रही
है? तो मैं दक्ष हूँ।

कलहंस! हमारी गुप्त (वस्तु दमयन्ती) को दिखाओ।

(कलहंस दमयन्ती को राजा नल का पत्र देता है। दमयन्ती पढ़ती है)

हे मेघ! इस प्रकार से किये गये अच्छी सिंचाई से भी जब वृक्ष आलवाल से
(पानी प्राप्त करने की) अपेक्षा रखते हैं, तो तुम्हारी क्या आवश्यकता? वस्तुतः यह

(१) भर्त्रि! कृतं कालविलम्बेन, रहस्यं किमपि मन्त्रयस्व।

(२) नाहं रहस्यं मन्त्रयितुं शिक्षिता।

अयं युक्तो व्यक्तं ननु सुखयितुं चातकशिशु-

र्य एष ग्रीष्मेऽपि स्पृहयति न पाथस्त्वदपरात्॥२७॥

दमयन्ती- (विमृश्य स्वगतम्) त्वदेकशरणोऽहमित्युक्तं भवति।
(प्रकाशम्) (१) कलहंस! मुद्धा खु अहं, न गूढभणिदीणमत्थं जाणामि।

राजा- किमेवमभिदधासि? यतः-

मुग्धाङ्गनानयनपातविलक्षणानि

दक्षैरपि क्षणमलक्षितविभ्रमाणि।

आलोकितान्यपि नताङ्गि! निवेदयन्ति

वैदग्ध्यसम्पदमनन्यतमां भवत्याः॥२८॥

यदि वा व्यक्तमपि विज्ञप्यते।

कान्तस्तवाहमधरीकृतविश्वरूपः

सौन्दर्यविभ्रमवती भवती प्रिया मे।

ठीक ही है, (क्योंकि) चातक पक्षी का जो बच्चा है (वह भी) इस गर्मी में अपने सुख के लिए दूसरे (अर्थात् स्वाति नक्षत्र के अतिरिक्त अन्य नक्षत्र) के जल की इच्छा नहीं करता है॥२७॥

दमयन्ती- (विचार कर मन ही मन) इसका अर्थ हुआ— तुम ही मेरी शरण हो। (प्रकट में) हे कलहंस! भोली-भाली मैं गूढवचनों के अर्थ को नहीं समझती हूँ।

राजा- ऐसा क्यों कह रही हो? क्योंकि—

हे नताङ्गि! (यद्यपि) मुग्धाङ्गनाओं के नयन कटाक्ष का असाधारण विलास निपुण व्यक्ति से भी जानने योग्य नहीं है, (फिर भी) प्रेम के कारण उत्पन्न मन की अस्थिरता वाली (तुम्हारी) दृष्टि तुम्हारे अद्वितीय चातुर्य-समृद्धि को कह रहा है॥२८॥

अथवा स्पष्ट रूप से भी कहता हूँ।

अपने रूप-सौन्दर्य से भगवान् विष्णु को भी तिरस्कृत करने वाला मैं (नल) तुम्हारा प्रिय हूँ तथा सुन्दरता के विलास वाली तुम मेरी प्रिया हो। (और) हम दोनों

(१) कलहंस! मुग्धा खल्वहम्, न गूढभणितीनामर्थं जानामि।

प्रेमावयोरनधिगम्यदशाधिरूढं

जानीहि नैष सुकरो विधिनापि योगः॥२९॥

(प्रविश्य)

चेटी-(१) भट्टिणि! देवी तुमं हक्कारेदि।

(राजा सभयं भुजमपनीय तिरोधत्ते)

दमयन्ती-(२) अंबा मं आणवेदि? एसा समागच्छामि।

(इति सर्वाः परिक्रामन्ति)

राजा-(सविषादम्) कलहंस! न कोऽपि कार्यनिर्व्यूहः समभूत्। हा!
हताः स्मः। कुतो नाम पुनरपि रहःसङ्गमः?

विदूषकः-(३) भो! अहं से संगमं पुणरवि करेमि।

राजा- (सादरम्) अस्मदनुरोधेन प्रवर्त्तस्व।

का प्रेम (अपनी) चरमावस्था को प्राप्त हो गया है। (बस) यही जानो कि ऐसा संयोग कराना ब्रह्मा के लिए भी सरल नहीं है॥२९॥

(प्रवेश करके)

चेटी- स्वामिनि! देवी माता जी बुला रही हैं।

(राजा भय के साथ हाथ छोड़कर छिप जाता है)

दमयन्ती- माता जी मुझे बुला रही हैं? अभी आयी।

(यह कहकर सभी घूमती हैं)

राजा- (खेद के साथ) कलहंस! कोई भी कार्य विघ्न रहित नहीं होता। ओहो,
मैं मारा गया। एकान्त का यह मिलन अब कैसे सम्भव हो सकता है?
विदूषक- हे राजन्! मैं तुम दोनों का पुनः मिलन कराता हूँ।

राजा- (आदरपूर्वक) तो हमारे अनुरोध से वैसा ही करो।

(१) भर्त्रि! देवी त्वामाह्वयति।

(२) अम्बा मामाज्ञापयति? एषा समागच्छामि।

(३) भोः! अहमस्याः सङ्गमं पुनरपि करोमि (कारयामि)।

(विदूषकः खरनादितं करोति)

दमयन्ती- (आकर्ण्य) (१) कथं एस रुक्खंतरिदो खरो वामं वाहरदि? हला मयणिए! असउणं मे, ताव गच्छ तुमं, अहं पुण सहयारवीहीए गडुय आगमिस्सं।

(मदनिका निष्क्रान्ता। दमयन्ती प्रतिनिवर्तते)

विदूषकः- (२) भोदी! न तए मे बंभणस्स सत्थिवायणं दिन्नं, तदो असउणं।

दमयन्ती- (पत्रके किमपि लिखित्वा) (३) एदं दे सत्थिवायणं (विदूषकस्य प्रयच्छति। राजानं प्रति) महाराय! सुदे (सेवे?) पुणो वि संगमो।

(विदूषक गर्दभ (निष्ठुर) ध्वनि करता है)

दमयन्ती- (सुनकर) मेरी बाँयी तरफ अत्यन्त निष्ठुर स्वर में यह गधा क्यों बोल रहा है?

सखि मदनिके! मेरा अपशकुन हो गया, तब तक तुम जाओ, मैं पुनः आम्रवृक्षपंक्ति के समीप जाकर आ रही हूँ।

(मदनिका चली जाती है और दमयन्ती लौट आती है)

विदूषक- आदरणीये! तुम्हारे द्वारा मेरे स्वस्ति वाचन की दक्षिणा नहीं दी गई इसलिए तुम्हारा अपशकुन हुआ।

दमयन्ती- (पत्र में कुछ लिखकर) यह है तुम्हारे स्वस्ति-वाचन की दक्षिणा (विदूषक को देती है और राजा नल के प्रति) महाराज! कल पुनः हम दोनों का मिलन होगा।

राजा- हे देवि! रहस्यध्वनि की आशंका वाला तुम्हारे द्वारा कान में कहा गया 'पुनः कल मिलन होगा' वचन प्रसन्नता को समाप्त कर कष्ट देने वाला है, (क्योंकि)

(१) कथमेष वृक्षान्तरितः खरो वामं व्याहरति? हले मदनिके! अशकुनं मे, तावद् गच्छ त्वम्, अहं पुनः सहकारवीथ्यां गत्वाऽऽगमिष्यामि।

(२) भवति! न त्वया मे ब्राह्मणस्य स्वस्तिवाचनं दत्तम्, ततोऽशकुनम्।

(३) एतत् ते स्वस्तिवाचनम्। महाराज! श्वः पुनरपि सङ्गमः।

राजा-

कर्णेजपं क्षतमुदो विपदो वचस्त्वं
 श्वःसङ्गमः पुनरतिप्रलयस्य शङ्का।
 त्वद्विप्रयोगशरणं क्षणमप्यहं तु
 वर्षाणि देवि! किल यामि परःशतानि।।३०।।

दमयन्ती-(१) अओ परं न पारेमि चिद्धिदुं, ता गमिस्सं (निष्क्रान्ता)
 (राजा पत्रकं वाचयति)

सौदामिनीपरिष्वङ्गं मुञ्चन्त्यपि पयोमुचः।
 न तु सौदामिनी तेषामभिष्वङ्गं विमुञ्चति।।३१।।

कलहंसः- देव! अनयाऽप्यात्मनोऽनन्यशरणत्वमावेदितम्।
 राज- नन्वयमुत्तरार्धस्यार्थः।

कलहंसः- पूर्वार्धस्यार्थोऽनिष्टं सूचयति।

तुम्हारे वियोग में असहाय मैं तो एक क्षण एक वर्ष (की तरह) व्यतीत करता हूँ
 (अतः) एक दिन तो (हमारे लिए) निश्चय ही सौ वर्ष (हो जायेगा)।।३०।।

दमयन्ती- किन्तु मैं और नहीं ठहर सकती, अतः जा रही हूँ (निकल जाती है)

(राजा नल पत्र को पढ़ते हैं)

मेघ (रूपी नायक) विद्युत् (रूपी अपनी नायिका) के विशिष्ट सान्निध्य को छोड़
 भी दे, किन्तु विद्युत् (रूपी नायिका) मेघ (रूपी अपने नायक) के विशिष्ट-सान्निध्य
 को नहीं छोड़ती है।।३१।।

कलहंस- महाराज! इसने तो अपने अपने अभीष्ट आश्रयदाता का स्पष्ट कथन
 कर ही दिया है।

राजा- यह तो वाक्य के उत्तरार्ध का अर्थ है।

कलहंस- पूर्वार्ध का अर्थ तो अनिष्ट का सूचक है।

(१) अतः परं न पारयामि स्थातुम्, ततो गमिष्यामि।

राजा- (सभयम्) किं तत्?

कलहंसः- परिणयाननन्तरं दमयन्तीपरित्यागम्।

राजा- शान्तम्। ननु नलो यदि दमयन्तीं परित्यजति, तदा निषधामभिजनं च। तदेहि शिबिरं ब्रजामः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥तृतीयोऽङ्कः॥

राजा- (भयपूर्वक) वह कैसे?

कलहंस- विवाह हो जाने के बाद भी आप दमयन्ती का त्याग कर सकते हैं।

राजा- अमङ्गल का नाश हो। यदि नल दमयन्ती का त्याग कर सकता है तब तो नल अपने निषधदेश और कुटुम्ब को भी छोड़ सकता है। अतः आओ शिबिर— (राजकीय तंबू) में चलें।

(यह कहकर सभी निकल जाते हैं)

॥तृतीय अङ्क समाप्त॥

चतुर्थोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

(१) ऊसलेध भो अगदहो ऊसलेध।

(ततः प्रविशति राजा भीमरथोऽमात्यवसुदत्तादिकश्च परिवारः)

राजा- अमात्य! दर्शय मार्गं येन स्वयंवरशोभामालोकयामः।

वसुदत्तः- इत इतो देवः परिक्रामतु।

राजा- अमात्य! वत्साप्रतिकृतिदर्शनापि वयं स्वयंवरं विधातुमीषन्मनसः
समभवाम। घोरघोणवचनविरोधिलम्बस्तनीवचनेन पुनः सविशेषमुत्साहितः।

वसुदत्तः- देव! लम्बस्तनी किमुक्तवती?

राजा- निषधाधिपतिपत्नी दमयन्ती भविष्यतीत्युक्तवती।

(नेपथ्य में)

अरे हटो! आगे से हटो।

(इसके बाद राजा भीमरथ, मन्त्री वसुदत्त आदि अनुचर वर्ग रङ्गमञ्च पर प्रवेश करते हैं)

राजा- हे मन्त्रिन्! मार्ग(रास्ता) बताओ जिससे कि (दमयन्तीकी) स्वयंवर-
शोभा को देख सकूँ।

वसुदत्त- इधर से आयें महाराज इधर से।

राजा- हे मन्त्रिन्! पुत्री दमयन्ती का छायाचित्र देखकर भी हम स्वयंवर अनुष्ठान
के लिए हल्के मन से तैयार हो गये। (और इस अनुष्ठान के लिए) औषड़ घोरघोण
के वचन के प्रतिकूल लम्बस्तनी के वचन ने हमें और अधिक उत्साहित किया।

वसुदत्त- महाराज! लम्बस्तनी ने क्या कहा?

राजा- दमयन्ती निषधदेश के राजा नल की पत्नी होगी इस प्रकार से लम्बस्तनी
ने कहा।

(१) अपसरत भोः! अग्रतोऽपसरत।

वसुदत्तः- चित्रसेनपत्नीप्रतिपादकेन घोरघोणवचनेन सह सर्वथा विरुध्यते लम्बस्तनीवचः।

राजा- ततोऽस्माभिस्तदेतं वरविप्लवमाशङ्कमानैः स्वयंवर-विधिरनुष्ठितः।

वसुदत्तः- देव! खराधिरोहणकृद्धेन दुरात्मना घोरघोणेन किमप्य-श्रद्धेयमश्रोतव्यं च प्रतिज्ञातम्।

राजा- (सभयम्) किं तत्?

वसुदत्तः- यो दमयन्तीं परिणेष्यति, तस्य राज्यभ्रंशम् (इत्यर्घोक्ते तूष्णीमास्ते)

राजा- शान्तं शान्तं प्रतिहतममङ्गलम्, ननु दमयन्तीपतिस्त्रि-खण्डभरतपतिरिति मुनयः समादिशन्ति। ततः कथं स तापसापसदो राज्यभ्रंशं करिष्यति?

वसुदत्त- औषड़ घोरघोण के इस वचन से दमयन्ती का विवाह चेदिनरेश चित्रसेन से होगा लम्बस्तनी का वचन तो सर्वथा विरुद्ध है।

राजा- इसीलिए हमने श्रेष्ठकार्य में विघ्न हो सकता है इस दुविधा के कारण ही स्वयंवर विधि का अनुष्ठान किया।

वसुदत्त- महाराज! गधे पर बैठाये जाने से क्रुद्ध दुष्टात्मा घोरघोण ने नहीं सुनने योग्य अनिष्टकारक प्रतिज्ञा भी की है।

राजा- (भयभीत की तरह) वह क्या?

वसुदत्त- जो दमयन्ती से विवाह करेगा, उसके राज्य का नाश-- (ऐसा आधा कहकर चुप हो जाता है)।

राजा- अमङ्गल का नाश हो, पृथ्वी के तीन भाग का स्वामी दमयन्ती का पति होगा ऐसा ऋषिजन ने कहा है। तब वह नीच राज्य का नाश कैसे करेगा?

टिप्पणी- 'स्वयंवर' — विवाह की ऐसी पद्धति जिसमें कन्या अपनी इच्छानुसार पति का वरण उसके गले में वरमाला (जयमाला) पहना कर करती है। इस विधि से विवाह सम्पन्न होने वाले अनुष्ठान को 'स्वयंवर' कहा जाता है।

वसुदत्तः— यदेव ज्ञानचक्षुषः समादिशन्ति तदेवास्तु। (विलोक्य) अयं स्वयंवरमण्डपः, इदं सिंहासनमास्यतां देवेन।

राजा— (तथा कृत्वा विलोक्य च) अमात्य! समायाताः काशीपतिप्रभृतयः क्षोणिपतयः, परमद्यापि निषधाधिपतिर्नायाति। कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

पुरुषः— आदिशतु देवः।

राजा— अये मङ्गलक! कुसुमाकरोद्यानान्निषधाधिपतिमाकार्य शचीपतिदिशि विनिवेशिते कार्तस्वरसिंहासने समुपवेशय।

(‘आदेशः प्रमाणम्’ इति ब्रुवाणो मङ्गलको निष्क्रान्तः प्रविशति मङ्गलकेनादिश्यमानसरणिर्नलः कलहंस-खरमुख-मकरिकाऽऽदिकश्च परिवारः)

मङ्गलकः— इत इतो निषधाधिपतिः। इदं सिंहासनमास्यताम्।

नलः— (समुपविश्य स्वगतम्)

वसुदत्त— यदि ज्ञान दृष्टि वाले ऋषिजन ऐसा कहते हैं तो वही हो। (देखकर) यह स्वयंवर मण्डप है, महाराज इस सिंहासन पर बैठें।

राजा— (वैसा करके और देखकर) मन्त्रिन् काशी-नरेश प्रभृति राजा आ चुके हैं, किन्तु निषधनरेश(नल) अभी भी नहीं आये हैं। अरे, यहाँ कोई है?

(प्रवेश कर)

पुरुष— आज्ञा दें महाराज।

राजा— अरे मङ्गलक! पुष्पवाटिका से निषधनरेश नल को बुलाकर पूर्व दिशा में स्थापित स्वर्णसिंहासन पर उन्हें बैठाओ।

(महाराज की आज्ञा ही प्रमाण है’ यह कहता हुआ मंगलक रङ्गमञ्च से चला जाता है। उसके बाद मंगलक से दिखाये जाते हुए रास्ते से कलहंस, खरमुख (विदूषक), मकरिका आदि परिजन सहित राजा नल प्रवेश करते हैं)

मङ्गलक— इधर से निषध-नरेश इधर से। इस सिंहासन पर बैठिए।

नल— (सिंहासन पर बैठकर अपने मन में)

आकुञ्चितैर्विकसितैश्चकितैः प्रहृष्टै-

रुत्कण्ठितैः कुटिलितैर्ललितैर्विनीतैः।

आलोकितैर्मृगदृशो वदनप्रवृत्ति-

वृत्तैर्जितोऽस्मि मुषितोऽस्मि हतोऽस्मि तुल्यम्॥१॥

(प्रकाशम्) कलहंस!

कृतमिषशतं यद् गच्छन्त्या मुहुर्मुहुरीक्षितं

यदपि च सखीशङ्काभीत्या गता न विरागतः।

तदिदमनिशं स्मारं स्मारं कुशीलववन्मनो

हसति रमते रोदित्युच्चैर्विषीदति सीदति॥२॥

(विमृश्य) कीदृशमस्य स्वयंवरस्य निर्वहणं सम्भावयसि?

संकुचित, प्रफुल्लित, विस्मय, रोमाञ्च, उत्सुक, वक्र (भाव-भङ्गिमा), शृङ्गारप्रिय (क्रीडासक्त) सौम्य व्यापार वाली मृग के समान दृष्टिवाली (दायन्ती) के अवलोकन-क्रिया से मैं जीत लिया गया, चुरा लिया गया (और) मुग्ध किया गया सा हो गया हूँ॥१॥

(प्रकट में) कलहंस!

यद्यपि (वह दमयन्ती) सखियों की आशंका से भयभीत होकर चली गई (तथापि) जाती हुई (उस दमयन्ती द्वारा) किये गये सैकड़ों बहाने वाली बार-बार नेत्रावलोकन (की क्रिया) से (स्पष्ट है कि वह अपनी) इच्छा से नहीं (गई)। अतः उसको लगातार स्मरण कर मेरा मन नाटकीय पात्र की तरह हँसता है, रमण करता है, रोता है, अत्यधिक हताश होता है (और) दुःखी होता है॥२॥

(विचारकर) इस (दमयन्तीके) स्वयंवर समाप्ति की कैसी सम्भावना करते हो?

टिप्पणी- 'कुशीलवः'— कुत्सितं शीलमस्य-कुशीलवः। 'नटाक्षारणास्तु कुशीलवाः'
इत्यमरः।

कलहंस- पत्रकश्लोकविमर्शनेन नाटकस्येव प्रमदाद्भुतरसशरणं सम्भावयामि निर्वहणम्।

नलः- वयस्य खरमुख! खरनादितेन राजपुत्रीं प्रतिनिवर्तयता त्वया वयमधमर्णीकृताः। जाने भगवता विरञ्चेन भवानेतदर्थमेव गर्दभवदनः कृतः।

विदूषकः- (सरोषम्) (१) अदो ज्जेव तए कदञ्चूडामणिना खर मुहस्स पडिकदं कदं।

नलः- वयस्य! राजपुत्रीललितमीमांसादुर्ललितचेतोभिरस्माभिनं किमपि रजनावनुस्मृतम्, तदिदानीं गृहाणेदं त्रैवेयकम्।

विदूषकः- (२) कुविदो म्हि, न गिम्हिस्सं।

नलः- मकरिके! वयस्यमनुकूलयास्मासु।

कलहंस- पत्र-लिखित पद्य पर विचार करने से नाटक में प्रयुक्त अद्भुतरस से युक्त निर्वहण सन्धि की तरह इस स्वयंवर समाप्ति की भी सम्भावना करता हूँ।

नल- मित्र खरमुख! गर्दभध्वनि से राजपुत्री दमयन्ती को लौटाकर तुमने इन्हें अधमर्ण (कर्जदार) बना दिया। मैं तो यही मानता हूँ कि भगवान् ब्रह्मा ने इसीलिए तुम्हें गर्दभमुख वाला बनाया है।

विदूषक- (क्रोधित हुए की तरह) इसीलिए तो प्रत्युपकार करने वालों में अग्रगण्य तुमसे मैं उपकृत भी किया गया।

नल- मित्र! राजपुत्री दमयन्ती के सौन्दर्यादि का विचार करते हुए, जिसे प्रसन्न करना कठिन है ऐसे हृदयवाला, हमने रात्रि का तो कुछ स्मरण ही नहीं किया। अब यह गले का हार ग्रहण करो।

विदूषक- नहीं लूँगा, क्योंकि अभी मैं क्रोधित हूँ।

नल- मकरिके! मित्र को हमारे ऊपर प्रसन्न करो!

(१) अत एव त्वया कृतञ्चूडामणिना खरमुखस्य प्रतिकृतं कृतम्।

(२) कुपितोऽस्मि, न ग्रहीष्यामि।

टिप्पणी- 'त्रैवेयकं कण्ठभूषा'- इत्यमरः 'त्रैवेयकम्'— ग्रीवा ढकञ्

मकरिका-(१) अरे गहहमुहं! किं भट्टिणमवजाणासि?

विदूषकः-(२) आरं दासीए धीए! मं बंभणमहिक्खिवसि?

नलः- वयस्य! साम्प्रतमनवसरः क्रोधस्य।

विदूषकः- (३) जइ अणवसरो कोहस्स, ता गिम्हिस्सं पसादं।

नलः- रसभङ्गः कृतस्त्वया, ततो न वयं प्रैवेयकं प्रतिपादयिष्यामः।

मकरिका- (विहस्य) (४) ईदिसस्स ज्जेव संमाणस्स जुग्गो सि।

विदूषकः-(५) भो! पडिवादेहि आभरणं, न पुणो रुसिस्सं।

(नलो प्रैवेयकं समर्पयति)

मकरिका- अरे गर्दभमुख! क्या स्वामी की अवहेलना करते हो?

विदूषक- अरी दासी-पुत्रि! मुझे ब्राह्मण पर आक्षेप करती हो?

नल- मित्र! अभी क्रोधित होना अनुचित है।

विदूषक- यदि क्रोधित होने का यह उचित समय नहीं है तो मैं तुम्हारे गले के हार रूपी प्रसाद को ग्रहण करूँगा।

नल- नहीं, तुमने आनन्द का उच्छेद कर डाला इसलिए मैं तुम्हें 'गले का हार' नहीं दूँगा।

मकरिका- (हास पूर्वक) इसी प्रकार के सम्मान के योग्य तुम हो भी।

विदूषक- हे मित्र! मुझे आभूषण दो, मैं पुनः नहीं क्रोधित होऊँगा।

(नल गले का हार विदूषक को देता है)

(१) अरे! दर्दभमुख! किं भर्तारिमवजाननासि?

(२) आः दास्याः पुत्रि! मां ब्राह्मणमधिक्षिपसि?

(३) यद्यनवसरः क्रोधस्य, तद् ग्रहीष्ये प्रसादम्।

(४) ईदृशस्यैव सम्मानस्य योग्योऽसि।

(५) भोः प्रतिपादय आभरणम्, न पुनः रुषिष्यामि।

मङ्गलकः— (अग्रतः परिक्रम्य) देव विदर्भाधिपते! समायातो निषधाधिपतिः।

राजा— अवशिष्यते कोऽपि नरपतिः?

मङ्गलकः— न कोऽपि।

राजा— कोऽत्र भोः?

(प्रविश्य)

कञ्चुकी— ऐषोऽस्मि।

राजा— माधवसेन! वत्सां दमयन्तीं स्वयंवरमण्डपे समानय।

(‘आदेशः प्रमाणम्’ इत्यभिधाय माधवसेनो निष्क्रान्तः। ततः प्रविशति कञ्चुकिना निर्दिश्यमानमार्गा दमयन्ती, गृहीतवरमाला कपिञ्जला च)

कपिञ्जला—(१) तदो पुच्छिदा अहं रयणिवृत्तं मयरियाए, कहिदो य मए।

मङ्गलक— (आगे जाकर) हे विदर्भनरेश! निषधदेश के स्वामी राजा नल आ गये हैं।

राजा— कोई राजा रह तो नहीं गया?

मङ्गलक— नहीं।

राजा— अरे, कौन है यहाँ?

(प्रवेश करके)

कञ्चुकी— यह मैं हूँ।

राजा— माधवसेन! पुत्री दमयन्ती को स्वयंवर मण्डप में लाओ।

(‘आदेश ही प्रमाण है’ यह कहकर माधवसेन चला जाता है। पश्चात् कञ्चुकी से मार्ग दिखाई जाती हुई दमयन्ती और वरमाला को ग्रहण की हुई कपिञ्जला प्रवेश करती है।

कपिञ्जला— इसके बाद मकरिका ने मुझसे रजनीवृत्तान्त पूछा और मैंने उसे बता दिया।

(१) ततः पृष्टाऽहं रजनीवृत्तान्तं मकरिकया, कथितश्च मया।

दमयन्ती- (सरोषमिव) (१) कीस तए अहं लहुईकदा?

माधवसेन:- इत इतो देवी। देवि! अयमेष देवो विदर्भाधिपतिः।
एते च वरयितारः क्षमाभर्तारः।

कपिञ्जला- (अपवार्य नलं दर्शयन्ती) (२) एसो उण
कुसुमावचयपच्चूहकारी दुव्विसहआधि-वाधिनाडयपत्थावणासुत्तहारो
सजणो।

दमयन्ती- (समन्ततोऽवलोक्य, नलं च सविशेषं निर्वर्ण्य स्वगतम्)
(३) कथं अहल्लेव गोदमस्स सावेण एदस्स दंसणेण जडीकदा मे
ऊरुजुयली? हीमाणहे! कथं सयंवरमंडवे परिक्वमिस्सं?

दमयन्ती- (कुपित हुई सी) तुम्हारे द्वारा मैं हल्की बना दी गई।

माधवसेन- इधर से देवी इधर से। देवि! ये महाराज विदर्भनरेश हैं। और ये
सब वर रूप में आये राजसमूह हैं।

कपिञ्जला- (अपवारित करके नल को दिखाती हुई) पुष्पचयन की क्रिया में
विघ्न उपस्थित करने वाला असह्य शारीरिक पीड़ा रूपी नाटक के आमुख का सूत्रधार
ये वही राजा नल हैं।

दमयन्ती- (चारों तरफ देखकर, तथा नल को अच्छी तरह देखकर अपने मन
में) इस (नल) को देखने से गौतम के शाप से अहल्या की तरह मेरी दोनों जाँघें क्यों
जडीभूत हो गयीं? ओह, अब मैं कैसे स्वयंवरमण्डप में भ्रमण करूँगी?

(१) कथं त्वयाऽहं लघुकीकता?

(२) एष पुनः कुसुमावचयप्रत्यूहकारी दुर्विसहाधिव्याधिनाटक-
प्रस्तावनासूत्रधारः स्वजनः।

(३) कथमहल्लेव गौतमस्य शापेनैतस्य दर्शनेन जडीकृता मे ऊरुयुगली!
हा! कथं स्वयं वरमण्डपे परिक्रमिष्यामि?

टिप्पणी- 'पत्थावणा' — प्रस्तावना-प्र + स्तु + णिच् + युच् + टाप।

कपिञ्जला- (स्वगतम्) (१) अम्मो! कथं भट्टिणीए नलं पिच्छेउण ऊरुत्थंभो जादो? भोदु एवं दाव (प्रकाशम्) भट्टिणि! रयणिसंभूददाहजरेण नीसहाइं दे अंगाइं, ता मं अवलंबिय परिवक्कमसु।

नलः- (विलोक्य) मकरिके! केयं कपिञ्जलादत्तहस्तावलम्बा परिक्रामति?

मकरिका-(२) णं एसा दमयंती।

नलः- अहो! कौतूहलं राजपथेऽपि भ्रमः। नन्वियं विष्टपदृष्टिचकोरीचन्द्रिका देवी दमयन्ती। मकरिके!

अधिकमधिवहन्ती गण्डयोः पाण्डिमानं

तलिननलिननालान्यङ्गकैस्तर्जयन्ती।

कपिञ्जला- (मन ही मन) ओह, स्वामी नल को देख कर (दमयन्ती की) दोनों जाँघें क्यों शिथिल हो गयी? अच्छा, तो, स्वामिनि! रात्रिजन्य ज्वर-ताप से तुम्हारे अङ्ग असहाय हो गये हैं इसलिए मेरा अवलम्बन कर भ्रमण करें।

नल- (देखकर) मकरिके! कपिञ्जला का अवलम्बन कर भ्रमण करने वाली यह कौन?

मकरिका- यह तो दमयन्ती है।

राजा- ओह, उत्कण्ठा के कारण राजमार्ग में भी भ्रम हो जाता है। चकोरी पक्षिविशेष के नेत्रों को आनन्दित करने वाली चन्द्र-किरणों की तरह संसार रूपी नेत्र को आनन्दित करने वाली यह तो दमयन्ती देवी ही है। मकरिके!

(१) अहो! कथं भर्त्या नलं दृष्ट्वा ऊरुस्तम्भो जातः? भवतु, एवं तावत्। भर्त्रि! रजनीसम्भूतदाहज्वरेण निःसहानि ते अङ्गानि, ततो मामवलम्ब्य परिक्रमस्व।

(२) नन्वेषा दमयन्ती।

टिप्पणी- 'चकोरी'— पक्षी विशेष या तीतर की जाति का पक्षी कहा जाता है कि चन्द्र-किरणें ही इस (पक्षी) का भोज्य-पदार्थ है— 'ज्योत्स्नापान मदालसेन वपुषा मत्ताश्चकोरांगनाः।' विद्धशालभञ्जिका। 'विष्टप'— 'जगत् स्याद् विष्टपे' इति मेदिनी।

टिप्पणी- "तलिनं विरले स्तोके स्वच्छेऽपि वाच्यलिङ्गकम्" इति मेदिनी

अलसचरणपातैर्वीक्षितैश्चातिकान्तैः

कथय कथमियं नः साम्प्रतं भात्यपूर्वा? ॥३॥

मकरिका- (विहस्य) (१) भट्टा ज्जेव संतावमुप्पाययंतो अपुरवत्तणे कारणं।

नलः- (सहर्षम्) अयि! रजनिवृत्तान्तमवधार्य वदसि?

मकरिका-(२) अथ इं।

नलः- किमजनि रजनौ देव्याः?

मकरिका-(३) जं रहंगघरिणीए।

नलः- कच्चिन्निषधाधिपतिर्भगवता विरञ्चेन सुभगश्रेणिं लम्भितः।
(दमयन्तीं विलोक्य) मकरिके!

अत्यधिक पीताभ-श्वेत वर्ण के कपोलों को धारण करती हुई, अपने अंगों से स्वच्छ कोमल कमल-नाल को निर्जीत करती हुई चरण-विक्षेप से तथा अत्यधिक प्रिय दृष्टि से (युक्त) यह दमयन्ती इस समय हम लोगों को कितनी अपूर्व लग रही है, यह (तुम) कहो ॥३॥

मकरिका- (हास पूर्वक) इसके अपूर्वत्व में सन्ताप को उत्पन्न करने वाले महाराज आप ही कारण हैं।

नल- (हर्षपूर्वक) मकरिके! क्या, रात्रि के वृत्तान्त के आधार पर तुम ऐसा कह रही हो?

मकरिका- और नहीं तो क्या।

नल- तो, रात्रि में दमयन्ती को क्या हो गया?

मकरिका- रात्रि में जो चकोर पक्षी की पत्नी चकोरी का होता है।

नल- शायद, भगवान् ब्रह्मा ने, नल को सज्जनों की श्रेणी प्राप्त कराया है।
(दमयन्ती को देखकर) मकरिके!

(१) भर्तैव सन्तापमुत्पादयन् अपूर्वत्वे कारणम्।

(२) अथ किम्।

(३) यद् रथाङ्गगृहिण्याः।

सान्निध्यात् पितुरानतं नृपजनव्यालोकलीलोन्नतं
मद्वक्त्रेक्षणलालसात् प्रतिमुहुः कोणाङ्गकेलीचलम्।
आरामस्मरणोद्गताद्भुतरसं वेषौचितीदर्शन-
व्यग्रं नव्यसभाप्रवेशचकितं चक्षुः कुरङ्गीदृशः ॥४॥

राजा- अये माधवसेन! प्रत्येकमवनीभुजां नय-विनय-क्रम-
विक्रमानुत्कीर्तय पुरो वत्सायाः।

माधवसेनः- (पुरो भूत्वा दमयन्तीं प्रति)

स्मेराक्षि ! क्षितिचक्रविश्रुतबलः काशीक्षितीशो बलः
सोऽयं स्कन्धतटेऽस्य मुञ्च विकचन्मल्लीप्रसूनस्रजम्।
उच्छालस्पृहयालुशीकरभरव्यासङ्गरङ्गत्रगे
गाङ्गे रोधसि सस्पृहा 'ग्लपयितुं चेद् ग्रीष्मध्यनन्दिन्म् ॥५॥

पिता के समीप अपने मुख को नीचे की हुई, (किन्तु) राज-समूह को देखने के लिए लीलापूर्वक ऊपर उठाती हुई तथा प्रत्येकक्षण मेरे मुख को देखने की इच्छा से क्रीड़ा करती हुई तिरछे नेत्र-प्रान्तों वाली, उद्यान की कथा के स्मरण से उत्पन्न विस्मित (होती हुई) और वेषौचित्य को देखने में व्यस्त स्वयंवर सभा में आने से आश्चर्यचकित (इस दमयन्ती की) दृष्टि भयभीत हिरणी की दृष्टि की तरह है ॥४॥

राजा- हे माधवसेन! दमयन्ती के सामने प्रत्येक राजा की नीति, विनय और पराक्रम आदि का वर्णन करो।

माधवसेन- (सम्मुख होकर दमयन्ती से)

हे विकसित नेत्रों वाली दमयन्ति ! यदि ऊपर उठने के लिए लालायित जलकणों की राशि के सम्पर्क से डोलते हुए वृक्षो वाले गङ्गा के तट में गर्मी के दिनों को शान्त करना चाहती हो तो चमेली पुष्प-निर्मित वर माला को इसके गले में पहनाओ, (क्योंकि) ये वही 'बल' नामक काशी-नरेश हैं, जो भूमण्डल के समस्त राजाओं में अपने सामर्थ्य (शक्ति) के कारण प्रसिद्ध हैं ॥५॥

१. क. प्लव.

दमयन्ती-(१) अज्ज ! परवंचणवसणिणो कासिवासिणो सुच्चंति।

माधवसेनः- न मेऽस्मिन् मनोरतिरिति व्यक्तमुच्यताम्।

(परिक्रम्य)

अयमवनिपतीन्दुर्भूपतिः कुङ्कणानां

कलय वलयधाम्ना पाणिना पाणिमस्य।

अधिजलधिगतानां गोत्रशत्रुर्मृगाक्षि!

क्षपयति नहि पक्षान् क्षमाभृतां शङ्कितोऽस्मात् ॥६॥

दमयन्ती-(२) अणिमित्तरोसिरो एस, ता न पारेमि पए पए
अणुकूलिदुं।

माधवसेनः- कुन्ददति! वयसैव लधीयसी, संसारोपनिषद्वैदुष्येण
गरीयसी खल्वसि।

दमयन्ती- आर्य माधवसेन! ऐसा सुना जाता है कि काशी में रहने वाले दूसरे
को ठगने में कुशल है।

माधवसेन- यह मेरे मनोनुकूल भी नहीं है।

(धूमकर)

हे मृगाक्षि! राजाओं में चन्द्रतुल्य ये वही कुङ्कणाधिपति हैं, जिसके भय से
भयभीत, समुद्र में जाकर छिपे हुये पर्वतों का शत्रु, इन्द्र भी इसके आश्रित (पक्ष के)
राजाओं का अपराध (खण्डन) नहीं करता है। अतः तुम अपने हाथ से इसके, हाथ
में कङ्कन धारण करने के स्थान (कलाई) का ग्रहण करो अर्थात्, पति रूप में इसको
वरण करो ॥६॥

दमयन्ती- अकारण कुपित होने वाले इस राजा को पग-पग पर अनुकूल करना
मेरे लिए सम्भव नहीं है।

माधवसेन- हे कुन्ददति (कुन्दपुष्प के समान दाँतो वाली दमयन्ति)! तुम आयु
में ही छोटी हो, किन्तु संसार के रहस्य को जानने में बड़ी हो (क्योंकि—

(१) आर्य! परवञ्चनव्यसनिनः काशिवासिनः श्रूयन्ते।

(२) अनिमित्तरोषण एष, तत्र पारयामि पदे पदेऽनुकूलयितुम्।

अकाण्डकोपिनो भर्तुरन्यासक्तेश्च योषितः।

प्रसत्तिश्चेतसः कर्तुं ब्रह्मणापि न शक्यते॥७॥

(सर्वेऽग्रतः परिक्रामन्ति)

काश्मीरेश्वर एष शेषवनितासङ्गीतकीर्तिद्विषत्-

कान्तावक्त्रविचित्रपत्रमकरीहव्यैकधूमध्वजः।

एतं कुन्ददति! त्वमावह वरं यद्यस्ति कौतूहलं

केदारेषु विकासिकुङ्कुमरजःपिङ्गेषु सङ्क्रीडितुम्॥८॥

दमयन्ती-(१) अज्ज माधवसेण! तुसारसंभारप्रणयभीरुयं मे शरीरयं न किं तुमं जाणासि?

माधवसेनः- तर्हि पुरो व्रजामि। (परिक्रम्य) कलहंसगमने!

अकारण कुपित होने वाले स्वामी को तथा अन्य (पुरुष) में आसक्त स्त्री को प्रसन्नचित्त करने में तो स्वयं विधाता (ब्रह्मा) भी समर्थ नहीं हैं॥७॥

(सभी आगे चलते हैं)

वनिताओं द्वारा गाई गई कीर्ति वाला, शत्रु की कान्ताओं के मुखों के विचित्र पत्ररचना रूप हव्य के लिए (समाप्त करने के लिए) अग्निस्वरूप यह कश्मीर देश का राजा है। कुन्द पुष्प के समान धवल दाँतों वाली हे दमयन्ति! यदि तुम्हें फैले हुए केसर पराग के कारण पिङ्गलवर्ण वाले खेतों में क्रीडा करने का कुतूहल है तो तुम इस (राजा) को वरण करो॥८॥

दमयन्ती- आर्य माधवसेन! क्या तुम यह नहीं जानते हो कि मेरा शरीर ओस (हिमपात) के भार को सहन करने के योग्य नहीं है?

माधवसेन- तो आगे चलता हूँ। हे कलहंसगमने (दमयन्ति)!

पृष्ठ स्कन्ध-प्रदेश वाला तथा अभिमानियों का एक मात्र आश्रयदाता इस कौशाम्बी-नरेश का वरण करो, जिसके प्रताप रूपी अग्नि को सहन करने में असमर्थ

(१) अर्य माधवसेन! तुषारसम्भारप्रणयभीरुकं मे शरीरं न किं त्वं जानासि?

कौशाम्बीपतिरयमुन्नतांसपीठः

शौण्डीर्यावसथममुं वरं वृणीष्व।

यत्तेजोऽनलमसहिष्णुरुत्यतिष्णुः

क्षमापालो वनमभिभूतवान् न कस्कः?।।१।।

दमयन्ती—(१) कपिजले! अतिरमणीया तुमए वरमाला विणिम्मिदा।

माधवसेन— अप्रतिवचनमेवास्य भूपतेः प्रत्यासः।

नलः— (वृ सुमचापसन्तापमभिनीय स्वगतम्)

यस्यां मृगीदृशिदृशोरमृतच्छटायां

देवः स्मरोऽपि नियतं वितताभिलाषः।

एतत्समागमनोत्सवबद्धतृष्णा-

माहन्ति मामपरथा विशिखैः कथं सः?।।१०।।

किस-किस राजा ने भागकर जंगल को प्राप्त नहीं किया? (अर्थात् सभी ने जंगल का आश्रय लिया)।।१।।

दमयन्ती— कपिजले! तुमने अतिसुन्दर वरमाला बनायी है।

माधवसेन— इस वचन से स्पष्ट है कि दमयन्ती इसे भी स्वीकार नहीं करती है।

नल— (कामबाण से उत्पन्न पीड़ा का अभिनय करते हुए मन ही मन)—

जिस मृगनयनी दमयन्ती के दृष्टि-सौन्दर्य रूपी अमृत (सुधा) का अत्यधिक अभिलाषी कामदेव भी निश्चितरूप से है, वह (कामदेव), इस स्वयंवर रूपी महोत्सव (हर्षोल्लास) के अवसर में (दमयन्ती मिलन की) इच्छा वाले मुझे बाण से इस प्रकार से क्यों मार (सन्तापित कर) रहा है?।।१०।।

(१) कपिजले! अतिरमणीया त्वया वरमाला विनिर्मिता।

टिप्पणी— 'कौशाम्बी'— वत्स देश की राजधानी का नाम 'कौशाम्बी' है, जो इलाहाबाद से लगभग तीस मील की दूरी पर वर्तमान कोसम के निकट स्थित था। 'कस्कः'— 'कस्कादिषु च' विधिसूत्र से इस गण में पढ़े शब्दों के अवयव 'इण' से परे विसर्ग को 'ष' होता है। यदि 'इण' से परे विसर्ग न रहे तो विसर्ग के स्थान में 'स' होता है। कस्कः— कः + कः < कस् कः < कस्कः = कौन कौन।

माधवसेनः— (परिक्रम्य)

स एष सुभगाग्रणीः पतिरवन्तिभूमेः कला-

कलापकुलकेतनं यदरिवामनेत्राजनैः।

वसद्भिरधिपर्वतं किमपि पर्वतीयाधिप-

स्त्रियो नृपतिनायिकाललितनाटकं शिक्षिताः ॥११॥

तदकोशसहस्रपत्रपत्रलाक्षि ! पवित्रय निजेन पाणिना पाणिमस्य
यदि सिप्रास्त्रोतसि स्नानाय स्पृहयसि।

दमयन्ती—(१) माधवसेण! विवाहमंगलसंगलिदभूरितूररव-
पडिरवजणिद-जागरणभिंभलाइं मे अंगाइं, न तरामि पुणो पुणो मंतिदुं।

माधवसेन— (धूमकर)

चौंसठ प्रकार की कलाओं का पारम्परिक आगार, सज्जनों में अग्रगण्य ये वही अवन्ति (उज्जयिनी) नरेश हैं, जिसके शत्रु की रमणियों के पर्वत पर निवास करने से नृप-रमणियों का शृङ्गारप्रिय-क्रियाओं में पर्वतीय (शासक की) स्त्रियाँ भी पटु हो गई हैं ॥११॥

हे, विकसित कमल पत्र सदृश पलकों (पपनियों) वाली, दमयन्ति! यदि शिप्रा नदी के जल में स्नान की अभिलाषिणी हो तो अपने हाथ से इसके हाथ को पवित्र करो, अर्थात् अपने पति बनाओ।

दमयन्ती— माधवसेन! विवाह रूपी मंगल कार्य के लिए बजाये जाते हुए भेरी आदि की ध्वनि-प्रतिध्वनि से मेरा शरीरावयव विह्वल हो चुका है अतः बार-बार मन्त्रणा करने में मैं असमर्थ हूँ।

(१) माधवसेन! विवाहमङ्गलसङ्कलितभूरितूर्यरवप्रतिरवजातजागरण-
विह्वलानि मेऽङ्गानि, न शक्रोमि पुनः पुनर्मन्त्रयितुम्।

टिप्पणी— 'अवन्ति— नर्मदा नदी के उत्तर में स्थित अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी थी जिसे अवन्तिपुरी या अवन्ति और विशाला भी कहा जाता था, जो शिप्रा नदी के तट पर स्थित थी। महाभारत काल में यह देश दक्षिण में नर्मदा तट तक तथा पश्चिम में मही के तटों तक फैला हुआ था।

माधवसेनः- (सभयमात्मगतम्) कथमवन्तीपतिविद्वेषेण सरोषमा-
भाषते। भवतु, नृपान्तरमुत्कीर्तयामि। (प्रकाशम्) कलकण्ठीकण्ठि!
न्यायैकधनमेतमनुमन्यस्व पतिं कलिङ्गाधिपतिम्। पश्य पश्य-

यथा यथा प्रतापाग्निर्ज्वलत्यस्य महौजसः।

चित्रं वर्णाश्रमारामाः स्निग्धच्छायास्तथा तथा।।१२।।

दमयन्ती- (विलोक्य) (१) तादसमाणवयपरिणामस्स नमो एतस्स।

माधवसेनः- (स्वगतम्) वार्द्धककलङ्कपङ्किलः सत्यमनुपासनीय
एवायमभिनवयौवनानाम्। भवतु (पुनः) परिक्रामति। प्रकाशम्) मृगाङ्कमुखि!

**दर्पाध्मातविरोधिवीरकुरलीदोः काण्डकण्डूकूम-
च्छेदच्छेकपराक्रमं पतिममुं मन्यस्व गौडेश्वरम्।**

माधवसेन- (भयभीत हुआ सा मन ही मन) अवन्तिनरेश से द्वेष करती हुई
यह दमयन्ती क्रोधित की तरह क्यों बोल रही है। अच्छा, दूसरे राजा के गुणों का
ही कथन करता हूँ। (प्रकट में) कोयल सदृश कण्ठ (ध्वनि) वाली दमयन्ति! न्याय
ही एक मात्र धन है जिसका ऐसे कलिङ्गदेश के राजा को अपना पति बनाओ। देखो—

जैसे-जैसे इस महापराक्रमी (कलिङ्ग-नरेश) की प्रतापाग्नि प्रज्वलित होती है
वैसे-वैसे वर्णाश्रम रूपी उपवन (आश्रम) में (इसकी) अद्भुत उज्ज्वलदीप्ति (फैलती)
है।।१२।।

दमयन्ती- (देखकर) पितृलुल्य अवस्था वाले इनको प्रणाम करती हूँ।

माधवसेन- (मन ही मन) वृद्धा अवस्था रूपी दोष से दूषित जन निश्चय ही
नव यौवन से आलिङ्गित सुन्दरियों की उपासना के योग्य नहीं है। अच्छा (पुनः) घूमता
है प्रकट में) चन्द्रमुखि!

उत्कट अहंकार वाले शत्रुपक्षीय वीरों की भुजाओं की पराक्रम रूपी खुजली
को काटकर शान्त करने वाले इस गौड-नरेश को अपना पति मानो जिसकी सेना

(१) तातसमानवयःपरिणामाय नम एतस्मै

टिप्पणी- 'कलिङ्ग'— उड़ीसा के दक्षिण में स्थित और गोदावरी के मुहाने तक फैला
हुआ एक देश का नाम जिसकी एकरूपता ब्रिटिशकालीन सरकार से स्थापित की
जाती है। इसकी राजधानी 'कलिङ्ग' नगर प्राचीन काल में समुद्र तट से कुछ दूरी
पर कदाचित् 'राजमहेन्द्री' में थी।

भ्रश्यद्विन्दुतरङ्गभङ्गिपटलैर्यद्वाहिनीवारण-

श्रेणीदानजलैर्बिभर्ति जगती कस्तूरिकामण्डनम् ॥१३॥

दमयन्ती-(१) अम्पो! ईदिसं पि कसिणभीसणं माणुसरूवं भोदि।
अज्ज! तुरिदमग्गदो वच, वेवदि मे हियदं।

(माधवसेनः स्मित्वा परिक्रामति)

नलः- (दमयन्तीमवलोक्य कलहंसं प्रति) पश्य पश्य कौतूहलम्।

चापल्यं दृशि शाश्वतं कुटिलतां चूर्णालकेषु स्थिरा-

मौद्धत्यं कुचयोरनन्यशरणं मध्ये परां तुच्छताम्।

बिभ्राणाऽपि विदर्भराजतनया प्रीत्यै सतां चेतसः

कलहंसः- देव! किमदः कौतूहलम्? यतः-

दोषा अप्यतिशेरेते क्वचिदपि स्थाने प्ररूढा गुणान् ॥१४॥

में सम्मिलित हाथियों के मदजल रूपी गिरते हुए गोल-गोल मदजल-बिन्दु की धारा समूह द्वारा जगत् कस्तूरी (सुगन्धित द्रव्य) के लेप से अलंकृत शोभा को धारण करता है, अर्थात् शोभायमान है ॥१३॥

दमयन्ती- ओह, ऐसा काला-भयङ्कर आकृति वाला भी मनुष्य होता है। आर्य! शीघ्र आगे बढ़ो, क्योंकि मेरा हृदय काँप रहा है।

(माधवसेन स्मित हास के साथ घूमता है)

नल- (दमयन्ती को देखकर कलहंस से) आश्चर्यजनक देखो—

नेत्रों में निरन्तर चञ्चलता, घूँघराले केशों में स्थायी कुटिलता (टेढ़ापन तथा) उन्नत स्तनों के मध्य (हृदय) में किसी अन्य के लिए स्थान नहीं होने से अत्यन्त हेयता को धारण करती हुई भी प्रसन्नता के लिए ही है--।

कलहंस- तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? क्योंकि—

दोष (अवगुण) भी स्थान-विशेष पर उत्कृष्ट गुण हो जाते हैं ॥१४॥

(१) अहो! ईदृशमपि कृष्णभीषणं मनुष्यरूपं भवति। आर्य! त्वरितमग्रतो ब्रज, वेपते मे हृदयम्।

टिप्पणी- 'जगती'— 'जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्' इत्यमरः।

माधवसेन:- आ: दुर्विदग्धहृदये!

रेवासीकरवारिवेषथुवपुर्माहिष्मतीभूपति:

सोऽयं श्रीवनिताविलासवसतेरस्याङ्कशय्यां गता।

शार्म्मोल्लाघनघर्मघस्मरमरुन्मैत्रीनिपीतक्लम-

स्वेदाम्भःकणिकासपे ! क्षिप शरच्चन्द्रातपास्ताः क्षपाः ॥१५॥

दमयन्ती-(स्मृतिमभिनीय) (१) अंबहे! एष अंबाए भादुणो तणुओ वक्कसेणो।

माधवसेन:- (सलज्जं परिक्रम्य) चन्द्रमुखि ! कालिन्दीसीकरा-
सारसम्पर्कसततझञ्जानिलीभूतवातपरिरम्भासम्भावितग्रीष्मोष्माणं
विजयवर्माणं मथुराधिपतिं पतिमेतमनुमन्यस्व, स्वैरं विहर्तुमुत्कण्ठसे यदि
वृन्दावनपावनासु गोवर्द्धनाधित्यकासु।

माधवसेन- अहा! भोली-भाली हृदय वाली दमयन्ति ! नर्मदा के जलकणों में जल से काँपते शरीर वाला यह माहिष्मती का राजा है। शोभित वनिताओं के विलास के पात्र इसकी अङ्कशायिनी बनकर, सुख को घटाने वाली धूप को निगलने वाले पवन की मैत्री से समाप्त किये गए श्रमजन्य पसीने की बूँदों वाली हे दमयन्ती तुम शरद् की चाँदनी वाली रात्रियों को बिताओ ॥१५॥

दमयन्ती- (याद करने का अभिनय करती हुई) अरे, यह तो, माँ के भाई का पुत्र अर्थात्, पेरा ममेरा भाई वक्रसेन है।

माधवसेन- (लज्जापूर्वक घूमकर) चन्द्रमुखि! यदि वृन्दावन के पवित्र गोवर्द्धन पर्वत के ऊर्ध्व भागों पर इच्छानुसार विहार करने की उत्कण्ठा रखती हो, तो यमुना के जल बूँदों की तेज वर्षा के सम्पर्क से निरन्तर चलने वाली शीतल वायु से आलिङ्गित अतएव ग्रीष्म ताप से रहित मथुरादेश के राजा इस विजयवर्मा को अपना पति बनाओ।

(१) अहो! एषोऽम्बाया भ्रातुस्तनुजो वक्रसेनः।

टिप्पणी- 'माहिष्मती'— बिन्ध्य और रिक्ष पर्वतों के मध्य में नर्मदा के किनारे पर स्थित माहिष्मती नगरी में हैहय या कलचुरी लोग राज्य करते थे।

१. क. प्राप्त. प्र.

यात्रायां किल यस्य सिन्धुरघटाप्रायः प्रसर्पच्चमू-
मूर्च्छालावनिलोलमूलतरले चामीकरक्षमाभृति।
घूर्णन्तीषु विशृङ्खलं प्रतिकलं दोलासु दैत्यद्विषां
कन्याः कुञ्चितपाणयो विदधते प्रेङ्खाविनोदोत्सवम्॥१६॥

दमयन्ती-(१) अज्ज माधवसेण! णाहमारामभूरुहविहारकोदूहलिणी।

माधवसेनः- (स्वगतम्) अयमपि न मे मनः प्रीणयतीति निवेदितम्।
भवतु। अग्रतः परिक्रमामि। (परिक्रम्य प्रकाशम्) पक्षमलाक्षि!

त्रैलोक्योदरवर्त्तिकीर्तिकदलीकाण्डप्रकाण्डप्रथा-
पाथोदं दयितं विधेहि तममुं काञ्चीपतिं भूपतिम्।
वाहिन्या प्रथितप्रतापघनया यस्मिन् समाक्रामति
क्रान्तः क्षोणिभृतः कुतो न निरगात् सङ्ग्रामगर्वोरगः?॥१७॥

जिसके सैनिक कार्य के लिए एकत्र हुई हाथियों की टोली रूपी सेना के मार्ग में प्रकृष्ट रूप से चलने के कारण चेतना रहित (हो गई) पृथ्वी सदैव बेचैन एवं कम्पमान (है ऐसी) स्वर्णमयी पृथ्वी के स्वामी (ये वही) मथुराधिपति विजयवर्मा हैं, जहाँ निर्बाध गति से इधर-उधर झूलती हुई झूलों में (क्रीड़ा के लिए) झुकी (आकर्षित) हुई देव-बालायें भी नृत्य-क्रीड़ा की इच्छा रखती हैं॥१६॥

दमयन्ती- आर्य माधवसेन! उद्यान के वृक्षों में क्रीड़ा की इच्छा (उत्कण्ठा) मुझे नहीं है।

माधवसेन- (मन ही मन) इससे मेरा मन सन्तुष्ट (प्रसन्न) नहीं है ऐसा सूचित करती है। अच्छा, तो आगे बढ़ाता हूँ। (धूमकर प्रकट में) लम्बी और सुन्दर बरौनी (पिपनी, पपिनी) युक्त नेत्रों वाली दमयन्ति!

संग्राम में, (जिसके) प्रख्यात प्रताप रूपी विशाल सेना के आक्रमण से खिन्न राजाओं का संग्राम का अहङ्कार रूपी सर्प, क्या नहीं निकल जाता है? अर्थात् निश्चय ही निकल जाता है। ऐसे, तीनों लोक में विद्यमान यश से कदली (केले के) वृक्ष में यश रूपी (जल) को देने वाले प्रसिद्धि प्राप्त, इस काञ्ची देश के राजा को (तुम) अपना पति बनाओ॥१७॥

(१) आर्य माधवसेन! नाहमारामभूरुहविहारकोदूहलिनी।

टिप्पणी- 'पक्षमल'— पक्षमन् + लच्।

१. क प्राप्तः

दमयन्ती—(२) हीमाणहे! परिस्संतम्हि एदिणा सयंवर-
मंडवभूमिविहरणेण, किच्चिरं अज्ज वि अज्जो माधवसेणो जंपिस्सदि?

वसुदत्तः— (राजानं प्रति) देव! पश्य—

ताराविलासरुचिरं नयनाभिनन्दि

नव्यं नरेन्द्रदुहितुमुखमिन्दुबिम्बम्।

यस्याभिषङ्गरहिताः कटकैः सहैव

विच्छायतां क्षितिभृतः सहसा व्रजन्ति।।१८।।

(प्रविश्य सम्भ्रान्तः)

पुरुषः— देव विदर्भाधिपते! लग्नघटिका वर्तत इति मौहूर्तिका
विज्ञापयन्ति।

राजा— (ससम्भ्रमम्) अये माधवसेन! संवृणु वाचालतां
विलम्बमसहिष्णुर्लग्नसमयः। कपिञ्जले! केयमरोचकिता वत्सायाः?

माधवसेनः— (सभयमग्रतः परिक्रम्य) कुड्मलाग्रदति देवि!

दमयन्ती— ओह, इस स्वयंवर मण्डप की भूमि पर चलते-चलते थक गई हूँ।
अतः आर्य माधवसेन अब और कितनी देर तक बोलते रहेंगे?

वसुदत्त— (राजा से) महाराज! देखिये— राजा की पुत्री दमयन्ती का मुख
चन्द्रबिम्ब के समान है जो नेत्रकनीनिका के विलास से रुचिकर है (चन्द्रबिम्ब तारों
के प्रकाश से रुचिकर है) नेत्रों को आनन्ददायी है, अभिनव है, जिस मुख के सम्पर्क
से रहित होकर राजा विवर्ण होकर सेनाओं के साथ जा रहे हैं (लौट रहे हैं)।।१८।।

(प्रवेश करके घबराहट के साथ)

पुरुष— हे विदर्भदेश के महाराज! विवाह का उचित समय (उपस्थित हो गया)
है, ऐसा ज्योतिषशास्त्रज्ञ कह रहे हैं।

राजा— (घबराहट के साथ) अरे माधवसेन! बकवास (व्यर्थ की बात) बन्द करो,
क्योंकि विवाह का उचित समय व्यतीत हो रहा है। कपिञ्जले! पुत्री दमयन्ती को यह
अरुचि क्यों?

माधवसेन— (भयभीत की तरह, आगे चलकर) हे, अधखिले पुष्प के अग्रभाग
के सदृश दाँतों को धारण करने वाली दमयन्ति, देवि!

(२) हा! परिश्रान्तास्मि एतेन स्यंवरमण्डपभूमिविहरणेण। कियच्चिर-
मद्याप्यार्यो माधवसेनो जल्पिष्यति?

प्रकर्षपदमन्तिमं द्रुहिणरूपशिल्पश्रियः

स एष निषधापतिः सुभगकुञ्जरग्रामणीः।

विलोक्य किल यं जगन्नयनकैरवेन्दुं चिरा-

दमस्त परिकल्पिता मदनदाहवार्ता जनः॥१९॥

दमयन्ती- (साश्चर्यमात्मगतम्) (१) अहो! मणोहरदा आगिदीए!
अहह चंगिमा अंगसंनिवेशाणं! कटरि सुहवत्तणं! कटरि विलासवियङ्गिमा!

राजा- (विलोक्य) कथमद्यापि वत्सा विलम्बते? (पुनरुच्चैःस्वरम्)
वत्से!

सृष्टि-कर्ता ब्रह्मरूपी वास्तुकार (कलाकार के रचना) की सौन्दर्य-श्रेष्ठता की अन्तिम सीमा सौभाग्यशालियों में अग्रगण्य, जगत् (लोक) के नेत्ररूपी कुमुदिनी को विकसित करने वाला चन्द्र स्वरूप जिस (नल) को देखकर निश्चय ही मनुष्य (चाहे पुरुष हो या स्त्री) चिरकाल से (जो शास्त्र-सम्मत नहीं है अर्थात्) लोकप्रसिद्ध काम-पीड़ा रूपी गुप्त बात को (कामाग्नि के उद्दीप्त हो जाने से शारीरिक सन्ताप को) मानने (अनुभव करने) लगे हैं, ये वही निषधाधिपति नल हैं॥१९॥

दमयन्ती- (आश्चर्य के साथ अपने मन में) वाह, क्या रूप-सौन्दर्य है। अहाह, अङ्गों का उचित विन्यास हुआ है। प्रशंसनीय आनन्द का जनक है और केलि परक मनो-विनोद की निपुणता भी प्रशंसनीय है।

राजा- (देखकर) पुत्री दमयन्ती अब विलम्ब क्यों कर रही है? (पुनः उच्च स्वर से) पुत्रि!

हे सुदति (अपने) अभिरामतारसिक चित्त को स्थिर कर (चित्त को शान्त कर) के उस पृथ्वी पालक को, जो यहाँ निश्चय ही एक नवीन नल हैं, वरण करो अर्थात्

(१) अहो! मनोहरताऽऽकृत्याः। अहह! चङ्गताऽङ्गसंनिवेशानाम्! कटरि सुभगत्वम्! कटरि विलासवैदग्ध्यम्!

टिप्पणी- 'द्रुहिण'— 'धाताब्जयौनिर्दुणिहो विरञ्चः कमलासनः। स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृष्ट विधिः॥' इत्यमरः। द्रुं संसारगतिं हन्ति द्रु हन् अच् इति 'द्रुहणः'। द्रुह्यति दुष्टेभ्यः— द्रुह् इनन्, णत्वम् इति 'द्रुहिणः'।

स्थिरं कृत्वा चेतः सुदति! वृणु रामैकशरणं

तमेतं भूपालं य इह ननु नव्यः किल नलः।

यदेतस्याक्रान्ताः, क्षणमपि करेणाचलघने

वने मज्जन्त्याशु स्फुटकटकवन्तः क्षितिभृतः॥२०॥

अपना पति बनाओ। जिस नल की कीर्ति से एक ही क्षण में वशीभूत हो गये स्पष्ट दिखाई पड़ने वाले कङ्कन युक्त हाथ से राज समूह नल की कीर्ति रूपी अथाह जल में उसी प्रकार यथाशीघ्र गोता लगा रहे हैं जैसे पृथ्वी के घने जङ्गल में स्पष्ट दिखाई पड़ने वाले शिखरों से पर्वत॥२०॥

टिप्पणी- भाव यह है कि नल के गुण-वर्णन को सुनकर राज समूह ने स्वीकारोक्ति में अपने हाथ को ऊपर उठा लिया। लोक में भी किसी बात की स्वीकारोक्ति हाथ को ऊपर करके की जाती है। कवि की कल्पना है कि राजसमूह अपने हाथ को ऊपर उठाकर नल की कीर्ति की गहराई नाप रहे हैं। जैसा कि लोक में भी जल की गहराई नापने का इच्छुक व्यक्ति अपने हाथ को ऊपर उठाकर जल में गोता लगाता है। अतः नल की कीर्ति रूपी जल की गहराई नापने वाले राजसमूह का हाथ कैसा लग रहा है? तो कवि की कल्पना है कि जैसे घने वन के मध्य अर्थात् वन (जङ्गल) से ढके पर्वत की केवल शिखर श्रेणी ही स्पष्ट दिखाई देती है उसी प्रकार इस राज समूह का ऊपर उठा हुआ कङ्कन युक्त हाथ ही दिखाई दे रहा है।

‘नव्यः नलः’— यहाँ इसका भाव यह है कि एक तो विश्वकर्मा का पुत्र नल नामक प्रमुख वानर था जिसने नलसेतु नामक एक पत्थरों का पुल बनाया था, जिसके उपर से होकर सैन्य सहित मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने लंका में प्रवेश किया दूसरा, एक प्रकार का नरकुल अर्थात् घास विशेष जिसकी चटाई बनाई जाती है। उक्त दोनों से भिन्न कुबेर के पुत्र का भी नाम नल था, जो कुबड़ा (कुब्ज) था। किन्तु दमयन्ती-स्वयंवर में उपस्थित नल उक्त तीनों से भिन्न निषधदेश के राजा थे। इसीलिए कवि ने उक्त स्थल में निषधाधिपति नल को बोध कराने के लिए ही ‘य इह ननु नव्यः किल नलः’ प्रयोग किया है।

‘वने’— ‘वनम्’ का अर्थ जल और जङ्गल दोनों होता है। नल पक्ष में ‘घने वने’ का अभिप्राय नल की कीर्ति रूपी अथाह जल से है और पर्वत पक्ष में ‘घने वने’ का अभिप्राय सघन जङ्गल से है।

‘पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्’ इत्यमरः। ‘अटवी काटिकाऽरण्यं विपिनं काननं वनम्’ इति वैजयन्ती।

नलः- (सर्वाङ्गीणमालोक्यात्मगतम्)

नयननलिनपेयं श्वेतिमानं वहन्ती

श्रियमिह वदनेन्दौ दन्तपत्रे विदन्ती।

यदयमथ दधानः कालिमानं विधत्ते

कुटिलचिकुरभारस्तत् तु कौतूहलं नः॥२१॥

दमयन्ती- (सप्रमोदमात्मगतम्) (१) हियय! मुंच कापेयं। भोदु
दमयंतीयाए सहलं मणुयलोयावयरणं।

नलः- (सभयमात्मगतम्) कथमियं चिरयति? किं विस्मृतवती
स्वयमारामदत्तं सङ्केतम्? उताहो स भगवान् विधिरकाण्डे निषधाधिपती
कोपमुपगतवान्।

वसुदत्तः- (उच्चैःस्वरम्)

नल- (भली भाँति देख करके के अपने मन में)

यहाँ, कमल रूपी नेत्र से पीने योग्य श्वेतिमा (गौरपन) को धारण करती हुई,
चन्द्र रूपी मुखमण्डल पर एक विशेष प्रकार के कर्णाभूषण की शोभा को प्राप्त करती
हुई तथा अत्यन्त काले घुँघराले केश समूह को धारण करने वाली यह दमयन्ती तो
हमारी उत्कण्ठा को और भी बढ़ा रही है॥२१॥

दमयन्ती- (भयभीत की तरह अपने मन में) हृदय! वानर स्वभाव को छोड़ो!
(जिससे) दमयन्ती का मनुष्य जाति में जन्म लेना सफल हो।

नल- (डरता हुआ सा मन ही मन) यह क्यों देर कर रही हैं? क्या स्वयं उद्यान
में दी गई अपनी सहमति को भूल गईं? अथवा वह भगवान् विधाता (ब्रह्मा) सहसा
निषधाधिपति नल पर कुपित हो गये हैं।

वसुदत्त- (उच्च स्वर से)

हे, विकसित कमल दल के सदृश बरौनी (की समृद्धि से युक्त) नेत्रों वाली,
दमयन्ति! अपने मनोरथ के अनुरूप पृथ्वी-पालक नल को प्राप्त करके तुम प्रीति पूर्वक

(१) हृदय! मुञ्च कापेयम्। भवतु दमयन्त्याः सफलं मनुजलोकावतरणम्।

उन्मीलद्दलशतपत्रपत्रलाक्षि ! क्षमापालं नलमधिगम्य कामरूपम्।
सप्रीतिस्मरतनुगोचराणि तूर्ण लोकानां सफल्य नेत्रकौतुकानि।। २२।।

कपिञ्जला- (१) देवि! किं अज्ज वि विलंबीयदि?

दमयन्ती- (स्मित्वा) (२) कपिञ्जले! जं तुमं भणसि तं करोमि।
(वरमालामादाय नलस्य कण्ठे विन्यस्यति)

सर्वे- (सहर्षमुच्चैःस्वरम्) अहो! सुवृत्तं सुवृत्तम्।

नलः- (सहर्षरोमाञ्चमात्मगतम्)

अद्याभूद् भगवान् विरञ्चिरुचितव्यासङ्गनिष्णातधी-
दैवस्याद्य मनोभवस्य फलवान् कोदण्डयोग्यकुमः।
चन्द्रोद्यानवसन्तदक्षिणमरुन्माल्यादिकस्याभवत्
कामोत्सेधविधायिनोऽद्य सफलो भूगोलचारश्चिरात्।। २३।।

कामदेव के शरीर को देखने की लोगों के नेत्रों की (जो) उत्कण्ठा (है, उसको) शीघ्र सफल (पूरा) करो।। २२।।

कपिञ्जला- देवि दमयन्ति! अब क्यों विलम्ब कर रही हो?

दमयन्ती- (मुसकुरा करके) कपिञ्जले! जो तुम कह रही हो वही करती हूँ
(वरमाला देकर नल के गले में पहना देती है)।

सभी- (हर्ष के साथ उच्च स्वर से) अहा, सुन्दर वृत्तान्त सम्पन्न हो गया।

नल- (हर्ष से रोमाञ्चित होता हुआ मन ही मन)—

आज भगवान् ब्रह्मा की बुद्धि उचित संयोग (मिलन) कराने में पूर्णता को प्राप्त हो गई। कामदेव का, धनुष धारण करने का उपयुक्त, श्रम (क्लान्ति) भी आज फलीभूत हो गया। तथा कामदेव के घर का निर्माण (काम को बढ़ाने का कार्य) करने वाले चन्द्रमा, उद्यान, वसन्त ऋतु, दक्षिण दिशा से चलने वाली वायु, गजरादिकों का चिरकाल से इस लोक में भ्रमण करना भी आज सफल हो गया।। २३।।

(१) देवि! किमद्यापि विलम्ब्यते?

(२) कपिञ्जले! यत् त्वं भणसि, तत् करोमि।

टिप्पणी- उत्सेधः— 'उत्सेध काय उन्नतिः' इत्यमरः।

(प्रकाशं जनान्तिकम्) कलहंस! मकरिके! फलितः स एष वां प्रयासः ।

कलहंसः— देव! नावयोः प्रयासः फलितः, किन्तु देवस्य स्वप्नः ।

नलः— समभृदिदानीं स्वप्नार्थप्रत्याशा ।

(नेपथ्ये)

हंहो राजलोकाः! प्रवर्त्यतां कौतुकविधिः, प्रतिरुध्यतां कोलाहलः,
अवधीयतां झल्लरीझात्कारः ।

राजा— (ससम्भ्रमम्) माधवसेन! नीयतां सवरा वत्सा देवी ।

(नलदमयन्त्यौ सपरिकरे माधवसेनेन समं निष्क्रान्ते)

(नेपथ्ये)

बन्दी—

(प्रकट में, वार्तालाप करते हुए त्रिपताक रूप हाथ की मुद्रा से बात करते हुए)
कलहंस! मकरिके! तुम दोनों का, दमयन्ती मिलन के लिए, किया गया प्रयत्न सफल हो गया ।

कलहंस— महाराज! इस कार्य में हम दोनों का प्रयत्न नहीं अपितु महाराज का स्वप्न ही फलीभूत हुआ है ।

नल— अब स्वप्न में देखे नल दमयन्ती मिलन की प्रत्याशा पूर्ण हो गयी ।

(नेपथ्य में)

हे नृपजनप्रभृति! कुतूहल (अर्थात् विवाह से पूर्व वैवाहिक कंगना बाँधने की विधि का विस्तार) करें। शोरगुल न करें, बजाये जाते हुए मजीरा आदि वाद्य यन्त्रों की ध्वनि को ध्यान से सुनें ।

राजा— (घबराहट के साथ) माधवसेन! वर (नल) सहित देवी दमयन्ती को ले चलिए ।

(माधवसेन के साथ नौकर-चाकर सहित नल दमयन्ती सभी पात्र रङ्गमञ्च पर से निकल जाते हैं)

(नेपथ्य में)

बन्दी—

विन्यस्याभिनवोदये श्रियमयं राज्ञि प्रतापोज्जितो
 द्यूतस्य व्यसनीव धूसरकरः सन्नुत्थदाशास्थितिः।
 निद्रायद्दललोचनां कमलिनीं सन्त्यज्य मध्येवनं
 क्रामत्यम्बरखण्डमात्रविभवो देशान्तरं गोपतिः॥२४॥

वसुदत्तः- (विमृश्य सविषादम्) देव! भ्रष्टराज्यस्य स्ववधूं परित्यज्य
 वरस्य देशान्तरगमनमावेदयति सन्ध्यासमयवर्णनव्याजेन मागधः।

राजा- शान्तं शान्तं स्वस्ति स्तात्। प्रतिहतजगत्त्रयदुरिततान्तिः
 सकलदेवताधिचक्रवर्ती देवः श्रीशान्तिः शिवतातिरस्तु वधुवरस्य।

अमात्यः- कृतमनिष्टशङ्कया। एहि विवाहकृत्यानि चिन्तयितुं व्रजामः।
 (इति निष्कान्ताः सर्वे)

॥चतुर्थोऽङ्कः॥

जुआ रूपी रोग से ग्रस्त क्षीण आशा वाले जुआरी की तरह (सूर्य पक्ष में) मलिन किरणों वाले (राज पक्ष में दूषित हाथ वाला) अपने प्रताप (राज पक्ष में कोष, दण्ड, तेज) को त्यागकर नवीन अभ्युदय को प्राप्त करने वाले इस राजा (सूर्य पक्ष में—चन्द्रमा, (राजपक्ष में कूबर) में लक्ष्मी (सूर्य पक्ष में— शोभा, राज पक्ष में— राज्यश्री) को स्थापित कर अर्थात् सौंप करके (सूर्य पक्ष में) संकुचित पत्र रूपी नेत्रों वाली कमलिनी (कमल वृक्ष) (राज पक्ष में— गाढ़ निद्रा वाली दमयन्ती) को जल के मध्य (राजपक्ष में— वन के मध्य) छोड़कर के आकाश का एक खण्ड (पश्चिम दिशा) ही धन है जिसका ऐसे भगवान् सूर्य (राज पक्ष में— राजा) अस्ताचल (राजपक्ष में— दूसरे देश) को जा रहे हैं॥२४॥

वसुदत्त- (विचार कर खेद के साथ) महाराज! बन्दीजन सन्ध्या समय के वर्णन के बहाने से राज्य के भ्रष्ट (नष्ट) होने का और अपनी वधू (दमयन्ती) को त्याग करके वर (नल) के अन्य देश-गमन की सूचना दे रहा है।

राजा- अमङ्गल का नाश होवे, कल्याण होवे। तीनों लोक के कष्ट को दूर करने वाले समस्त देवों में देवाधिदेव भगवान् शङ्कर शान्ति करें, वर-वधू का कल्याण करें।

अमात्य- अनिष्ट की आशंका न की जाय। आर्ये हमलोग विवाह रूपी मंगल कार्य की मन्त्रणा के लिए चलें।

(यह कहकर रङ्गमञ्च पर से सभी चले जाते हैं)

॥चतुर्थ अङ्क समाप्त॥

पञ्चमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति कलहंसः)

कलहंसः— (सविषादम्) अहो! विकटस्य संसारनाटकस्य परस्परविरुद्धरससमावेशवैरस्यम्! शृङ्गाराद्भुतरसनस्यन्दसुन्दरः क्व नाम स स्वयंवरविवाहमहोत्सवाङ्ग्वरः, क्व चैष परमकरुणरस-प्रावीण्य-प्रणयपिच्छिलो दुरोदरप्रवर्तितो दमयन्तीमात्रपरिकरस्य देवस्य निषधाधिपतेः प्रवासवैशसोपप्लवः! अहह! किमिदमनार्योचितं कर्म समाचरित-मिन्दुकुलकृतावतारेणापि देवेन! अपि खलु पामरप्रकृतयोऽपि दुरोदरकर्मणो दुर्विपाकमाकलयन्ति, किं पुनः सर्वकर्मिणबद्धिर्देवो निषधाधिपतिः। यदि वा—

कृत्याकृत्यविदोऽपि धर्ममनसोऽप्यन्यायतो बिभ्यतो-
ऽप्यश्लाघ्यं पुरुषस्य देववशतस्तत् किञ्चिदुज्जृम्भते।

(पश्चात् कलहंस रङ्गमञ्च पर प्रवेश करता है)

कलहंस— (खेद के साथ) आह, परस्पर विरोधी रसों के समावेश से नीरसता को उत्पन्न करने वाला संसाररूपी नाटक बड़ा ही भयानक है। कहाँ तो शृङ्गार और अद्भुत रस को बहाने वाले सुन्दर स्वयंवर-विवाह-महोत्सव का विस्तार? और कहाँ (जूआरी के) अनुरोध पर (घूत-क्रीड़ा में प्रवृत्त होने पर जूआरी कूबर द्वारा) चतुराई से फिसलने वाले पासे से अपहृत कर लिये गये (राज्य वाले) परिजन के रूप में मात्र दमयन्ती के (साथ) निषधाधिपति नल की अत्यन्त कारुणिक प्रवास जन्य कष्टदायक विपत्ति? खेद है कि, चन्द्रवंश में जन्म लेकर भी महाराज नल ने सज्जनों से निन्दनीय इस घूत-क्रीड़ा का आचरण क्यों किया? जबकि, नीच प्रकृति वाले भी पासे के खेल को दुष्परिणाम का जनक मानते हैं, तो फिर सभी कार्यों को करने में निष्णात बुद्धि वाले महाराज निषधाधिपति नल के विषय में क्या कहना।

अथवा—

कर्तव्याकर्तव्य को जानने वाले, धार्मिक प्रवृत्ति वाले, अन्याय (अधर्म) से डरने वाले पुरुष का (पूर्वजन्म में किया गया) थोड़ा सा (कुकर्म अपना) निन्दनीय (फल) देने के लिए दैवसंयोग से ही आविर्भूत होता है। जिससे अनुचर वर्ग (तथा) पारिवारिक

माहात्म्यं विभवः कला गुणगणः कीर्तिः कुलं विक्रमः
सर्वाण्येकपदेऽपि येन परितो भ्रश्यन्ति मूलादपि।।१।।

न चैतदनात्मनीनमेव कर्म समाचरितं देवेन, किमुतासर्वजनीनम्। न नाम सैहिकेयोपरागे सवितैव केवलं क्लाम्यति, किन्तु तदधीनाशेषव्यवहारविशेषमखिलमपि काश्यपीवलयम्। किं नु पुरोहितप्रभृतिपौरलोकः शोकाकुलो 'द्यूतकर्मनिवारणाय प्रवृत्तः सकलराज्यदमयन्तीपणेन दीव्यता देवन समावधीरितस्तदपि न सतां चेतश्चमत्कारकारि। यतः-

तावन्मतिः स्फुरति नीतिपथाध्वनीना
तावत् परोक्तमपि पथ्यतया विभाति।
यावत् पुराकृतमकर्म न सर्वपर्व-
प्रत्यूहकारि परिपाकमुपैति जन्तोः।।२।।

आवास (के साथ-साथ पुरुष का) उत्कृष्ट पद, सम्पत्ति, मेधाविता, धर्म, यश, शौर्य आदि सभी एक ही क्षण में सर्वत्र जड़-मूल से विनष्ट हो जाते हैं।।१।।

निःस्वार्थी (जो अपने ही लाभ के लिए कार्य करने का अभ्यस्त न हो) महाराज नल ने क्या अपने आश्रित जन को कष्ट नहीं पहुँचाया है? क्योंकि, राहु से ग्रस्त होने पर वह (राहु) केवल सूर्य को ही कष्ट नहीं देता है, अपितु सूर्य के आश्रित होने वाले समस्त प्रकार के कर्मों को करने वाले भूलोक-वासियों को भी वह कष्ट पहुँचाता है। शोकाकुल पुरोहितप्रभृति नगर वासियों के, नल को द्यूत-क्रीड़ा से रोकने के लिए प्रवृत्त होने पर भी, फिर भी सज्जनों के हृदय में आश्चर्य को उत्पन्न करने वाले सम्पूर्ण राज्य और दमयन्ती रूपी दाँव वाले पासा से जूआ खेलते हुए महाराज ने क्या (इन लोगों को) कष्ट नहीं पहुँचाया? अर्थात् निश्चित रूप से कष्ट पहुँचाया क्योंकि—

नीति के मार्ग पर चलने वाली बुद्धि तभी तक चमकती (रहती) है और दूसरे का कहा गया कल्याणकारी वचन दवाई की तरह तबतक शोभित होता है, जबतक कि सभी कार्यों में विघ्न पहुँचाने वाला पूर्वजन्म का कुकर्म परिपक्व होकर मनुष्य को फल देने के लिए उपस्थित नहीं हो जाता।।२।।

टिप्पणी- 'काश्यपी' — "धराधरित्री धरणी क्षोणी ज्या काश्यपी क्षितिः।" इत्यमरः।

१. क. घतनि.

अपि च-

स्फुरन्त्युपायाः शान्त्यर्थमनुकूले विधातरि।

प्रतिकूले पुनर्यान्ति तेऽप्युपाया अपायताम्।।३।।

सर्वथा विधिरेवात्र कर्मण्यलङ्करीणतामगमत्। अथवा दुरोदरचातुरी-
विन्निषधाधिपतिं विजेतुं कथमलम्भूष्णुरेष कूबरः? खलु कृत्वाऽतीतशोचनम्।
क एकः किल विधिविलसितविपाको मीमांस्यते। श्रुतं च मया यथा
खरमुख-मकरिके अपि पुरीपरिसरारामवर्तिनो दमयन्तीसचिवस्य
देवस्यान्तिकमधितिष्ठतः तदहमपि गच्छामि। (इति परिक्रामति। विलोक्य)
किमयं देवः क्षोणीपत्यपथ्यपथिकने-पथ्यपङ्किलस्तिलकतरुतले
निविष्टस्तिष्ठति? (सास्त्रम्) कथमहमेतस्य दुरवस्थापातिनः स्वामिनः
स्वमास्यं दर्शयामि? तदित एव स्थानात् प्रतिनिवर्ते। यदि वा प्रवसन्तं
स्वामिनमालप्य पावकप्रवेशेन निरन्तरभक्तिसमुचितमाचरामि।

और भी—

विधाता के अनुकूल होने पर सभी प्रकार का प्रयत्न (कार्य का आरम्भ)
कल्याणकारी ही होता है, किन्तु विधाता के विपरीत हो जाने पर, तो वही प्रयत्न
अमङ्गल का जनक हो जाता है।।३।।

हर प्रकार से विधाता ने ही इस घूत-क्रीड़ा में इस भयानक स्थिति को प्राप्त
कराया है। अन्यथा जुआ में पासे की चतुराई को जानने वाले निषधाधिपति नल को
जीतने में वह कूबर समर्थ कैसे हो गया? व्यतीत बातों का चिन्तन करके ही क्या।
निश्चय ही कोई अकेले भाग्य से उद्भावित पूर्वजन्म या इस जन्म के कर्म-फल की
मीमांसा (गहन विचार) नहीं कर सकता है और जैसा कि मैंने सुना है कि खरमुख
और मकरिका दोनों नगर के समीपवर्ती उद्यान में स्थित दमयन्ती के सहचर महाराज
नल के समीप ठहरे हुये हैं। तो मैं भी वहीं चलता हूँ (ऐसा कहकर परिक्रमा करता
है। देखकर के) क्या ये पृथ्वी पालक महाराज नल हैं, जो कुमार्गगामी पथिक की
तरह मलिन-वस्त्र पहिने तिलक वृक्ष के नीचे ठहरे (हुये) हैं। (अश्रुपात करता हुआ)
इस दुर्दशा को प्राप्त करने वाले स्वामी को मैं अपना मुँह कैसे दिखाऊँ। तो इस स्थान
से ही वापस हो जाता हूँ। अथवा उक्त स्थान पर ठहरे हुये स्वामी नल से बात-चीत
करके, अग्नि-प्रवेश के द्वारा, (स्वामी के प्रति) अनन्य श्रद्धा रखने वाला मैं उचित
आचरण करूँ।

(ततः प्रविशति) राजा, दमयन्त्यादिकश्च परिवारः)

राजा- (सावष्टम्भम्) देवि! मा रोदीः प्रशस्तलक्षणा भवती। न खलु ते पतिरभूत्वा भूपतिर्विश्राम्यति। व्यसनोपपातश्चायमनागतायाः सम्पदः पदम्।

उभयाभिमुख्यभाजां सम्पत्त्यर्थं विपत्तयः पुंसां।

ज्वलितानले प्रपातः कनकस्य हि तेजसो वृन्द्यै॥४॥

(दमयन्ती मन्दं मन्दं रोदिति)

विदूषकः- (विलोक्य) (१) भट्टा! कलहंसो पणमदि।

राजा- (सखेदम्) खरमुख! भर्तेति पदमन्यत्र सङ्क्रान्तम्, तदिदानीं नलेत्येवमामन्त्रणपदमर्हामि। प्रणमतीत्यप्यवस्थाविरुद्धमनुच्चारणीयम्। कलहंसः सभायातोऽस्तीत्येवमेव रमणीयम्।

(इसके बाद दमयन्ती आदि परिवार और राजा नल प्रवेश करता है)

राजा- (दृढ़ता के साथ) देवि! विलाप मत करो, तुम (तो) विशिष्टशुभ का सूचक हो। निश्चय ही तुम्हारा पति हुये बिना भूपति हुए विश्राम नहीं करता है। पराजय और मुसीबत (अप्रत्याशित घटना) यह आने वाली समृद्धि का चिह्न है।

दोनों (सुख और दुःख) के उपस्थित होने पर (उसका) भोग करने वाले पुरुषों की विपत्तियाँ (उनकी) समृद्धि के लिए ही होती हैं। क्योंकि प्रज्वलित अग्नि में स्वर्ण का गिरना (उसकी) दीप्तिवर्धन के लिए ही होता है॥४॥

(दमयन्ती मन्द स्वर में विपाल करती है)

विदूषक- (देखकर) स्वामि! कलहंस प्रणाम करता है।

राजा- (खेद के साथ) खरमुख! 'भर्ता' पद (तो) अन्यत्र चला गया, अतः अब नल इस नाम से ही सम्बोधित करने के योग्य रह गया हूँ। 'प्रणाम करता है', यह भी (मेरी) स्थिति के विपरीत उच्चारण कर रहे हो। कलहंस आये हुये हैं, यही 'वाक्य' सुन्दर है।

(१) भर्तः! कलहंसः प्रणमति।

१. क सावक्षेपं।

(कलहंसः प्रणम्य सास्त्रमधोमुखस्तिष्ठति)

राजा- (कलहंसं प्रति)

मा विषीद कृतं वाष्यैः फलं मर्षय कर्मणाम्।

सत्यं विषाद-शोकाम्यां न दैवं परिवर्तते।।५।।

कलहंसः- (बाष्पमवधूय) देव! सुमहान् मानभङ्गः कृतः कूबरेण।

राजा- (साक्षेपम्) न कूबरेण कृतः किन्तु वेधसा।

अहंयूनामहङ्कारं वारिदानां समुन्नतिम्।

विना विधिमृते खातं हन्तुं को नाम कर्मठः?।।६।।

कलहंसः- (प्रणम्य) अनुयानाय मामनुजानातु देवो विदूषकमपि।

राजा- देवीमपि मुमुक्षुरहं परमियमबलाऽऽग्रहेण मामनुगच्छति।

अपि च सर्वस्वपणेन मां कूबरो जितवान्। ततः पथि पथिकवृत्तैव

(कलहंस प्रणाम करके, अश्रुपात पूर्वक अधोमुख हो जाता है)

राजा- (कलहंस से)

शोक मत करो, रुदन बन्द करो और कर्म से उत्पन्न फल को सहन करो (भोगो)।
क्योंकि शोक और रुदन के द्वारा भाग्य को नहीं परिवर्तित किया जा सकता है।।५।।

कलहंस- (अश्रु पोंछ करके) महाराज! कूबर ने बहुत बड़ा अपमान किया है।

राजा- (आक्षेप के साथ) कूबर ने नहीं, अपितु विधाता ने किया।

अहंकारियों के अहंकार को विधाता के बिना (और जल बरसाने वाले) मेघों
की वृद्धि को वायु के विना नष्ट करने में कौन समर्थ हो सकता है।।६।।

कलहंस- (प्रणाम करके) महाराज! अपने पीछे चलने के लिए मुझे आज्ञा दें
और विदूषक (खरमुख) को भी।

राजा- मैं तो देवी दमयन्ती को भी छोड़ना चाहता हूँ, परन्तु यह अबला अपनी
दृढ़ भक्ति के कारण मेरे पीछे चल रही है। और भी, कूबर ने (घूत-क्रीड़ा में) पासे
से मेरी सारी सम्पत्ति जीत ली है। इसलिए मार्ग में पथिक (बटोही) के आचरण के

टिप्पणी- 'अहंयु'— 'अहंकारवानहंयुः' इत्यमरः।

गन्तुमुचितम्। तदनुजानीतास्मान् देशान्तरगमनाय। श्लथयत स्नेहबन्धम्। कुरुत निर्दयं हृदयम्। न क्षमामहे राज्यभ्रंशधूसरं परिचितपीराणामास्यं दर्शयितुम्। ब्रजामः कामप्येकां दिशाम्। (अग्रतः कृत्वा) देवि! दुर्विषह-वातशीतातपक्लेशकारीणि प्रान्तराणि। राज्यभ्रंशेन विगतपरिच्छंदवाहना वयम्। न शक्यति भवती क्रमितुमशिक्षितपादचारा करालव्यालशैलसङ्कटासु वनभूमिषु। तद् विधेहि मे वचनमवलम्बस्व दीर्घदर्शितामिहैव कूबरान्तिके तिष्ठ पितृगृहं वा ब्रज। (सर्वे तारस्वरं रुदन्ति) किमेतेन प्राकृतप्रकृतिसब्रह्मचारिणा चेष्टितेन? ननु धैर्यमवलम्ब्य समयोचितमाचरत।

दमयन्ती-(१) अज्जउत्त! अहं इध ज्जेव चिट्ठिस्सं। पाणा उण अज्जउत्तेण समं आगमिस्संति।

कलहंसः- (प्रणम्य) अनुव्रजतु देवी देवम्।

राजा- अनुव्रजतु नम परं परमक्लेशमनुभविष्यति।

अनुरूप ही चलना उचित है। अतः अन्य-स्थान को जाने के लिए मुझे आज्ञा दें। प्रेम का बन्धन शिथिल करें। हृदय को कठोर बना लें। राज्य के नाश से मलिन (मुख वाला) मैं परिचित नगरवासियों को (अपना) मुख दिखाने में समर्थ नहीं हूँ। (सम्मुख होकर) देवि! कष्ट से सहन करने योग्य हवा, ठण्ड, गर्मी आदि से कष्ट कारक (यह) लम्बा और सुनसान मार्ग है। राज्य के नाश हो जाने से नौकर-चाकर, वाहनादि से रहित हम हैं। पैदल चलने में अपटु तुम इस भयंकर हिंसक जीव-जन्तुओं, पर्वतों से अगम्य वन की भूमि में चलने में समर्थ नहीं हो। इसलिए मेरी बात मानो, दूरदर्शिता का अवलम्बन करके यहीं(निषधनगरी में ही) कूबर के समीप ठहर जाओ अथवा पिता की नगरी विदर्भदेश चली जाओ। (सभी उच्चस्वर से रोने लगते हैं) सुख-दुःख में समान रहने वाले स्वाभाविक रूप से सहानुभूति रखने वाले (आप लोगों का) यह व्यवहार क्यों। (आप लोग) धैर्य धारण कर परिस्थिति के अनुकूल आचरण करें।

दमयन्ती- आर्यपुत्र! मैं यही ठहरूँगी। किन्तु प्राण तो आर्यपुत्र के साथ ही जायेंगे (अर्थात् मेरा मृत शरीर ही यहाँ रहेगा प्राण तो आप के साथ ही निकल जायेगा)।

कलहंस- (प्रणाम करके) देवि! महाराज का अनुगमन करें।

राजा- (अच्छा) अनुगमन करें (ठीक है), परन्तु बहुत अधिक कष्टानुभूति होगी।

(१) आर्यपुत्र! अहमिहैव स्थास्यामि। प्राणाः पुनरार्यपुत्रेण सममागमिष्यन्ति।

दमयन्ती-(१) जं भोदि तं भोदु, अहं दाव आगमिस्सं।

राजा- कलहंस! मर्षयितव्यं यदस्माभिः प्रभवान्धैः किमप्यपरान्धम्।
वयस्य खरमुख! सर्वदा क्रीडासचिवोऽसि नः ततस्त्वयाऽस्माकमुपहासादिकं
सोढव्यम्। मकरिके! त्वदीयस्य दमयन्तीघटनाप्रयासस्य तदीदृशमवसानमभूत्।

दमयन्ती- (२) पियसहि मयरिए! कुण्डिणं गडूय अंबाए तादस्स स
एस पवासवुत्ततो विन्नवेयव्वो।

मकरिका- (शस्त्रम्) (३) भट्टिणि! न सक्केमि अत्तणो मुहं दंसिदुं,
ता कुण्डिणं न गमिस्सं।

दमयन्ती-(४) अज्ज खरमुह! सहि मयरिए! अहं तुज्जेहिं
सुमरिदव्वा (कलहंसं प्रति) महाभाय! अणुजाणाहि मं वणयरिं भविदुं।

दमयन्ती- जो होना है सो होवे, मैं तो आपके साथ ही जाऊँगी।

राजा- कलहंस! प्रभुता के मद में हम (लोगों) ने जो कुछ अपराध किया है
(उसके लिए) क्षमा करें। मित्र खरमुख! (तुम) सदैव हमारे क्रीड़ा-सहचर रहे हो।
इसलिए तुम्हें हमारे द्वारा किये गये उपहासादि को सहन करना चाहिए। मकरिके!
तुम्हारे द्वारा दमयन्ती-मिलन (प्राप्ति) के लिए किये गये प्रयत्न की समाप्ति इस प्रकार
से हुई।

दमयन्ती- प्रिय सखि मकरिके! कुण्डिन (नगरी) जाकर माता और पिता को
हम लोगों के प्रवास की घटना को बता दो।

मकरिका- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) स्वामिनि! (मैं) अपना मुख दिखा नहीं सकती,
इसलिए कुण्डिन (नगरी) नहीं जाऊँगी।

दमयन्ती- आर्य खरमुख! सखि मकरिके। तुम लोग मुझे याद रखना। (कलहंस
के प्रति) श्रीमान्! मुझे वनचरी (वन में चलने वाली) होने की आज्ञा दें।

(१) यद् भवति तद् भवतु, अहं तावदागमिष्यामि।

(२) प्रियसखि मकरिके! कुण्डिनं गत्वाऽम्बायाः तातस्य चैष
प्रवासवृत्तान्तो विज्ञपयितव्यः।

(३) भर्ति! न शक्नोम्यात्मनो मुखं दर्शयितुम्, तत् कुण्डिनं न
गमिष्यामि।

(४) आर्य खरमुख! सखि मकरिके! अहं युष्माभिः स्मर्तव्या। महाभाग!
अनुजानीहि मां वनचरीं भवितुम्।

(सर्वे मन्दं रुदन्ति)

राजा- देवि! अतिकालो भवति। प्रयतस्व देशान्तरगमनाय।

दमयन्ती- (सरभसमुत्थाय) (१) एसम्हि पगुणीभूदा।

राजा- (कलहंसादीन् प्रति) अनुजानीत मां सुकृतं दुष्कृतं वाऽनुभवितुम्।

(सर्वे सास्त्रं प्रणम्य निष्क्रान्ताः)

देवि! कमध्वानमुतिष्ठाभि?

दमयन्ती- (२) विदम्भाणुजाइणं।

राजा- इत इतो देवी।

(उभो परिक्रामतः)

(सभी मन्द स्वर में रोते हैं)

राजा- देवि! बहुत देर हो रही है। अन्य देश को जाने के लिए तैयार हो जाओ।

दमयन्ती- (शीघ्रता से उठकर) यह मैं तैयार हो गयी हूँ।

राजा- (कलहंस, खरमुख और मकरिका से) (आप सभी) मुझे अच्छे या बुरे (सुख या दुःख) का अनुभव करने के लिए आज्ञा दें।

(सभी अश्रुपूर्ण नेत्रों से प्रणाम करके निकल जाते हैं)

देवि ! किस मार्ग का अनुसरण करूँ?

दमयन्ती- विदर्भदेश को जाने वाले।

राजा- इधर से देवी इधर से।

(दोनों परिक्रमा करते हैं)

(१) एषाऽस्मि प्रगुणीभूता।

(२) विदर्भानुयायिनम्।

दमयन्ती- (सास्रं विचिन्त्य) (१) अज्जउत्त! पुव्वचिंतिदं पिच्छ कहं सव्वं पि अन्नहा जायं !

राजा- देवि!

अर्वाग्दृष्टितया लोको यथेच्छं वाञ्छति प्रियम्।

भाग्यापेक्षी विधिर्दत्ते तेन चिन्तितमन्यथा।।७।।

अपि च देवि! मा स्म विषीद सर्वमपि शुभोदकं भविष्यति।

अस्तमयति पुनरुदयति पुनरस्तमुपैति पुनरुदेत्यर्कः।

विपदोऽपि सम्पदोऽपि च सततं न स्थास्नवः प्रायः।।८।।

दमयन्ती- (परिक्रम्य सखेदम्) (२) अज्जउत्त! परिस्संतम्हि ता खणं वीसमिस्सं।

दमयन्ती- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से विचार करके) आर्यपुत्र! देखिये, पहिले की सोची गई सारी बातें किस प्रकार से विपरीत हो गई (अर्थात् सोचा था क्या और हो गया क्या)?

राजा- देवि!

नीचे की दृष्टि (अर्थात् अपने विचार) से (तो) मनुष्य (अपनी) इच्छानुसार अभिलषित वस्तु (सुख) को चाहता है, (किन्तु) भाग्य की अपेक्षा करने वाला विधाता (तो उस) सोची गई (वस्तु) को उससे भिन्न (रूप में) ही देता है।।७।।

और भी देवि! विषाद न करें सब कुछ शुभ फल को देने वाला होगा (अर्थात् सभी का अन्त आनन्ददायक होगा)। (क्योंकि)---

(जिसप्रकार) सूर्य अस्ताचल को जाता है पुनः उदय लेता है, पुनः अस्ताचल को प्राप्त करता है (और) फिर उदित होता है। (उसीप्रकार) प्रायः विपत्ति (दुःख) और सम्पत्ति (सुख) भी निरन्तर स्थायी रहने वाली नहीं है।।८।।

दमयन्ती- (धूमकर के खेद के साथ) आर्यपुत्र! मैं थक गयी हूँ इसलिए क्षणभर आराम करूँगी।

(१) आर्यपुत्र! पूर्वचिन्तितं पश्य कथं सर्वमप्यन्यथा जातम्।

(२) आर्यपुत्र! परिश्रान्तास्मि ततः क्षणं विश्रमिष्यामि।

१. ख. ग. पिच्छमहं।

(राजा सबाप्यं स्वेदाम्भः प्रमृज्य सिचयाञ्चलेन वीजयति)

(निःश्वस्य) (१) अज्जउत्त! कित्तिं अज्ज गंतव्वं?
राजा- यावद् देवि! समाक्रमितुमलम्।

(दमयन्ती सखेदमुत्थाय परिक्रामति)

(स्वगतम्) विनोदयाम्यस्याश्चेतः कान्ताररामणीयकोपवर्णनेन येनेयं
चरणचङ्क्रमणखेदं न वेदयति। (प्रकाशम्) देवि! पश्य पश्य-

एते निर्झरझात्कृतैस्तुमुलितप्रस्थोदराः क्षमाधराः

किञ्चैते फलपुष्पपल्लवभरैर्ध्वस्तातपाः पादपाः।

चक्रोऽप्येष वधुमुखार्द्धदलितैर्वृत्तिं विद्यत्ते बिसैः

कान्तां मन्द्ररुतस्तथैष परितः पारापतो नृत्यति।।१।।

(राजा अश्रुपूर्णनेत्रों से स्वेद बिन्दु को पोंछकर वस्त्र के आँचल से हवा करता है)

(श्वास लेकर) आर्यपुत्र! अब (और) कितनी दूर जाना है?

राजा- जबतक देवी चलने में समर्थ हों।

(दमयन्ती खेद के साथ उठकर घूमती है)

(अपने मन में) मैं वन के सौन्दर्यवर्णन के द्वारा इस (दमयन्ती) का मन बहलाता हूँ, जिससे यह पैदल चलने के कारण उत्पन्न कष्ट का अनुभव न करे। (प्रकट में) देवि! देखो, देखो—

पर्वतीय झरनों के कल-कल शब्द से शब्दायमान कन्दराओं वाले ये पर्वत हैं (और) फल-फूल तथा पत्र समूह के कारण ग्रीष्म के ताप से रहित (छाया वाले) ये वृक्ष समूह हैं। यह चक्रवाक पक्षी अपनी प्रिया चक्रवाकी द्वार आधी चबाई गई कमलनाल को खा रहा है। तथा यह मन्द शब्द करने वाला कबूतर अपनी प्रिया के चारों तरफ धीरे-धीरे नाच रहा है।।१।।

(१) आर्यपुत्र! कियदद्य गन्तव्यम्?

१. ख. ग. यतोयं।

२. क. कांतामंतरुत।

दमयन्ती- (१) अज्जउत्त! सुहावत्थाणमेदे कोदूहलकारिणो,
दुहा'वत्थाणं उण विसेसदो संतावकारिणो।

राजा- सत्यमाह देवी।

सुस्थे हृदि सुधासिक्तं दुःस्थे विषमयं जगत्।

वस्तु रम्यमरम्यं वा मनःसङ्कल्पतस्ततः।।१०।।

दमयन्ती- (२) अज्जउत्त! परिस्समेण तिसिदग्धि।

राजा- देवि! उदन्या १त्वां बाधते। कोऽत्र भोः? अये!
सुरभिशीतलजलकरकमुपनयत (अवलोक्य) कथं न कोऽप्यग्रतः पार्श्वतोऽपि
न कश्चित्?

दमयन्ती- आर्यपुत्र! ये (सभी वस्तुयें) सुखी अवस्था में (तो) उत्कण्ठा की
हेतु हैं, (किन्तु) दुःखी अवस्था में तो (ये सभी वस्तुयें) विशेषरूप से सन्ताप (पीड़ा)
देने वाली (होती) हैं।

राजा- देवी ने यथार्थ ही कहा है। (क्योंकि)---

हृदय के प्रसन्न होने पर, तो (सबकुछ) अमृत से सीचे गये की तरह लगता
है (किन्तु हृदय के) दुःखी होने पर (सारा) संसार (ही) विषमय हो जाता है, इसलिए
(किसी) वस्तु की सुन्दरता या असुन्दरता मन के सुखी और दुःखी होने पर ही निर्भर
करती है।।१०।।

दमयन्ती- आर्यपुत्र! (मार्गजन्य) परिश्रम के कारण (मैं) पानी पीने की इच्छुक
हूँ (अर्थात् मुझे प्यास लगी है)।

राजा- देवि! तुम्हें प्यास सता रही है। कौन है यहाँ? अरे, सुगन्धित शीतल
जल वाला पात्र लाओ (देखकर) न तो कोई सामने है (और) न तो कोई समीप मैं
ही, ऐसा क्यों?

(१) आर्यपुत्र! सुखावस्थानामेते कौतूहलकारिणः, दुःखावस्थानां
पुनर्विशेषतः सन्तापकारिणः।

(२) आर्यपुत्र! परिश्रमेण तृषिताऽस्मि।

१. ख. ग. दुहायत्थाणं। २. क. वां।

दमयन्ती- (सास्त्रम्) (१) अज्जउत्त! किं नेदं?

राजा- (सलज्जम्) देवि! पूर्वसंस्कारो मां विप्लवयति।

(दमयन्ती मन्दं रोदिति)

देवि! अहमिदानीं ते पतिश्च पदातिश्च। तद् यावत् कुतोऽपि शीतमम्भः समानयामि तावत् तिलकतरुतले तिष्ठ। (दमयन्ती तथा करोति)

(परिक्रम्य सखेदाश्चर्यम्)

क्व तद् भ्रूविक्षेपक्षिपितनृपतिक्ष्मापतिपदं

क्व चावस्था सेयं मृगमिथुनलीलायितवती!

न यो वाचः पात्रं भवति न दृशोर्नापि मनस-

स्तमप्यर्थं पुंसां हतविधिरकाण्डे घटयति।।११।।

दमयन्ती- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) आर्यपुत्र! यह क्या (कह रहे हैं)?

राजा- (लज्जा के साथ) देवि! पूर्व का संस्कार मुझे भ्रमित कर रहा है।

(दमयन्ती मन्द स्वर से विलाप करती है)

देवि! इस समय मैं तुम्हारा पति भी हूँ और पैदल (चलने वाला) सिपाही भी। अतः जबतक (मैं) कहीं से शीतलजल लेकर आ नहीं जाता हूँ तब तक (तुम) तिलकवृक्ष के नीचे ठहरो (दमयन्ती वैसा ही करती है)।

(धूमकर खेद और आश्चर्य से)

कहाँ तो कटाक्ष (मात्र) से तिरस्कृत राजाओं की पृथ्वी का स्वामी राजा नल? और कहीं मृगयुगल की (तरह) क्रीड़ा करते हुई यह अवस्था (दशा)?, जो न (तो) वाणी का विषय है, न (तो) देखने के योग्य है और न (तो) मन से ही सोचा जा सकता है, पुरुष के उस विषय को दुर्दैव अकस्मात् घटा (उपस्थित कर) देता है।।११।।

अच्छा, कहीं जल खोजता हूँ। (देखकर शीघ्रतापूर्वक) यह तो तपस्वी का आश्रम जैसा (लगता) है। (अच्छी तरह से देखकर) तो क्या सन्यासी जैसा (यह) उस लम्बोदर

(१) आर्यपुत्र! किं न्वेतत्?

भवतु, विलोकयामि क्वचिदपि पयः। (विलोक्य ससम्भ्रमम्) कथं तापसाश्रम इव? (सम्यगवलोक्य) कथं तापसः सदृशस्तस्य लम्बोदरनाम्नः कापालिनः। यदि वा नासौ सः। अयं खलु कुब्जः खञ्जश्च।

(ततः प्रविशति तापसः)

तापसः— निर्विण्णोऽस्मि मार्गविलोकनेन। परमद्यापि न स दुरात्मा समायाति। अवश्यानुष्ठेयश्च गुरोरादेशः। तदितः सरःसेतौ स्थित्वा प्रतिपालयामि। (साशङ्कम्) ध्रुवमसौ मामुपलक्षयेत्। भवतु, वेषान्तरेण सञ्चरे। (विलोक्य) कथं प्राप्तः पापीनायथ? सा दुर्विनीता क्व?। भवतु पुरो ज्ञास्यामि। (अभिमुखमुपसृत्य) स्वागतमतिथये।

राजा— नमो मुनये।

तापसः— भद्राणि पश्य। (अपवार्य विपरीतलक्षणया) महाभाग! वपुर्लक्षणविसंवादिनी ते दशा। तत् कथय कोऽसि? कथं दुःस्थावस्थः?

राजा— (सब्रीडम्) मुने! भूपतिचरोऽस्मि।

नामक कापालिक का (अनुचर है)। नहीं, यह वह नहीं है। यह तो कुबड़ा और लंगड़ा है।

(उसके बाद तपस्वी प्रवेश करता है)

तापस— मार्ग देखते-देखते खिन्न हो गया हूँ। परन्तु वह दुष्टात्मा अभी तक नहीं आया है। और गुरु की आज्ञा का पालन भी करना ही है। अतः यहाँ सरोवर के तट पर स्थित होकर (उसकी) प्रतीक्षा करता हूँ। (आशङ्का के साथ) यह निश्चय ही मुझे देख रहा है। अच्छा, वेश बदलकर जाऊँगा। (देखकर) यह पापी तो किसी प्रकार मिल गया पर वह दुराचारिणी कहाँ है? अच्छा बाद में समझूँगा। (सामने पास जाकर) अभ्यागत का स्वागत है।

राजा— मुनि को प्रणाम करता हूँ।

तापस— कल्याण होवे (अपवारित में विपरीत मुद्रा से) श्रीमान्! शरीर की आकृति से तो आपकी विरोधात्मक स्थिति (अवस्था) सूचित होती है। अतः कहिये (कि आप) कौन हैं? इस दुर्दशा को कैसे प्राप्त हुए?

राजा— (लज्जा के साथ) मुने! पहले मैं राजा था।

१. ख. ग. कपा.। २. क. अथवा।

तापसः- (सादरमिव) तर्हि सुतरामतिथयः स्थ। तदावेदय किमातिथेयमनुतिष्ठामि?

राजा- बहुदुश्चानस्तपस्विनस्तत् कथयत विदर्भपथाभिज्ञानानि। एतदेव नः साम्प्रतमातिथेयम्।

तापसः- किं तत्र वः?

राजा- श्वशुरकुलं तत्र नः।

तापसः- तत्र वः सधर्मचारिणी?

राजा- अत्र नः सधर्मचारिणी।

तापसः- (सविचिकित्समिव) स्त्रीसङ्गनिगडितो भवान् नार्हः कामचारस्य। अपि च राज्यभ्रंशः स्त्रीसङ्गश्चेति महती व्यसनपरम्परा।

राजा- (स्वगतम्) सत्यमाह तापसः भुजमात्रपरिच्छदैर्यत्रैव तत्रैव यथैव तथैव स्वैरमास्यते। स्त्रीबद्धानां कुतः कामचारः?

तापस- (सम्मान करते हुए की तरह) तब तो (आप) श्रेष्ठ अभ्यागत हैं। इसलिए कहिये आपका क्या आतिथ्य सत्कार करूँ?

राजा- तपस्वीजन बहुत अधिक जानने वाले होते हैं, अतः विदर्भदेश को जाने वाला मार्ग बताइये। इस समय हमारे लिए आपका यही आतिथ्यसत्कार है।

तापस- वहाँ आपका क्या है?

राजा- वह हमारे श्वशुर का घर है।

तापस- तो, वहाँ आपकी पत्नी है?

राजा- हमारी पत्नी यहीं है।

तापस- (आश्चर्यचकित हुये की तरह) स्त्री का साथ होने के कारण आप इच्छानुसार चलने के योग्य नहीं है। और भी, राज्य के नाश हो जाने पर स्त्री का साथ में रहना तो और भी बड़ी विपत्ति है।

राजा- (अपने मन में) तपस्वी ने बिलकुल ठीक कहा। हाथ मात्र ही परिजन है जिसका ऐसा व्यक्ति तो जहाँ तहाँ जैसे-तैसे अपनी इच्छानुसार (गमन कर सकता) है। पर स्त्री के साथ में रहने पर स्वेच्छाधारी होना कहाँ से (सम्भव हो सकता है)?

तापसः— अनुचितं गृहस्थकृत्यचिन्तनं तपस्विनः। तथापि साप्तपदीनसौहार्दोप'हृतहृदयो महाभागं किमप्यनुशास्मि।

राजा— अनुगृहणातु महात्मा।

तापसः— भ्रष्टराज्यस्य भवतः श्वशुरकुलगमनमपत्रपावहं मे त्रपाकारि प्रतिभाति। त्वमप्यधिमनसमालोचय यद्ययमर्थः समर्थः प्रदर्शयितुमौचितीम्।

राजा— (स्वगतम्) इदमप्यस्य वचनं तथ्यं पथ्यं च। तदानीं स्वयंवरं तथा चमूचक्रेण गत्वा पुनरिदानीं दमयन्तीमात्रपरिच्छदः कुण्डिनं प्रविशंस्तत्रत्यपौरजनानामपि हास्यपात्रं भविष्यामि। तदियमेवैका देवी ज्ञातविदर्भपथाभिज्ञाना कुण्डिनमुपसर्पतु। (प्रकाशम्) भगवन्! सौहृद-सदृशमनुशिष्टवानसि।

तापस— गृहस्थ के अनुरूप तपस्वीजन के लिए चिन्तन करना उचित नहीं है। फिर भी साप्तपदीन मैत्री से आकृष्ट हृदय वाल मैं श्रीमान् को कुछ कहना चाहूँगा।

राजा— महात्मन्! कहने की कृपा करें।

तापस— नष्ट-राज्य वाले आपका श्वशुरकुल जाना निर्लज्जता को प्राप्त कराने वाला है (अतः ऐसे आपका वहाँ जाना) मुझे लज्जाकर प्रतीत होता है। आप भी (अपने) मन में भलीभाँति विचार कर लें कि मेरी यह वाणी औचित्य का प्रतिपादन करने में समर्थ है या नहीं।

राजा— (अपने मन में) इसका यह वचन भी यथार्थ और स्वीकार करने योग्य है। उस समय स्वयंवर में उस प्रकार से सेना-समूह के द्वारा जाकर पुनः इस समय दमयन्ती मात्र परिजन के रूप में कुण्डिन नगरी में प्रवेश करता हुआ मैं वहाँ के नगरवासियों के द्वारा उपहास का पात्र ही होऊँगा। इसलिए विदर्भदेश के मार्ग को जानने वाली यह दमयन्ती अकेली ही कुण्डिन नगरी जाय। (प्रकट में) भगवन्! मित्र सदृश उपदेश आपने दिया है।

तापस— (हर्ष के साथ मन ही मन) गुरु के एक आदेश का तो पालन हो गया। परन्तु दूसरे आदेश का पालन करने के लिए यहीं ठहरता हूँ। (ऊपर की ओर देखकर प्रकट में भय के साथ) भगवान् सूर्य ललाट को तपा रहे हैं अतः (मध्याह्नकालिक) सन्ध्या-वन्दन का समय हो गया है। श्रीमान्! मुझे मध्याह्नकालिक सन्ध्या-वन्दन करने

१. ख ग. ०पद्रुत। २ क. शसितास्मि। ३ ख. ग. ०मर्थः प्रवहितुः।

तापसः- (सहर्षमात्मगतम्) अनुष्ठितस्तावदेको गुरोरादेशः। परमितो द्वितीयमनुतिष्ठामि। (ऊर्ध्वमवलोक्य प्रकाशं सभयम्) कथं ललाटन्तपस्तपनः? अतो वर्तते सन्ध्याविधिः। महाभाग! अनुजानीहि मां मध्याह्नसन्ध्यासेवनाय। अयं चोत्तरेण पर्वतमकुटिलः कुण्डिनस्य पन्थाः (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

राजा- अस्मात् सरसः कमलदलपुटकैः सलिलमाहरामि, स्वयं च पिबामि (सखेदम्) धिग् मां व्यसनोपपातविस्मृतौचित्याचरणम्। अनुपशान्तपिपासायां देव्यां कथमहं पयस्यामि? भवतु, जलमादाय तत्र गच्छामि। (तथा कृत्वा परिक्रम्य) कथमियं मयाऽपहातव्या। आः! ज्ञातम्, निद्रायितां सन्त्यज्य ब्रजामि। (विलोक्य) इयं देवी, देवि! इदं वारि उपस्पृशतु देवी। (दमयन्ती उपस्पृशति) देवि! अयं ते विदर्भेषु ब्रजन्याः (पुनः सशङ्कम्) अयं विदर्भेषु गच्छतामध्वनीनामकुटिलः पन्थाः।

दमयन्ती- (सभयमात्मगतम्) (१) हा! हदम्हि मंदभाङ्गी। किं मं परिच्चइदुकामो अज्जउत्तो, जं एवं जंपेदि? अहवा पडिहदममंगलं। एयं खु पिवासाखिन्नकंठस्स अज्जउत्तस्स वयणखलितं।

के लिए आज्ञा दें। यह उत्तर दिशा में कुण्डिन नगरी का सुगम मार्ग है (यह कह कर रङ्गमञ्च पर से चला जाता है)।

राजा- इस तालाब से कमल पत्र के दोने में जल लाता हूँ, और स्वयंपान करूँगा (खेद के साथ) मुझको धिक्कार है कि व्यसन से प्राप्त विपत्ति के कारण मैं उचित का आचरण करना भी भूल रहा हूँ। प्यासी देवी दमयन्ती की पिपासा शान्त किये बिना मैं कैसे जल पियूँगा? अच्छा, जल लेकर देवी दमयन्ती के पास जाता हूँ। (वैसा करके घूमकर) यह हमसे दूर क्यों हो गयी? ओह!, जान गया, निद्रा अवस्था में छोड़कर मैं गया हूँ। (देखकर) यह देवी है, देवि! यह जल है, देवी स्पर्श आचमन या कुल्ला) करें। (दमयन्ती आचमन करती है) देवि! यह तुम्हारे विदर्भदेश को जाने वाली (पुनः सशक्त होकर) यह विदर्भदेश को जाने वाले पथिकों का सुगम मार्ग है।

दमयन्ती- (भयभीत सी मन ही मन) ओह, मन्द भाग्यवाली मैं मारी गयी। क्या आर्यपुत्र मुझे छोड़ने की इच्छा से इस प्रकार बोल रहे हैं? अथवा अमङ्गल का

(१) हा! हताऽस्मि मन्दभागिनी। किं मां परित्यक्तुकाम आर्यपुत्रो यदेवं जल्पति? अथवा प्रतिहतममङ्गलम्। एतत् खलु पिपासाखिन्नकण्ठस्य आर्यपुत्रस्य वचनस्खलितम्।

राजा- देवि! यद्यपेतपरिश्रमा, तदा पुरः प्रचलितुं यतस्व।

दमयन्ती- (१) अज्जउत्त! निहायंति मे लोयणाइं, ता खणं इह ज्जेव सइस्सं।

राजा- (सहर्षमात्मगतम्) प्रियं नः (प्रकाशम्) देवि! प्रश्रान्ताऽसि तद् विनोदय निद्रया क्षणं चङ्क्रमणश्रमम्, अहमपि निद्रास्यामि।

दमयन्ती- (स्वगतम्) (२) मा णाम मं पसुत्तं परिच्चवईय कयाइ गच्छे, ता अत्तणो चीवरेण अज्जउत्तं परिवेठिय निहाएमि।

(तथा कृत्वा शयनं नाटयति)

राजा- (विलोक्य) कथं चरणचङ्क्रमणगाढप्ररूढगात्रपरिश्रमेण क्षणादेव निद्राप्रकर्षमधिरूढा देवी। तदारभ्यते चण्डालकुलालङ्करणं

नाश हो। निश्चय ही प्यास से सूखे कण्ठ वाले आर्यपुत्र की यह लड़खड़ाई हुई वाणी है।

राजा- देवि! यदि मार्गजन्य थकान दूर हो गई हो, तो आगे चलने के लिए तैयार हो जाओ।

दमयन्ती- आर्यपुत्र! मेरे नेत्र को निद्रा बन्द कर रही है, इसलिए क्षणभर यहीं सोऊँगी।

राजा- (हर्ष के साथ अपने मन में) यह तो हमारे लिए अच्छा ही है (प्रकट में) देवि! तुम अधिक थक गई हो इसलिए पैदल चलने से होने वाली थकान को निद्रा के द्वारा क्षण भर में दूर कर लो, मैं भी सोऊँगा।

दमयन्ती- (मन ही मन) कहीं ऐसा न हो कि मुझे निद्रा में छोड़कर चले जाँय, इसलिए मैं अपनी साड़ी (के आँचल) से आर्यपुत्र को बाँधकर सोऊँगी।

(वैसा करके सोने का अभिनय करती है)

राजा- (देखकर) पैदल चलने से अधिक होने वाली शारीरिक थकान के कारण क्षणभर में ही देवी किस प्रकार से गाढ़ निद्रा को प्राप्त हो गयी। तो (अब) मैं

(१) आर्यपुत्र! निद्रायेते मे लोचने, ततः क्षणमिहैव शेष्ये।

(२) मा नाम मां प्रसुप्तां परित्यज्य कदाचित् गच्छेत्, तदात्मनश्चीवरेण आर्यपुत्रं परिवेष्ट्य निद्रामि।

कर्म। (उत्थातुमिच्छति। साशङ्कम्) कथमिति निबिडमापीड्य मामियं
विरहकातरा शेते। तपस्विनी मामवधारयति मुखमधुरमवसानदारुणं
कालकूटफलम्। सरले! मुञ्च मुञ्च त्रिजगत्परितापावापहेतुः सर्वभक्षी
नलरूपेणानलोऽस्मि। अपि च भर्तृवत्सले!

विश्वासघातिनमकृत्यकरं श्रपाकं

मा मां स्पृश श्लथय दोःपरिरम्भमुद्राम्।

अस्मादृशामकरुणैकशिरोमणीनां

सर्वसहाऽपि विरमत्यनुषङ्गपापात्।।१२।।

(शनैर्दोःपरिरम्भमुन्मुच्य साशङ्कम्) कथमम्बरेण परिवेष्टितोऽस्मि। (विहस्य)
अयि यत्नपरे! किमीदृशैः प्रयत्नैरुपरुध्यति क्रूरकर्मपटीयान् नलः?
यस्त्रिजगद्वन्धनेन प्रेम्णा न बध्यते तस्य मृणालतन्तुपेशलमम्बरं किमादधीत?
एष तरवारिणा च्छित्त्वा गच्छामि। (कृपाणं प्रति) सखे! दर्शय

चाण्डालवंश की शोभा बढ़ाने वाले कर्म का आरम्भ करता हूँ। (उठने के लिए चाहता है। आशङ्का के साथ) वियोग से डरने वाली यह दमयन्ती (मेरा) गाढ़ आलिंगन करके किस प्रकार सो रही है। यह दमयन्ती नहीं जानती है (कि मैं तो उस) विषफल की तरह हूँ जो, मुख में (तो) मीठा (लगता) है (पर उसका) अन्त भयानक (होता) है। मुग्धे! छोड़ो मुझे छोड़ो, मैं तो तीनों लोक के ताप का मूल कारण सभी कुछ खा लेने वाला शरीरधारी नल रूप में अनल (अग्नि) हूँ। और भी, पतिप्रिये!

विश्वास को तोड़ देने वाला नहीं करने योग्य कर्म को करने वाले चाण्डाल मुझे (नल को) (तुम) मत छूओ (और) भुजाओं के आलिङ्गन बन्धन को ढीला कर दो। (क्योंकि) अकृत्य कर्म को करने वाले हमारे जैसे (अर्थात् नल) के सम्पर्कजन्य पाप (के भय) से पृथ्वी भी विरत होती (अर्थात् अलग होती) है।।१२।।

(धीरे से दोनों बाहु के आलिङ्गन को छुड़ाकर सन्देह के साथ) अरे, वस्त्र के द्वारा चारों तरफ से लपेट दिया गया हूँ। (हँसकर) हे, अपने प्रयत्न में चतुर, दमयन्ति! क्या इस प्रकार के प्रयत्न के द्वारा कठोर कर्म करने में प्रवीण नल रुक सकता है? जो तीनों लोक को बाँधने वाले प्रेम (के बन्धन) से नहीं बँधता उसको कमल नाल सदृश कोमल तन्तु से बना वस्त्र क्या बाँध सकता है? इस तलवार से (वस्त्र को)

टिप्पणी— 'सर्वसहा' — 'सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुधरा' इत्यमरः।

फलमात्मसन्निधानस्य। (सरोषम्) कथं कृपालुरिव विलम्बसे? किञ्च नलस्यासिरसि दयालुश्चेति व्याहतं चरितम्। अपि च—

धनं प्रेमग्रन्थिं सदयमपि चिच्छेद हृदयं
कृपा केयं ब्रूहि स्फुरति हृदि निखिंश! भवतः?
यदद्यापि च्छेतुं न सहसि विदर्भेन्द्रतनया-
नितम्बस्तम्बाङ्कप्रणयिपरिधानांशुकमिदम्॥१३॥

आः! ज्ञातम्, हस्तं सखायमपेक्षते। (दक्षिणहस्तं प्रसार्य सरोषम्)

त्वया तावत् पाणिः प्रसभमुपगूढः परिणये
त्वमेवास्याः पीनस्तनजघनसौरभ्यसचिवः।
ततश्छेतुं वासः कृशकृप! कृपाणं कर! धरं-
स्तुटन्मर्मोत्सङ्गः कथमहह! नोपैषि विलयम्?॥१४॥

काटकर जाता हूँ। (तलवार से) मित्र! पास में रहने का अपना फल दिखाओ। (क्रोध के साथ) दयालु की तरह क्यों विलम्ब कर रहे हो? (क्योंकि) तुम नल की तलवार हो (और) तुम में दया का भाव होना (तुम्हारे) आचरण के विरुद्ध है। और भी—

गाढ़ स्नेह के बन्धन वाले वक्षस्थल को भी कृपा करके काटने वाले हे तलवार! यह कहो (कि) तुम्हारे हृदय में यह कैसी दया फैल रही है जिसके कारण विदर्भनरेश की पुत्री दमयन्ती के नितम्ब (प्रदेश) पर गुच्छे के रूप में लटकने वाली वस्त्रांचल को काटने में (तुम) अभी समर्थ नहीं हो रहे हो?॥१३॥

ओह, समझ गया, (तुम अपने) मित्र हाथ की सहायता चाहते हो। (दाहिने हाथ को फैला कर क्रोध के साथ)

विवाह के समय तो तुम्हारे द्वारा जबरदस्ती (प्रिया के) हाथ का अलिङ्गन किया गया (तथा) तुम्हीं इसके स्थूल स्तनद्वय तथा जाँघद्वय के ख्याति (लब्ध) सहचर हो। तब हे निर्दय दक्षिण हस्त! टूटते हुए हृदय वाले नल की प्रिया के नितम्ब के ऊपरी भाग वाले वस्त्र को काटने के लिए कृपाण धारण करते हुए (तुम) क्यों नहीं अन्त को प्राप्त (अर्थात् वस्त्र को दो भागों में विभक्त क्यों नहीं) कर रहो हो? यह आश्चर्य है॥१४॥

अपि च-

देवीनीविच्छिदालोल! निर्दाक्षिण्यशिरोमणे!

सत्राच्यः स विरिञ्चोऽपि हस्त! त्वां दक्षिणं सृजन्॥१५॥

(विमृश्य)

यदि वा द्यूतकारस्य मे नामाकृत्यमस्ति ते।

आः! गृहाण कृपाणं हुं हुं विधेहि द्विधांशुकम्॥१६॥

(अंशुकं द्विधाकृत्य शनैरुत्थाय)

भ्रातश्चूत! वयस्य केसर! सखे पुत्राग! यामो वयं

मा स्मास्माकमनार्यकार्यपरतां जानीत यूयं हृदि।

द्यूतच्छा व्व च कुबरस्य निषधाभर्तुः व्व चाक्षीर्जयो

वैदर्भीत्यजनं व्व चैष निखिलः कल्पः प्रसादो विधेः॥१७॥

और भी—

देवी (दमयन्ती) के कमरबन्द को खोलने में चञ्चल, अनुदारों में अग्रगण्य हे हस्त! तुमको दाहिना (उदार, अनुकूल) हाथबनाते हुए वह ब्रह्मा भी (आज) उपहास के पात्र हो गये॥१५॥

(विचार करके)

अथवा मुझ जुआरी का ऐसा कौन सा कर्म शेष है जो तुम्हारे (हाथ) द्वारा नहीं करने के योग्य है (अतः) अरे! तलवार ग्रहण करो और वस्त्र को दो भागों में बाँट दो अर्थात् काट दो॥१६॥

(वस्त्र के दो टुकड़े करके धीरे से उठकर)

भाई आप्रवृक्ष! मित्र केसर! दोस्त पुत्राग (नाग केसरवृक्ष)! हम जा रहे हैं। आप लोग अपने हृदय में हमको अनार्योचित कर्म करने वाला न जानें। द्यूत-क्रीड़ा की इच्छा वाला कुबर कहाँ? और पासे से जीत लिया गया नल कहाँ? तथा इस प्रकार से जंगल में (अकेली) दमयन्ती कहाँ? यह सम्पूर्ण (घटना) अपना कर्तव्य पूरा करने में समर्थ ब्रह्मा का अनुग्रह है (अर्थात् ब्रह्मा के इच्छानुकूल ही घटना घटित होती है)॥१७॥

भवतु, चरमं देवीवदनेन्दुविलोकनं कृत्वा ब्रजामि। (विलोक्य सास्त्रम्)

स्पृशति न मणिज्योत्सनाच्छत्रं निशान्तजुषः पुरा

सुचिरमनिलोऽप्यङ्गं यस्या नलादिव शङ्कितः।

विगतशरणा क्षुत्क्षामाङ्गी पटच्चरधारिणी

वनभुवि हहा! सेयं शेते विदर्भपतिप्रसूः॥१८॥

हे देवि! एष कर्मचण्डालो नलः प्रयाति। (कतिचित् पदानि दत्त्वा सरोषमात्मानं प्रति) आः क्षत्रियापसद! पुरुषसारमेय! भर्तृजाल्म! श्वपाकनायक! कृपाविकल! हतनल! कथमिमामेकाकिनीमात्सैकशरणां सधर्मचारिणीमस्मिन् गहने वने सन्त्यज्य प्रचलितोऽसि? भवतु, वनदेवताः शरणं कृत्वा ब्रजामि। (प्रतिनिवृत्य दिशोऽवलोक्य)

कच्चित् काननदेवताः! शृणुत मे यस्या वपुः कल्पयन्

जातः शिल्पिगणाग्रणीः कमलभूः सेयं विदर्भात्मजा।

अच्छा, अन्तिम बार देवी दमयन्ती के चन्द्रमा रूपी मुख को देखकर चला जाता हूँ (देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से)।

पहले, रत्नों के प्रकाश से ढके हुए जिस दमयन्ती के अङ्गों का मानो नल के भय से दीर्घकाल तक वायु भी स्पर्श नहीं करता था, खेद है कि असहाय हो गई, भूख से दग्ध शरीरावस्त्रों वाली, पहिले पहने हुये वस्त्र को ही धारण करने वाली वही (दमयन्ती) आज वन की भूमि पर सो रही है॥१८॥

हे देवि! पतित कर्म करने वाला यह नल जा रहा है। (कुछ कदम जाकर क्रोध के साथ अपने मन में) ओह, क्षत्रियों में नीच! पुरुषरूपी कुक्कुर! पतियों में लुच्चा! चाण्डालों का नेता! दयारहित अधम नल! (तुम) अपनी पत्नी दमयन्ती को उसकी सुरक्षा का भार उसके ही ऊपर छोड़कर धनघोर जंगल में उसका परित्याग करके कैसे जा रहे हो? अच्छा, वन देवताओं को रक्षक बनाकर मैं जा रहा हूँ (लौटकर दिशाओं में देख कर)

हे वन देवताओ! सुनिये, हमारे लिए जिसके शरीर की रचना करते हुए कमलयोनि ब्रह्मा वास्तुकारों में सर्वश्रेष्ठ हो गये, यह वही दमयन्ती है। (अतः) कठोर कर्म करने वाले झूठ प्रेष पुरुष के द्वारा विना किसी कारण के त्याग दी गई इस दमयन्ती

अस्याः कर्कशकर्मणा प्रियतमाभासेन निष्कारणं
त्यक्तायाः शरणं स्थ मा स्म नलवन्निसिंशतां गच्छत ॥१९॥

(पुनरञ्जलि बद्ध्वा)

निद्राच्छेदे क्व दयित! गतोऽसीति तारं वदन्ती
विन्यस्यन्ती दिशि दिशि दृशं वाष्पकल्लोललोलाम्।
देव्यः सर्वा वनवसतयो मातरः! प्रार्थये व-
स्तत् कर्तव्यं कलयति तथा कुण्डिनाध्वानमेषा ॥२०॥

(१) अज्ज! एदं शिशिलशलिलपूलिदं शलं, ता एहि सत्थवाहस्स
गडुय कहेमि।

राजा- कथं पक्कणवासी कोऽप्यागच्छति (साशङ्कम्) यदि कथमप्येषा
शबरस्यास्य कोलाहलेन निद्रामपजाह्यात् तदा मामवबध्नीयात्। तद्

के (आप सब) रक्षक होवें (और आपलोग) नल की तरह कठोरता को नहीं प्राप्त करें
(अर्थात्, आपलोग भी नल की तरह कठोर हृदय वाले नहीं हो जाँय) ॥१९॥

(पुनः अञ्जलि बाँधकर)

हे वनदेवियो! निद्रा भंग हो जाने पर अश्रुपूर्ण चञ्चल नेत्रों से प्रत्येक दिशा में
देखती हुई जोर से बोलती हुई (जब कहेगी कि) हे प्रिय! तुम कहाँ गये हो! (तब)
हे वन में निवास करने वाली माताओ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि (आप लोग)
वह कार्य करें जिससे यह कुण्डिन नगरी के रास्ते को जान जाय (अर्थात् आप लोग
इसे कुण्डिन नगरी जाने वाला रास्ता बता दें) ॥२०॥

(नेपथ्य में)

आर्य! यह शीतल जल से पूर्ण सरोवर है, अतः आओ झुण्ड के नेता से जाकर
कहते हैं।

राजा- यह तो शबरालय में रहने वाला कोई भील आ रहा है (सन्देह के साथ)
यदि भील के शोरगुल से कहीं दमयन्ती की निद्रा भंग हो जायेगी तो यह मुझे रोक
लेगी। तो मैं चलता हूँ। देवि! यह अन्तिम बार बोल रहा हूँ। वनदेवता तुम्हारे रक्षक

(१) आर्य! एतत् शिशिरशलिलपूरितं सरः, तदेहि सार्थवाहाय गत्वा
कथयामि।

ब्रजाम्यहम्। देवि! तदानीं चरममाभाष्यसे। वनदेवतास्ते शरणम्। एष पापिष्ठश्रेष्ठो निखिंशशिरोमणिः परवञ्चनाचतुरः क्षत्रियापदेशेन ब्रह्मराक्षसः क्रूरकर्मा चाण्डालचक्रवर्ती नलः प्रयाति। (इत्यभिधाय पूत्सुर्वन् निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति पुरुषः)

पुरुषः—(१) अज्ज! एदं शिशिलशलिलपूलिदं शलं ता एहि सत्थवाहस्स कहेमि (परिक्रम्य विलोक्य च) कथं इत्थिका! अम्पो! अदिलुविणी! हीमाणहे कथं अल्लणे एगागिणी (सदयम्) मां एदं केवि भुक्खाकलाले लक्खसे भिक्खसे रा^१ खाए। ता उत्थावए हगे। अज्जे अज्जे! उत्थेहि उत्थेहि (सरोषम्) कहं अइनिहाए मुदा विव न सुणेदि शइं? भोदु, उप्पाडिय एदं अन्नत्थ नएमि। (तथा कृत्वा निष्क्रान्तः)

॥पञ्चमोऽङ्कः॥

हैं। यह पापियों में श्रेष्ठ, निर्दयियों में अग्रगण्य, दूसरों को ठगने में चतुर, क्षत्रियों में अधम ब्रह्मराक्षस, कठोर कर्म करने वाले चाण्डालों का सम्राट् नल जा रहा है। (यह कहकर पाद विक्षेप करते हुए निकल जाता है)

(पश्चात् पुरुष प्रवेश करता है)

पुरुष— आर्य! यह शीतल जल से भरा सरोवर है, अतः आओ झुण्ड के नेता को कहते हैं। अरे यह क्या! अहा, अत्यन्त रूपवती है। ओह, इस जंगल में अकेली क्यों है? इसे कोई भूख से जम्हाई लेता हुआ मनुष्य को खाने वाला राक्षस अथवा अन्य कोई हिंसक जीव कहीं खा न जाय? इसलिए मैं इसे उठाता (निद्रा से जगाता) हूँ। आर्ये! आर्ये! उठो, उठो। गाढ़ निद्रा में मरे हुये की तरह यह मेरी आवाज क्यों नहीं सुन रही है? अच्छा, तो इसे (हाथ से) उठाकर ही यहाँ से दूसरी जगह ले जाता हूँ। (वैसा करके निकल जाता है)

॥पञ्चम अङ्क समाप्त॥

(१) आर्य! एतत् शिशिरशलिलपूरितं सरः, तदेहि सार्थवाहाय कथयामि। कथं स्त्री! अहो! अतिरूपवती, हा! कथमरण्ये एकाकिनी। मैनां कोऽपि बुभुक्षाकरालो राक्षसो भक्षको वा खादयेत्(?)। तदुत्थापयाम्यहम्। आर्ये! आर्ये! उत्तिष्ठ उत्तिष्ठ। कथमतिनिद्रया मृतेव न शृणोति शब्दम्? भवतु, उत्पाट्यैतामन्यत्र नयामि।

१. क. रक्खोए।

षष्ठोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति नलः)

नलः— (दमयन्तीमनुस्मृत्य सानुतापम्)

राज्यं हारितवानहं नहि नहि व्याधत्त सर्वं विधि-
देवीं हाऽत्यजमस्मि तत्र विपिने यद्वा स्त्रियो बन्धनम्।
तां पश्येयमहं वनेऽथ गहने तस्याः कुतः प्राणितं
ह्रीर्मे नो न दया दुरोदरकृतः का वा त्रपा का कृपा? ॥१॥

(पुनः सखदेम्)

नास्मार्षं नयमस्मि नाधिमनसं प्रेमाणमाशिश्रियं
नाकार्षं कुलमुज्ज्वलं हृदि कृपां पापो न वाऽजीगणम्।
तां तस्मिन् गहने वने विरहयन् कर्माचरं दुर्जरं
धिग् मां नाहमवेक्षणीयवदनो नार्हामि पङ्क्तिं सताम् ॥२॥

(उसके बाद रङ्गमञ्च पर नल प्रवेश करता है)

नल— (दमयन्ती का स्मरण करके खेद के साथ)

मैं (अपना) राज्य हरण करवाने वाला हूँ, ओह, वहाँ जंगल में मैं देवी दमयन्ती को छोड़ सकता हूँ या मैं (नल) उस दमयन्ती को चोट पहुँचा सकता हूँ, नहीं, नहीं यह सब प्रारब्ध ने ही करवाया है अब, हमें उसको देखना चाहिए कि वहाँ घने वन में देवी दमयन्ती कैसे जीवित हैं। (ओह) दया रहित मुझे धिक्कार है अथवा जुआरी के लिए क्या लज्जा (और) क्या दया? ॥१॥

(पुनः खेद के साथ)

मैंने नीति का स्मरण नहीं किया (अर्थात् आश्रय नहीं लिया), मन में मैंने प्रेमी का आश्रय नहीं लिया (अर्थात् मैंने मन से प्रेमी की सेवा नहीं की), अपने कुल को उज्ज्वल नहीं (अर्थात् अपने कुल को कलङ्कित) किया और हृदय में न तो दया की और न ही पापों की परवाह (ही) की। उस घने वन में उस (दमयन्ती) को छोड़ते

अहह! कथमनिमित्तशत्रुर्दुरात्माऽहमात्मैकशरणां तां तपस्विनी-
मपाकृतवान्!

(ऊर्ध्वमवलोक्य)

न प्रेम नाप्यभिजनं न गुणं न सेवां
चित्ते दद्यत्युपकृतिं किल ये श्रयन्तः
किं दैव! निर्हता भवता हतास्ते
गर्भीस्थिताः प्रसवमात्रभृतोऽथ मर्त्याः ॥३॥

(स्मृत्वा सचिन्तम्)

स्फुरति तिमिरे घूकव्राते ध्वनत्यतिभैरवं
ककुभि ककुभि व्यालानीके विसर्पति सध्वनौ।
चरममचलं याते पत्यौ रुचां चकितेक्षणा
शरणमधिकं भीरुर्देवी करिष्यति किं वने? ॥४॥

हुए भयंकर कर्म का आचरण करने वाले मुझ (नल) को धिक्कार है (जिससे) मैं कहीं
मुख दिखाने योग्य नहीं रह गया और न तो मैं सज्जनों की श्रेणी के योग्य (ही) रह
गया (हूँ) ॥२॥

खेद है, बिना कारण के होने वाले शत्रु रूपी दुष्टात्मा मैंने स्वयं रक्षा करने वाली
उस पतिव्रता (दमयन्ती) का किस प्रकार से अनादर किया।

(ऊपर की ओर देखकर)

जो सेवा करने वाले हैं (उन्होंने भी) न तो प्रेम को, न कुल को न गुण को,
न सेवा को और न तो उपकार को ही हृदय में धारण किया। (अतः) हे प्रारब्ध! गर्भ
में ठहरे हुये या अभी ही जन्म लेने वाले भाग्यहीन वे सभी भूलोकवासी तुम्हारे द्वारा
क्या नहीं मारे गये (अर्थात् मारे ही गये) ॥३॥

(स्मरण करके चिन्ता के साथ)

किरणों के स्वामी सूर्य के अस्ताचल चले जाने पर (अर्थात् अस्त हो जाने पर)
अन्धकार में उल्लुओं की अति भयावह घूँ-घूँ की ध्वनि फैल रही है। प्रत्येक दिशा
में ध्वनि करते हुए हिंसक जीव-समूह भ्रमण करने लगे हैं। ऐसे में आश्चर्य चकित

१. ख. ग. निहिता

टिप्पणी- घूक = उल्लू “दिवान्धः कौशिको घूको दिवाभीतः निशाटनः। इत्यमरः।

(विमृश्य)

तातनिषधेन भुजगरूपमास्थाय समयोचितमनुशिष्टोऽस्मि। इदमप्यति-
रमणीयमाचरितं तातेन यन्मम रूपं विपर्यासितम्। अनुपलक्षितरूपो हि
सुखमेवाहमिदानीमयोध्याधिपतेरभ्यर्णं सूपकारादिकर्मण्यादधानः
स्थास्यामि। (साश्चर्यम्) अहह! पश्य कीदृशी सुरसद्यसमृद्धिरासादिता
तातेन। सर्वथा भूर्भुवःस्वस्त्रयेऽपि नासाध्यमस्ति तपसाम्। (सविषादम्)
अहो! मे महान् प्रमादः। नन्वहं जीवलकेन महीपतेर्दधिपर्णस्याज्ञया
विदर्भागतभरतैः प्रयुज्यमानं नाटकमवलोकितुमाकारितोऽस्मि। तद् ब्रजामि
त्वरितम्। अपि नाम नटेभ्यः कापि दमयन्तीप्रवृत्तिरपि लभ्येत। (परिक्रामति।
नेपथ्यमवलोक्य) कथमयमिक्ष्वाकुकुलतिलको देवो दधिपर्णः
सपर्णनाम्नाऽमात्येन सह जल्पन्नास्ते। जीवलकोऽप्यत्रैव तिष्ठति। भवतु
प्रणमामि।

(ततः प्रविशति यथानिर्दिष्टो राजा)

होकर देखती हुई असहाय (बना दी गई) अधिक डरने वाली देवी दमयन्ती वन में
क्या करेगी।।४।।

(विचार कर)

हमारे पूर्वज ने सर्परूप देकर मुझे समयानुकूल अनुशासित किया है। तात ने
यह भी अत्यन्त सुन्दर कार्य किया कि जो मेरा (अपना) रूप था उसको विपरीत कर
दिया (अर्थात् हटा दिया) क्योंकि नहीं पहचाने जाने योग्य रूप वाला मैं सुख (आसानी)
से अब अयोध्यानरेश के घर में रसोइया का कार्य करता हुआ रह जाऊँगा। (आश्चर्य
के साथ) वाह, देखो किस प्रकार से तात ने मुझे स्वर्ग की समृद्धि को प्राप्त कराया
है। वस्तुतः तपस्वियों के लिए तीनों लोक (स्वर्गलोक, भूलोक और पाताललोक)
में कुछ भी असाध्य नहीं है। (खेद के साथ) ओह, मुझसे बहुत बड़ी भूल हो गयी।
पृथिवीपति दधिपर्ण की आज्ञा से जीवलक द्वारा मैं, विदर्भदेश से आये हुये नटों के
द्वारा अभिनय किये जाने वाले नाटक को देखने के लिए, बुलाया गया हूँ। तो शीघ्र
वहीं जाता हूँ। सम्भव है कि नटों के द्वारा किसी प्रकार दमयन्ती की स्थिति भी ज्ञात
(मालूम) हो जाय। (धूमता है। नेपथ्य को देखकर) यह तो इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न पूज्य
महाराज दधिपर्ण सपर्ण नामक मन्त्री के साथ बोलते हुए बैठे हैं। जीवलक भी यहीं
पर ठहरा है। अच्छा, तो प्रणाम करता हूँ।

(उसके बाद यथा निर्दिष्ट राजा प्रवेश करता है)

राजा- अमात्य! पश्याकृतिविरुद्धमस्य बाहुकनाम्नो वैदेशिकस्य कलासु कौशलम्। किमेतस्य सर्वाङ्गवक्रस्य तदिदमश्वलक्षणवैलक्षण्यम्, सोऽयं सूर्यपाकवविधिः, सेयमपरास्वपि क्रियासु चातुरी सम्भवति।

सपर्णः- अस्मिन् नयनोद्वेगाञ्जने कलाकलापमावपन्नसंशयं विरञ्चिभ्रान्तिः।

जीवलकः- देव! बाहुकः प्रणमति।

राजा- बाहुक! इत आस्यताम्। (नलः प्रणम्योपविशति)

(स्मृत्वा) किमद्यापि चिरयन्ति रङ्गोपजीविनः?

जीवलकः- भो भरतपुत्राः! प्रस्तूयतां नाट्यम्।

(प्रविश्य)

सूत्रधारः- नलान्वेषणनामप्रबन्धाभिनयावधानाय महाराजं दधिपर्णमभ्यर्थये।

राजा- मन्त्रिन्! आकृति के विपरीत इस बाहुक नामक विदेशी के कला नैपुण्य को तो देखो। यद्यपि इसके सभी अङ्ग टेढ़े हैं तथापि यह अश्व के लक्षणों को जानने में निपुण है, यह सूर्य की किरणों से पाक क्रिया करता है, इसी प्रकार अन्य क्रियाओं में भी इसकी निपुणता सम्भव है।

सपर्ण- नेत्रों के लिए क्षोभकारक काले पुरुष में कला समूह को स्थापित करते हुए निस्सन्देह ब्रह्मा को भ्रान्ति हो गयी (जिसके कारण इसका रंग और सर्वाङ्ग टेढ़ा बना दिया)।

जीवलक- महाराज! बाहुक प्रणाम करता है।

राजा- बाहुक! यहाँ बैठिये (नल प्रणाम करके बैठता है)।

(स्मरण करके) नट लोग अब देरी क्यों कर रहे हैं?

जीवलक- हे नटो! अभिनय आरम्भ करें।

(प्रवेश करके)

सूत्रधार- नल को खोजने वाले नामक नाटक के अभिनय (को देखने के लिए) महाराज दधिपर्ण से सावधान होने के लिए (हम) प्रार्थना करते हैं।

नलः- (स्वगतम्) कोऽयं नलः? किमहमेव? यदि वाऽपारे जगत्पारावारे न दुर्लभो नामसंवादः।

राजा- एष सावधानोऽस्मि। ततः प्रस्तूयताम्।

(नेपथ्ये)

(१) हा अज्जउत्त! परित्तायाहि मं, भायामि एगागिणी करालवालविहुरे रन्नकुहरे।

नलः- (स्वगतम्) मयेव दुरात्मना केनाप्येकाकिनी गहने वने किं प्रिया परित्यक्ता?

राजा- अमात्य! प्रथमेऽपि नाट्यारम्भे कष्टमतिकरुणो रसः।

(नेपथ्ये)

अये पिङ्गलक! तामनुकूलय तपस्विनीं येन सार्थवाहान्तिकं नयामः

नल- (अपने मन में) यह नल कौन है? क्या मैं तो नहीं हूँ? अथवा समुद्र की तरह विशाल संसार में दूसरा भी नल नाम वाला हो सकता है।

राजा- मैं सावधान हूँ। अतः अभिनय आरम्भ करें।

(नेपथ्य में)

हे आर्यपुत्र! मेरी रक्षा करें, भयंकर जीव-जन्तुओं वाले इस घने जंगल के मध्य में अकेली डरती हूँ।

नल- (मन ही मन) तो क्या मेरी तरह ही किसी दुष्टात्मा ने अपनी प्रिया को घने वन में छोड़ दिया है?

राजा- सचिव! अभिनय का आरम्भ ही कष्टदायक करुणरस से युक्त है।

(नेपथ्य में)

अरे पिङ्गलक! उस पतिव्रता को मनाओ जिससे उसे झुण्ड के नेता के पास (हम) ले जाँय।

(१) हा आर्यपुत्र! परित्रायस्व मां, बिभेमि एकाकिनी करालव्यालविधुरेऽरण्यकुहरे।

सूत्रधारः- यदमी दमयन्ती-गन्धार-पिङ्गलकनेपथ्यधारिणो रङ्गोपजीविनः संरभन्ते, तज्जाने प्रवृत्तं नाट्यम्। तदहमपि कार्यान्तरमनुतिष्ठामि।

(अञ्जलि बद्ध्वा)

जयति स पुरुषविशेषो नमोऽस्तु तस्मै त्रिधा त्रिसन्ध्यमपि।

स्वप्नेऽपि येन दृष्टं नेष्ट्रवियोगोद्भवं दुःखम्।।५।।

(इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

(ततः प्रविशति दमयन्ती गन्धारः पिङ्गलकश्च)

गन्धारः-आर्ये! अलमतिप्रलपितेन। आगच्छाचलपुरयायिनो धनदेवनाम्नः सार्थवाहस्याभ्यर्णम्।

दमयन्ती- (१) अज्ज! अत्तणो भत्तारं गवेसइस्सं।

गन्धारः- आर्ये! कस्ते पतिः?

सूत्रधार- जैसा कि दमयन्ती गान्धार पिङ्गलक के वस्त्र को धारण करने वाले नट लोग शीघ्रता कर रहे हैं, उससे तो अभिनय प्रारम्भ किया गया ही समझना चाहिए। इसलिए मैं भी अन्य कार्य करने के लिए जाता हूँ।

(अञ्जलि बाँधकर)

वह पुरुष विशेष जिसने स्वप्न में भी प्रिय-वियोगजन्य कष्ट को नहीं देखा है (उसकी) जय हो, (और उन्हें) मैं त्रैकालिक (प्रातः, मध्याह्न और संध्याकालीन) नमस्कार करता हूँ।।५।।

(यह कहकर के चला जाता है)

(पश्चात् दमयन्ती, गन्धार और पिङ्गलक रङ्गमञ्च पर आता है)

गन्धार- आर्ये! अधिक विलाप करना व्यर्थ है। आओ अचलपुर को जाने वाले धनदेव नामक सार्थवाह के समीप चलें।

दमयन्ती- आर्य! मैं अपने स्वामी को खोजूँगी।

गन्धार- आर्ये! तुम्हारा स्वामी कौन है?

(१) आर्य! आत्मनो भर्तारं गवेषयिष्यामि।

नलः- (ससम्भ्रममात्मगतम्) किमेषाऽभिधास्यति?

दमयन्ती- (१) निशङ्गाहिवदी नलो।

नलः- (स्वगतम्) आः पाप! नलहतक! विलीयस्व। किमतः परं प्राणिषि? ध्रुवमुपरता देवी। कथमपरथा नाट्येषु तत्रतिबिम्बेन व्यवहारः।

पिङ्गलकः- (सरोषम्) (२) शिशिले! किं तेण कूलकम्पणा चंडालेण कलिस्ससि? ता सत्यवाहपासं एहि।

राजा- (सहर्षम्) साधु भो भरत! साधु! स्वप्नेऽप्यदृश्यवदनोऽसौ येनेयमेकाकिनी परित्यक्ता।

नलः- (सरोषमिव) अस्पृश्योऽश्रोतव्योऽग्राह्यनामा चेत्यप्यभिधीयताम्।

गन्धारः- तर्हि गवेषय क्वापि।

नल- (घबराहट के साथ अपने मन में) यह क्या कहेगी?

दमयन्ती- निषधदेश के राजा नल।

नल- (मन ही मन) अरे पापी! पुरुषों में नीच नल! विलीन हो जाओ। इसके बाद भी क्या देवी जी रही है? निश्चय ही देवी (दमयन्ती) मर गई है। अन्यथा अभिनय में उसकी छाया के द्वारा (इसका) आचरण कैसे (सम्भव) है।

पिङ्गलक- (क्रोध के साथ) आर्ये! उस कठोर कर्म करने वाले चाण्डाल को क्या करोगी? अतः सार्थवाह के पास चलो।

राजा- (हर्ष के साथ) बहुत अच्छा हे नट! बहुत अच्छा, जिसने इसको जंगल में छोड़ा है, उसका मुख तो स्वप्न में भी देखने योग्य नहीं है।

नल- (क्रोधित हुये की तरह) यही नहीं, नहीं छूने योग्य, नहीं सुनने योग्य और नहीं नाम लेने योग्य भी कहिये।

गन्धार- तो कहीं खोजो।

(१) निषधातिपतिर्नलः।

(२) शिशिरे! किं तेन कूरकर्मणा चण्डालेन करिष्यसि? तत्सार्थवाह-पार्श्वमेहि।

दमयन्ती-(१) एदस्मिं सरो मह निमित्तं ससिलमाणेदुं गदो भविस्सदि। ता इत्थ गवेसिस्सं।

गन्धारः- बाले! मूढाऽसि। यस्त्वां सुप्तामपजहाति, स किं त्वन्निमित्तमम्भः समानयति?

दमयन्ती-(२) अथ मा एवं भण। अहं पाणेहिंतो वि अज्जउत्तस्स पियदरा।

राजा- परित्यागेनाप्यमुना निवेदितं त्वयि भर्तुः प्रेम।

दमयन्ती-(परिक्रम्य) (३) कथं एदं सरो, न उण अज्जउत्तो दीसदि। भोदु, एदं चक्कवायघरणिं पुच्छामि।

दमयन्ती- कदाचित् इस सरोवर में हमारे लिए जल लाने को गये होंगे। अतः यहीं खोजूँगी।

गन्धार- बाले! तुम नासमझ हो। जिसने तुम्हें निद्रा अवस्था में छोड़ दिया, क्या वह तुम्हारे लिए जल लायेगा।

दमयन्ती- ऐसा न कहें। मैं तो आर्यपुत्र को प्राण से भी प्यारी हूँ।

राजा- इस प्रकार से छोड़ दिये जाने पर भी अपने पति में अनुराग प्रकट करती हो।

दमयन्ती- (धूमकर) आर्यपुत्र तो इस सरोवर में भी दिखाई नहीं दे रहे हैं। अच्छा, तो चक्रवाक की इस पत्नी से पूछती हूँ।

(१) एतस्मिन् सरसि मम निमित्तं सलिलमानेतुं गतो भविष्यति। तदत्र गवेषयिष्यामि।

(२) अथ मैवं भण। अहं प्राणेभ्योऽपि आर्यपुत्रस्य प्रियतरा।

(३) कथमेतत् सरो न पुनरार्यपुत्रो दृश्यते? भवतु एतां चक्रवाकगृहिणीं पृच्छामि।

सखि चक्रवाकदयिते! दयितं किं मम न कथयसि सहसा?

प्रियविरहितानां दुःखं प्रत्यक्षं तवानुनित्यम्॥६॥

सहि!चक्कवायदइए! दइयं किं मह न साहसे सहसा?
पियविरहियाण दुक्खं पञ्चक्खं तुज्झमणुनिच्चं।।६।।

राजा- उचितमुक्तवती।

अनुभूतं न यद् येन रूपं नावैति तस्य सः।

न स्वतन्त्रो व्यथां वेत्ति परतन्त्रस्य देहिनः।।७।।

दमयन्ती- (विमृश्य) (१) पियपणयगव्विदा ण पडिवयणं पडिच्छदि।
(सरोषम्) हंजे रहंगिए! केरिसो दे एस पियपणयदप्पो?

अहं वि पुरवं ईदिस यासं. संपदं 'ज्जेव अणाहा जादा।

गन्धारः- (सास्त्रम्) आर्ये! किमेषा तिरश्ची वराकी जानाति?

दमयन्ती-(१) ता अन्नत्थ पुच्छिस्सं।

हे सखि चक्रवाकप्रिये! मेरे प्रिय को क्या (तुम) झट से नहीं कहोगी (अर्थात् मेरे प्रिय के विषय में तुम झट से जरूर कहोगी, क्योंकि) प्रिय-वियोग वाली रमणियों की पीड़ा का सबसे अधिक साक्षात् अनुभव तुमको है।।६।।

राजा- बिलकुल ठीक कहा है। (क्योंकि)---

जिसने जिस रूप (वस्तु) का अनुभव नहीं किया है, वह उसके रूप को नहीं जानता है, क्योंकि स्वतन्त्र (व्यक्ति) पराधीन व्यक्ति की पीड़ा को नहीं जानता।।७।।

दमयन्ती- (विचार करके) प्रिय के प्रेम के गर्व से (यह) हमें उत्तर नहीं देती है। (क्रोध के साथ) सखि चक्रवाकि! तुम्हारा प्रिय के प्रेम का यह कैसा अभिमान है? पहिले मैं भी ऐसी ही थी। अभी अनाथ हो गयी हूँ।

गन्धार- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) आर्ये! यह बेचारा पक्षी क्या जानता है?

दमयन्ती- तो दूसरे से पूछती हूँ।

(१) प्रियप्रणयगर्विता न प्रतिवचनं प्रतीच्छति। सखि रथाङ्गि!
कीदृशस्त एष प्रियप्रणयदर्पः?

अहमपि पूर्वमीदृश्यासम्। साम्प्रतमेवानाथा जाता।

(१) तदन्यत्र प्रक्ष्यामि।

(विलोक्य संस्कृतमाश्रित्य च)

मातः कुञ्जरपत्नि! तात हरिण! भ्रातः शिखण्डिन्! कृपां

कृत्वा ब्रूत मनाक् प्रसीदत कृतो युष्माकमेषोऽञ्जलिः।

दृष्टः क्वापि गवेषयन्निह वने भीमात्मजां नैषधो

भूपालः सरणिं सृजन्नविरलैर्बाष्पोर्मिभिः पङ्किलाम्॥८॥

पिङ्गलकः—(१) अज्जे! कीस उणं तेण पदिणा तुमं पडिच्चत्ता सि?

दमयन्ती—(सबाष्पम्) (२) अज्ज! दोसं न याणामि।

अप्या समप्यिओ पढमदंसणे वणमिणं च सह चलिया।

सुवणेवि पइं अन्नं न महेमि तहा वि परिचत्ता॥९॥

(देखकर और संस्कृत भाषा का आश्रय ले कर)

माँ हस्तिपत्नि! पिता मृग! भाई मयूर! आप लोगों के लिए (मेरे द्वारा) जोड़े गये इस प्रणामाञ्जलि से प्रसन्न होकर कृपा करके कुछ कहें कि इस वन में भीमनरेश की पुत्री दमयन्ती को खोजते हुए नेत्रों से निरन्तर गिरने वाली अश्रु धाराओं से मार्ग को गीला करने वाले निषधनरेश नल को कहीं (आप लोगों ने) देखा है॥८॥

पिङ्गलक—आर्ये! फिर उस पति से क्या, जिसके द्वारा तुम छोड़ दी गई हो?

दमयन्ती—आर्य! मैं दोष नहीं जानती हूँ।

प्रथम दर्शन में ही आत्मा को (उन्हें) सौंपकर तथा इस वन में साथ चलती हुई (यद्यपि मैं) छोड़ दी गई हूँ, फिर भी (मैं) स्वप्न में भी दूसरे पति की इच्छा नहीं करती हूँ॥९॥

(१) आर्ये! किं पुनस्तेन पत्या त्वं परित्यक्ताऽसि?

(२) आर्ये! दोषं न जाने।

आत्मा समर्पितः प्रथमदर्शने वनमिदं च सह चलित्वा।

स्वप्नेऽपि पतिमन्यं न काङ्क्षामि तथापि परित्यक्ता॥९॥

अथवा प्रतिहतममङ्गलम्। नाहमार्यपुत्रेण परित्यक्ता, किन्तु मम दुःखविनोदनार्थं परिहासः कृतः।

अहवा पडिहदममङ्गलं। नाहं अज्जउत्तेण परिचत्ता, किं तु मह
दुक्खविणोयणत्थं परिहासो कदो।

(पुनराकाशे)

(१) एगागिणी अहं भीलुगा य निम्माणुसं च वणमिणमो।
ता एहि एहि पिययम! अलाहि परिहासकीलाए।।१०।।

(२) किं मं वाहरसि? एस आगच्छामि। (सरभसं धावति)

गन्धारः— (सबाप्पम्) आर्ये! प्रतिश्रुतिरियम्।

दमयन्ती— (सपदि स्थित्वा) (३) अज्ज! एसा पडंसुया?

गन्धारः— एषा प्रतिश्रुत्।

अथवा अमङ्गल का नाश हो। मैं आर्यपुत्र के द्वारा छोड़ी नहीं गई हूँ, किन्तु मेरे कष्ट (पीड़ा) को दूर करने के लिए आर्यपुत्र ने (हमसे) हँसी की है।

(पुनः आकाश में)

मैं अकेली हूँ और डरपोक हूँ तथा यह वन मनुष्य से रहित है, अतः हे स्वामिन्! आओ, आओ, हँसी-मजाक का खेल बहुत हो गया।।१०।।

(प्रतिध्वनि को सुनकर आकाश में)

क्या, मुझे बुला रही हो? यह मैं आ रहा हूँ। (शीघ्रता से दौड़ती है)

गन्धार— (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) आर्ये! यह तो प्रतिध्वनि है।

दमयन्ती— (शीघ्रता से रुककर) आर्ये! यह प्रतिध्वनि है?

गन्धार— हाँ, यह प्रतिध्वनि है।

दमयन्ती— (अपनी परछाईं देखकर, अट्टहास करती हुई जोर से) भाग्य से आर्यपुत्र! भाग्य से, तुम देख लिए गये हो, तुम देख लिये गये हो, अब कहाँ जा रहे हो? (पुनः शीघ्रता से दौड़कर के सीत्कार ध्वनि से रुककर गन्धार के प्रति अश्रुपूर्ण

(१) एकाकिन्यहं भीरुका च निर्मानुषं च वनमिदम्।

तदेहि एहि प्रियतम! अलं परिहासक्रीडया।।१०।।

(२) किं मां व्याहरसि? एष आगच्छामि।

(३) आर्ये! एषा प्रतिश्रुतिः?

दमयन्ती- (१) (स्वप्रतिच्छायामालोक्य, सहासमुच्चैःस्वरम्) दिद्विया दिद्विया अज्जउत्त! दिद्वो सि दिद्वो सि कहिं दाणिं गच्छसि? (पुनः सरभसं धावित्वा ससीत्कारं च स्थित्वा गन्धारं प्रति सबाप्पम्) अज्ज! दब्भंकुरेहिं विद्धो मे चलणो। ता अवणेहि एदो अहवा चिट्ठ सयं ज्जेव अवणिस्सं। नाहं परपुरिसं फुसेमि।

राजा- (सरभसमुत्थाय) भगवति! पतिव्रते! नमस्ते।

जीवलकः- देव! किमिदम्? सिंहासनमलङ्क्रियताम्। ननु कूटनटघटनेयम्।

(राजा सत्रीडमुपविशति)

नलः- (सदुःखात्मगतम्)

श्रुते! बाधिर्यं त्वं कलय बिभृतां किञ्च नयने!

युवामन्धीभावं द्रुतमनगदङ्गारविषयम्।

शृणोम्यस्यास्तारं न रुदितमहं येन तदिदं

न वा पश्याम्येतां विरहहरिणीं हारिललिताम्।।११।।

नेत्रों से) आर्य! दर्भाङ्कुरों से मेरा पैर घायल हो गया है। अतः इसे निकाल दो अथवा ठहरो, मैं स्वयं ही निकाल लूँगी। मैं अन्य पुरुष का स्पर्श नहीं करूँगी।

राजा- (शीघ्रता से उठकर) भगवति पतिव्रते! तुम्हें नमस्कार है।

जीवलक- महाराज! यह क्या? सिंहासन को सुशोभित करें। यह तो कुशल नटों की रचना है।

(राजा लज्जित सा बैठ जाता है।)

नल- (दुःख के साथ अपने मन में)

ऐ दोनों कान! तुम शीघ्र बधिर हो जाओ, ऐ दोनों नेत्र! तुम शीघ्र अन्धत्व के भाव को प्राप्त हो जाओ, जिससे दुःख का विषयभूत दमयन्ती का जोर से रुदन करना तथा विरहव्याकुल दमयन्ती की मनोहारी लीला को (हम) न सुन सकें और न देख ही सकें।।११।।

(१) दिष्ट्या! दिष्ट्या! आर्यपुत्र! दृष्टोऽसि दृष्टोऽसि, कुत्रेदानीं गच्छसि? आर्य! दर्भाङ्कुरैर्विद्धो मे चरणः। तदपनयेतोऽथवा तिष्ठ, स्वयमेवापनेष्यामि। नाहं परपुरुषं स्पृशामि।

१. ख. ग. गच्छसि।

गन्धारः— (सबाप्पम्)

अस्याः क्षोणि! विधेर्वशादभिनवां संशिक्षयन्त्यास्त्वयि
भ्रान्तिं किं चरणौ चिरादतिखरैर्दम्भाङ्कुरैर्विध्यसि?
व्यापत्तौ वनितासु कर्तुमुचितस्ते पक्षपातः स्त्रियाः
पारुष्यं पुरुषः स नाम बिभृतां क्षोणीपतिर्नैषधः ॥१२॥

सपर्णः— (सरोषमुत्थाय) आः! शैलूषापसद! येनेयं पतिव्रता गहने वने
निर्निमित्तमग्राह्यनाम्ना चाण्डालेन परित्यक्ता, तमपि पापीयांसं
क्षोणीपतिमभिदधासि?

राजा— अमात्य! स्वस्थो भव, नाटकमिदम्।

(सपर्णः सलज्जमुपविशति)

नलः— (राजानं प्रति)

एनामरण्यभुवि मुक्तवतोऽपि दोषो-
न्मेषो नलस्य न मनागपि किन्तु तेषाम्।

गन्धार— (अश्रुपूर्ण नेत्रों से)

हे वसुन्धरे! प्रारब्धवश देर से नवीन भ्रमण करने की शिक्षा प्राप्त करती हुई
तुम्हारे ऊपर पड़ने वाली दमयन्ती के पैरों में तुम अत्यन्त कठोर कुशाङ्कुरों को क्यों
चुभा रही हो, (क्योंकि) स्त्रियोंपर आई हुई विपत्ति में उसका पक्षपाती होना ही तुम्हारे
लिए उचित है और कठोरता को तो, वह पुरुष धारण करे, जो निषधदेश का राजा
नल है ॥१२॥

सपर्ण— (क्रोध के साथ उठकर) अरे नट नीच! जिस, नाम नहीं लेने योग्य
चाण्डाल, के द्वारा घने वन में यह पतिव्रता छोड़ दी गई, उस पापी (दुष्टात्मा) को
भी भूपति कह रहे हो?

राजा— सचिव! प्रसन्न होओ, यह तो नाटक है।

(सपर्ण लज्जित होकर बैठ जाता है)

नल— (राजा के प्रति)

इस (दमयन्ती) को जंगल की भूमि पर छोड़ते हुए भी नल का अंशमात्र में
दोष नहीं है, अपितु उन लोगों का दोष है—

राजा- (सभयम्) येऽस्या एतामवस्थामवलोकयन्ति?

नलः- नहि नहि

यैरेष कल्मषमयो न कृतस्तदानी-

मेवाग्निसादपनयैर्हतलोकपालैः ॥१३॥

राजा- (सरोषम्) बाहुक! वृथा भगलवतो लोकपालानुपालम्भसे। ननु नलं पश्यन्तोऽपि पापेनोपलिप्यन्ते लोकपालाः, किं पुनर्व्यापादयन्तः?

पिङ्गलकः- (सास्त्रम्) (१) अज्जे! न य से पाविट्ठे तुह पदी, किं पुण एसा पडिच्छाया।

दमयन्ती- (२) अज्ज! एसा मम ज्जेव पडिच्छाया, न उण अज्जउत्तो? ता किं सच्चकं ज्जेव परिचत्तम्हि?

(आत्मानमवलोक्य सखेदम्)

राजा- (भय से साथ) तो जो इसकी इस दशा को देख रहे हैं?

नल- नहीं, नहीं—

जिस नीति रहित हतभाग्य वाले दिक्पालों के द्वारा उस पापमय को उस समय में अग्निसात् नहीं किया गया (अर्थात् जलाकर भस्म नहीं कर डाला) ॥१३॥

राजा- (क्रोध के साथ) बाहुक! दिक्पाल देवों को बेकार उलाहना दे रहे हो। वस्तुतः नल को देखते हुए भी वे दिक्पाल पाप से लिप्त हो रहे हैं, तो फिर उनका दोष क्यों कह रहे हो?

पिङ्गलक- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) आर्ये! यह तुम्हारा अधम स्वामी नहीं है, अपितु तुम्हारी परछाई है।

दमयन्ती- आर्य! यह मेरी ही परछाई है, आर्यपुत्र नहीं? तो क्या वस्तुतः मैं छोड़ दी गई हूँ?

(अपने आप को देखकर खेद के साथ)

(१) आर्ये! न च स पापिष्ठस्तव पतिः, किं पुनरेषा प्रतिच्छाया।

(२) आर्य! एषा ममैव प्रतिच्छाया न पुनरार्यपुत्रः? तत् किं सत्यमेव परित्यक्तास्मि?

मुक्ताहार! विहारमातनु ननु स्वैरं क्वचित् साम्प्रतं
 पुष्पापीड! किमद्य पीडयसि मे सीमन्तसीमाङ्गणम्?
 मञ्जीराणि! रणन्ति किं श्रवणयोः पुष्णीथ दुःस्थां व्यथां?
 त्यक्त्वा तेन यदर्थमर्थितवती युष्मासु मैत्रीमहम्॥१४॥

राजा- (सरभसमुत्थाय) पतिव्रते! पतिव्रते! विशरारूणि प्रायेण
 शरीरिप्रेमाणि। विशेषतस्तव तस्य भर्तुरकुलीनस्य। तदलममुना गवेषितेन।
 अस्माकमभ्यर्णमुपैहि। इतः प्रभृति नस्तत्रभवती देवता वा माता वा सुता
 वा।

सपर्णः- देव! कोऽयं व्यामोहः? ननु विज्ञप्तं मया देवाय
 नटविभीषिकेयम्। सिंहासनालङ्करणेन प्रसादः क्रियताम्।

(राजा सविलक्षमुपविशति)

नलः- (सखेदमात्मगतम्)

ऐ मुक्ताहार! अब अन्यत्र अपनी इच्छानुसार क्रीड़ा का विस्तार करो। ऐ
 पुष्पापीड! मेरी माँग रूपी आङ्गन में अब तुम क्यों पीड़ा दे रही हो? ऐ नूपुरो! अत्यन्त
 कष्टकारी पीड़ा को बढ़ाने के लिए कानों में ध्वनि क्यों कर रहे हो? (क्योंकि जिसके
 लिए मैंने तुम लोगों से मित्रता की प्रार्थना की थी, उसी ने मेरा त्याग कर दिया
 है॥१४॥

राजा- (शीघ्रता से उठकर) पतिव्रते! पतिव्रते! कदाचित् शरीरधारियों का प्रेम
 (स्नेह) टूट ही जाता है। विशेषकर तुम्हारे उस अकुलीन पति का। इसलिए (उसको)
 इस प्रकार से खोजना व्यर्थ है। हमारे घर चलो। वहाँ आपकी देवता, माता, पुत्री
 प्रभृतिजन हैं।

सपर्ण- महाराज! यह कैसी व्याकुलता है? मैंने आपसे पहले ही कह दिया
 है कि यह नटों का डराने का साधन है। सिंहासनारूढ़ होकर प्रसन्नता को प्राप्त करें।

(राजा विस्मयान्वित सा बैठ जाता है)

नल- (खेदपूर्वक अपने मन में)

टिप्पणी- आपीड, शेखर, 'शिखास्वापीडशेखरौ'- इत्यमरः।

मातः प्रसीद वसुधे! विहितोऽञ्जलिस्ते

पातालमूलपथिकं विवरं प्रयच्छ।

आशीर्लताशतघनेषु फणीन्द्रवक्त्र-

कोणाश्रमेषु ननु येन भवामि शान्तः॥१५॥

दमयन्ती- (किञ्चित् परिक्रम्य) (१) कथं मज्झणहो वट्टदि? न सब्केमि दिणेसरतावसंतावेण परिवक्कमिटुं।

(ऊर्ध्वमवलोक्य सबाष्पम्)

हा देव दिणेसर! किं दहेसि किरणेहिं देहदहणेहिं?

जइ सो निशढाहिवई अदयमणो किं तुहं पि तहा?॥१६॥

राजा- (सरभसं दमयन्तीं प्रति)

आः स्त्रीरत्न! पतिव्रते! शठमतेः क्रूरस्य दुष्टात्मनः

पत्युस्तस्य पुनः पुनः सकलुषां मा मा गृहाणाभिधाम्।

माँ वसुन्धरे! प्रसन्न हो जाओ, तुम्हारे लिए करसंपुट जोड़ता हूँ कि पाताललोक में जाने के लिए पथिक नल को बिल (मार्ग) दो, जिससे अयाचित सुख की कामना रूपी लता से सघन शेषनाग के झुके हुए फण रूपी आश्रम में मैं निश्चय ही शान्त (निस्तब्ध) हो जाऊँ॥१५॥

दमयन्ती- (थोड़ा घूमकर) क्या दोपहर हो गई? सूर्य के तेज से सन्तप्त मैं चलने में समर्थ नहीं हूँ।

(ऊपर की ओर देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से)

हे भगवान् सूर्य! शरीर को जलाने वाली किरणों से (तुम मुझे) क्यों जला रहे हो? यदि वह निषधदेश का राजा नल निर्दयी हो गया, तो क्या तुम भी वैसे ही हो गये हो?॥१६॥

राजा- (शीघ्रता से दमयन्ती के प्रति)

(१) कथं मध्याह्नो वर्तते? न शक्रोमि दिनेश्वरतापसन्तापेन परिक्रमितुम्।

हा देव दिनेश्वर! किं दहसि किरणैर्देहदहनैः?

यदि स निषधाधिपतिरदयमनाः किं त्वमपि तथा?॥१६॥

तन्नामश्रवणाद् वयं च निखिला पर्षच्च सेयं नटा-

श्रीतेऽसौ ननु बाहुकश्च महता पापेन संलिप्यते।।१७।।

नलः- (सरोषम्) किमिदमपरिज्ञातमुच्यते देवेन। क्रूरचक्रवर्ती नलोऽस्मि, योऽहमकाण्डे देवीमेकाकिनीं गहने वने निर्लज्जः सन्त्यजामि। तस्य महत्यापि पाप्मनि का किलाशङ्का?

राजा- (ससम्भ्रमम्) कस्त्वमसि?

नलः- (स्वगतम्) कथं विषादमूर्च्छालेन मयाऽऽत्मा प्रकाशितः! भवतु, (प्रकाशम्) बाहुकसूपकारोऽस्मि।

राजा- तत् किं नलोऽस्मीत्युक्तवानसि?

नलः- किमहं नलोऽस्मीत्युक्तवानुतानुक्तमपि नाट्यरसाकुलितचेता देव एवमशृणोत् इति सन्देहः।

राजा- ध्रुवमहमस्मि भ्रान्तः। अपरथा क्व स महाराजनिषधस्यापत्यं दर्शनीयरूपो नलः, क्व भवान् सर्वाङ्गविकृतिः?

हे स्त्रीरत्न! हे पतिव्रते! उस शठबुद्धि वाले क्रूर दुष्टात्मा पति का बार-बार नाम लेकर तुम पाप का ग्रहण मत करो, मत करो, उस दुष्टात्मा के नाम को सुनने से हम यह सम्पूर्ण सभा, ये नट लोग और यह बाहुक, महान् पाप से युक्त हो रहे हैं।।१७।।

नल- (क्रोध के साथ) नहीं जाने गये की तरह महाराज यह क्या कह रहे हैं। क्रूरों का सम्राट् मैं नल हूँ, जिस निर्लज्ज ने अकारण घने वन में देवी को अकेली छोड़ दिया। उसके नाम के श्रवण से महान् पाप होगा इसमें भी सन्देह है क्या?

राजा- (घबराहट के साथ) तुम कौन हो?

नल- (मन ही मन) तो क्या खिन्नता जन्य मोह के व्याज से मैंने स्वयं को प्रकट कर दिया? अच्छा (प्रकट में) मैं रसोई का कार्य करने वाला बाहुक हूँ।

राजा- तब नल हूँ इस प्रकार से क्यों कहा?

नल- मैं क्या नल हूँ, ऐसा कहा अथवा मैं नल नहीं हूँ, फिर भी महाराज ने जो यह सुना कि 'मैं नल हूँ' इस सन्देह का कारण नाट्यरस से उत्पन्न महाराज के चित्त की व्याकुलता है।

राजा- निश्चय ही मैं भ्रम में पड़ गया हूँ नहीं तो, महाराज निषध के कुल में उत्पन्न देखने योग्य रूप-सौन्दर्य वाला वह नल कहाँ? और समस्त अङ्गों के वक्र होने से कुरूप आकृति वाले आप कहाँ?

नलः- (ऊर्ध्वमवलोक्य स्वगतम्)

कल्पान्तकल्पमुपकल्प्य महो दिनेश!

मां भस्मसात् कुरुतरामचिराय पापम्।

विश्वासघातजनितेन न चेदनेन

पापेन हन्त! नियतं परिगृह्यसे त्वम्॥१८॥

पिङ्गलकः- (१) अज्जे! यदि दिणेशलकिलणेहिं अदिचिलं संताविदा
सि, ता एदम्मि सहयालनिकुंजे पविश।

गन्धारः- (पुरो भूत्वा) इत इत आर्या।

(सर्वे परिक्रामन्ति)

(विलोक्य सभयं निवृत्त्य च) आर्ये! निवर्तस्व निवर्तस्व।
चिरप्ररूढगाढबुभुक्षाक्षामकुक्षिः प्रतिनादमेदुरेण क्ष्वेडानिनादेन समन्ततः
शोषयन् वन्यस्तम्बेरमाणां मदजलानि करालजिह्वाजटालवक्त्रकुहरस्तरुण-

नल- (ऊपर देखकर अपने मन में)

हे भगवान् सूर्य! सृष्टि का अन्त करने में समर्थ (होने वाले) तेज को सञ्चित करके मुझ पापी को शीघ्र भस्म कर डालो, विश्वासघात करने के लिए जन्म लिए हुए इस अधम को यदि तुम भस्म नहीं करते हो, तो खेद है कि तुम निश्चय ही (इस अधम को) पकड़ रहे हो॥१८॥

पिङ्गलक- आर्ये! यदि सूर्य की किरणों से अत्यधिक सन्ताप (का अनुभव कर रही) हो, तो इस आग्निवृक्ष के झुण्ड में प्रवेश करो।

गन्धार- (आगे होकर) इधर से आर्या, इधर से।

(सभी घूमते हैं)

(देखकर के भय के साथ रुककर) आर्ये! रुक जाओ। अधिक बढ़े हुए भूख के कारण कृश उदर वाला गम्भीर प्रतिध्वनि के शोरगुल से जंगली हाथियों के मदजल को पूरी तरह से सुखाता हुआ भयंकर जिह्वा और केश रूपी जटाओं से युक्त मुख-

(१) आर्ये! यदि दिनेश्वरकिरणैरतिचिरं सन्तापिताऽसि, तदेतस्मिन्
सहकारनिकुञ्जे प्रविश।

गुञ्जापुञ्जारुणेक्षणः प्रतिक्षणं लोललाङ्गुलदण्डेन साटोपमाच्छोटयन्नवनि-
पीठमेकः केशरिक्शोरः सहकारनिकुञ्जाभ्यन्तरमधिवसति।

दमयन्ती-(१) अज्ज! मज्झे केसरी चिद्धदि? दिद्धया करिस्सदि मे
दुक्खमोक्खं।

(पिङ्गलको विलोक्य सभयं नश्यति)

दमयन्ती-(२) भोदु, उवसप्पामि णं।

नलः- (विलोक्य ससम्भ्रममात्मगतम्) कथं देवीं पञ्चाननो
व्यापादयितुमपक्रान्तः? हा! हतोऽस्मि। (विमृश्य) वीराग्रणीः खल्वसौ
तदमुं सामप्रयोगेण वारयामि।

(सरभसमुत्थाय)

एकाकिन्यबला वियोगविद्युरा घोरान्तरप्रान्तर-
क्षोणीपादविहारनिष्ठितवपुस्त्वग्मांसरक्तस्थितिः।

विवर वाला नये गुञ्जा लता में फलने वाले लाल-लाल बेरों सदृश लाल नेत्रों वाला
प्रत्येक क्षण चञ्चल पूँछ रूपी डण्डे से गर्व के साथ पृथिवी को खोदता हुआ सिंह
का बच्चा आम्रवृक्ष के झुण्ड के मध्य में रहता है।

दमयन्ती- आर्य! मध्य में सिंह ठहरा है? तो भाग्य से (वह) मेरे दुःख को
दूर कर देगा।

(पिङ्गलक देखकर के भयपूर्वक छिप जाता है)

दमयन्ती- अच्छा, इसके समीप जाती हूँ।

नल- (देखकर के घबड़ाहट के साथ अपने मन में) क्या देवी को मारने के
लिए सिंह दूर हट गया? ओह, मैं मारा गया। (विचार कर) निश्चय ही वह वीरों में
श्रेष्ठ है, अतः इसको साम नीति के प्रयोग से रोकता हूँ।

(शीघ्रता से उठकर) हे सिंह! यमराज के मुख-विवर में भेजी गयी भयावह
जनशून्य मार्ग पर भ्रमण करने का अभ्यास करती हुई इस चमड़ा, मांस और रक्त

(१) आर्य! मध्ये केसरी तिष्ठति? दिष्ट्या करिष्यति मे दुःखमोक्षम्।

(२) भवतु, उपसर्पाम्येनम्।

टिप्पणी- 'कण्ठीरव' कण्ठीरवो मृगरिपुः'

अस्यां कालकरालवक्त्रकुहरे प्रस्थापितायां हरे!

किं शौर्यं भवतोऽतिशायि भविता को वा बुभुक्षाक्षयः ॥१९॥

(विलोक्य) कथं साम्ना न विरमति? भवतु दानप्रयोगं दर्शयामि।

अथ तीव्रक्षुधा सत्यमौचित्यमतिवर्तते।

मुञ्चैनां तर्हि मां भुङ्क्ष्व पतितोऽस्मि तथा(वा)ऽग्रतः ॥२०॥

(इति रङ्गभूमौ पतितुमिच्छति)

राजा- अलमलमतिसम्भ्रमेण। बाहुक! ननु नाट्यमिदम्।

नलः- (सलज्जमात्मगतम्) किमिदं मया शोकव्याकुलेन व्यवसितम्? भवतु। (प्रकाशम्) देव! करुणारसातिरेकेण विस्मारितोऽस्मि।

दमयन्ती- (उपसृत्य कण्ठीरवं प्रति)

मां वा प्रीणय नैषधस्य नृपतेः काञ्चित् प्रवृत्तिं दिश-

न्नात्मानं यदि वा दिवाकरकरैर्भृष्टेन देहेन मे।

(खून) से युक्त शरीरवाली वियोग से व्याकुल अकेली स्त्री (को मार देने) से क्या आपकी भूख शान्त हो जायेगी? अथवा आपके पराक्रम में कोई वृद्धि होगी? ॥१९॥

(देखकर) साम प्रयोग (शान्ति उपाय) से (वह) क्यों नहीं विरत होता है? अच्छा, तो दान का प्रयोग दिखाता हूँ।

यदि भूख की उत्कट क्षुधा सत्य के औचित्य का उल्लंघन (अतिक्रमण) कर रही है, तो मैं तुम्हारे आगे गिरता हूँ मुझे खा लो और इस (दमयन्ती) को छोड़ दो ॥२०॥

(यह कहकर रङ्गमञ्च पर गिरना चाहता है)

राजा- अधिक घबड़ाहट व्यर्थ है। बाहुक! यह तो अभिनय है।

नल- (लज्जित होकर अपने मन में) शोक से व्याकुल मैंने यह क्या किया? अच्छा, (प्रकट में) महाराज! करुण रस के आधिक्य से मैं भुला दिया गया हूँ।

दमयन्ती- (पास जाकर सिंह से)

हे सिंह! निषधाधिपति नल के किसी समाचार का निर्देश करते हुए या तो मुझे प्रसन्न करो अथवा मेरे सूर्य की किरणों से भुने हए शरीर से स्वयं को, यही दो मार्ग

टिप्पणी- 'हरे' — 'केसरी हरिः' इत्यमरः।

द्वावप्यद्य पथाविमौ मम मनःप्रीत्यै ततस्ते प्रियं

यत् पुष्पात्यचिरात् तदाचर हरे! मा स्माभिश्चाङ्गं कृथाः ॥ २१ ॥

(विलोक्य) (१) कथं एस परम्मुहो जादो? न किंपि पडिवयणं पयच्छदि।

राजा- बाहुक! ध्रुवमयं मृगारिरेतस्याः पतिव्रताव्रतप्रभावेण प्रतिहतः।

नलः- (स्वगतम्) दिष्ट्या स्वयमेव प्रतिनिवृत्तमरिष्टम्। तदहमतः परमुत्थाय नाट्यं निवारयामि। येन मे पुनर्देवीविनिपातदर्शनं न भवति।

(ससंरम्भमुत्थाय साक्षेपम्)

अपारे कान्तारे व्यसनशतकीर्णे प्रतिदिशं

कियत्कृत्वः सत्त्वं स्फुरति भृशमस्याः फलति च।

नटा! नाट्यं हंहो! तदिह खलु कृत्वोपरमत

यतो द्रष्टुं स्त्रीणां वधविधिमयोग्याः क्षितिभुजः ॥ २२ ॥

(रास्ता) मेरे हृदय की प्रसन्नता के लिए हैं अतः जिससे तुम्हारी इच्छा पुष्ट (पूरी) होती है वह कार्य यथाशीघ्र करो, इसमें (किसी प्रकार की) चिन्ता मत करो ॥ २१ ॥

(देख करके) यह पराङ्मुख (अर्थात् कार्य से विरत) क्यों हो गया। कुछ भी उत्तर नहीं दे रहा है।

राजा- हे बाहुक! निश्चित ही इसके पतिव्रत्य के प्रभाव से परास्त हो गया है।

नल- (अपने मन में) सौभाग्य से यह शत्रु अपने आप ही लौट गया। अतः मैं यहाँ से उठकर अभिनय क्रिया को रोकता हूँ, जिससे पुनः देवी (दमयन्ती) वध का मुझे दर्शन न हो।

(वेग के साथ उठ करके आक्षेप करता हुआ)

सैकड़ों विघ्नों से युक्त निर्जन वन में प्रत्येक दिशा में इस (देवी दमयन्ती) का शक्तिशाली भद्रता और शुचिता का सर्वोत्तम गुण कितना अधिक चमक (फैल) रहा है और फल दे रहा है, अतः हे नट लोगो! अभिनय क्रिया से विरत हो जाओ (अर्थात्

(१) कथमेष पराङ्मुखो जातो? न किमपि प्रतिवचनं प्रयच्छति।

सपर्णः- (विहस्य) बाहुक! किमिदं पुनः पुनरात्मनो विस्मरणम्।
कथं नाट्यमपि साक्षात् प्रतिपद्यसे? तद् यथास्थानमुपविश।

दमयन्ती-(१) कथं एदिणा वि न मे दुःखमोक्खो कदो? ता
एयम्मि सहयारे अत्ताणं उब्बंघिय वावाएमि। (दिशोऽवलोक्य) हा
अज्जउत्त! एसा तए निक्कारणनिक्करुणेण परिच्चत्ता असरणा दमयन्ती
विवज्जदि। अंबाओ वणदेवयाओ! कधिह अज्जउत्तस्स एदं मह वि (व)
वसिदं। हा! अंब पुप्फवदीए! हा! ताय भीमरह! कहिं सि? देहि मे
पडिवयणं। (लतापाशं कण्ठे बध्नाति)

राजा- (सरभसमुत्थाय) भगवति पतिव्रते! अलमात्मनो विघातेन।

सपर्णः- बाले! किमिदमकृत्याचरणम्?

जीवलकः- आर्ये! नार्हसि नवे वयसि दुरात्मनः स्वपतेर्निमित्तमकाण्डे
प्राणान् परित्यक्तुम्।

अभिनय समाप्त करो), क्योंकि स्त्रीवध के विधान को देखने में राजसमूह समर्थ नहीं
है।।२२।।

सपर्ण- (हँसकर) बाहुक! बार-बार अपने आप को क्यों भूल जाते हो? क्यों
अभिनय को वास्तविक मानते हो? अतः अपने स्थान पर बैठ जाओ।

दमयन्ती- इसने भी मेरी पीड़ा को दूर नहीं किया। अतः इस आभ्रवृक्ष में अपने
आप को बाँधकर आत्मवध करती हूँ। हा आर्यपुत्र! तुम निर्दयी द्वारा बिना कारण त्याग
दी गई यह असहाय दमयन्ती विपत्ति में पड़ी है। माँ वनदेवियों! मेरे द्वारा किये गये
इस संकल्प को आर्यपुत्र से कहो। हा माँ पुष्पवति! हा पिता भीमरथ! कहाँ हो? मुझे
जवाब दो।

राजा- (शीघ्रता से उठकर) भगवति! पतिव्रते! आत्मवध से कोई लाभ नहीं।

सपर्ण- बाले! नहीं करने योग्य कर्म का आचरण क्यों कर रही हो?

जीवलक- आर्ये! अपने दुष्टात्मा पति हेतु अनायास नवीन युवा अवस्था में
प्राण का (जीवन का) त्याग करना उचित नहीं है।

(१) कथमेतेनापि न मे दुःखमोक्षः कृतः! तदेतस्मिन् सहकार आत्मानमुद्धृत्य
व्यापादयामि। हा! आर्यपुत्र! एषा त्वया निष्कारणनिष्करुणेन परित्यक्ताऽशरणा
दमयन्ती विपद्यते। अम्बा वनदेवताः! कथयतार्यपुत्रायैतन्मम व्यवसितम्। हा!
अम्ब पुष्पवति! हा! तात भीमरथ! कुत्रासि? देहि मे प्रतिवचनम्।

नलः- (ससम्भ्रममुच्चैःस्वरम्) देवि देवि! अलमलमतिसाहसेन। नार्हसि मामात्मनो वधेन दुरात्मानं कलङ्कयितुम्। अपि च निस्त्रिंशस्य निर्मर्यादस्य पापीयसः पत्याभासस्य मम कृते वृथा सतीचक्रावतंसमात्मानं व्यापादयसि।

गन्धारः- (विलोक्य सभयसम्भ्रमम्) अये पिङ्गल! पिङ्गल! छिन्धि छिन्धि पाशमस्या यावदियमद्यापि श्वसिति।

(पिङ्गलकः सरभसं धावित्वा लतापाशं छिनत्ति। दमयन्ती मूर्च्छिता पतति)

पिङ्गल! ध्रुवमियमपश्यन्ती प्रियं क्वापि विपत्स्यते। तदिदानीमुत्पाट्य सार्थवाहाय समर्पयावः। (तथा कृत्वा निष्क्रान्तौ)

॥ गर्भाङ्कः ॥

राजा- परां काष्ठामधिरूढवान् करुणो रसः।

सपर्णः- देव! रसप्राणो नाट्यविधिः। वर्णार्थबन्धवैदग्धीवासितान्तः-
करणा ये पुनरभिनयेष्वपि प्रबन्धेषु रसमपजहति विद्वांस एव ते न कवयः।

नल- (वेग के साथ जोर से) देवि! देवि! अधिक दुःसाहस करने की आवश्यकता नहीं। अपने बध से मुझ दुष्टात्मा को कलङ्कित नहीं कर सकती हो। और भी, कठोर उदंड, पापमय मुझ छाया रूपी स्वामी के लिए पतिव्रता पत्नियों की तरह आचरण करती हुई आत्मवध का प्रयास व्यर्थ कर रही हो।

गन्धार- (देख करके भय तथा घबड़ाहट के साथ) अरे पिङ्गल! अरे पिङ्गल! इसके फाँसी के बन्धन को काटो, काटो; जब तक कि यह अभी तक जीवित है। (पिङ्गलक शीघ्रता से दौड़कर लतापाश को काटता है मूर्च्छित दमयन्ती गिरती है)

पिङ्गलक- निश्चय ही अपने स्वामी को कहीं नहीं देखती हुई यह विपत्ति में पड़ी है। इसलिए इसे यहाँ से उठाकर झुण्ड के नेता को समर्पित करते हैं। (वैसा करके सभी रङ्गमञ्च से निकल जाते हैं)।

॥ गर्भाङ्कः ॥

राजा- करुण रस चरमोत्कर्ष को प्राप्त हो गया है।

सपर्ण- अभिनेय काव्य का प्राण रस (ही) है। (अतः) कथावस्तु की योजना में शब्दार्थ की चाहता से अपहृत अन्तःकरण वाले जो अभिनेय काव्य में (वर्ण-वैचित्र्य के द्वारा) रस को तिरोहित कर देते हैं वे विद्वान् तो हैं, किन्तु कवि नहीं।

न तथा वृत्तवैचित्री श्लाघ्या नाट्ये यथा रसः।

विपाककप्रमप्याप्रमुद्वेजयति नीरसम्॥२३॥

राजा— (स्मृत्वा) बाहुक! 'देवि! नाहमात्मनो विघातेन कलङ्कयितव्यः' इत्यभिदधानो नल इव लक्ष्यसे। तत् कथय परमार्थं समर्थय नः प्रार्थनाम्। कस्त्वमसि? किमर्थं च दुःस्थावस्थः?

(प्रविश्य)

प्रतीहारः— देव! विदर्भाधिपतिप्रेषितो भद्राभिधानः पुरुषो द्वारि वर्तते।

राजा— (ससम्भ्रमम्) शीघ्रं प्रवेशाय।

प्रतीहारः— यदादिशति देवः

(इत्यभिधाय निष्क्रान्तः। प्रविश्य भद्रः प्रणमति)

राजा— भद्र! किमर्थं भवत्प्रेषणेनास्मान् विदर्भाधिपतिः पवित्रितवान्?

अभिनेय काव्य में जिस प्रकार रस प्रशंसनीय है उस प्रकार से कथावस्तु-वैचित्र्य नहीं, (क्योंकि) पूर्ण रूप से नहीं हुआ सुन्दर भी किन्तु नीरस आम उद्वेग ही उत्पन्न करने वाला है॥२३॥

राजा— (स्मरण करके) बाहुक! 'देवि! आत्मवध के द्वारा हमें कलङ्कित न करें' इस प्रकार से कहते हुए नल की तरह प्रतीत होते हो। अतः हमारी प्रार्थना को सफल करो और वास्तविकता को कहो। तुम कौन हो? किस हेतु इस विपत्तिग्रस्त अवस्था को (प्राप्त किये हो)?

(प्रवेश कर)

प्रतीहार— महाराज! विदर्भनरेश द्वारा भेजा गया भद्र नामक पुरुष द्वार पर स्थित है।

राजा— (वेग के साथ) शीघ्र प्रवेश कराओ।

प्रतीहार— महाराज की जैसी आज्ञा।

(यह कहकर निकल जाता है। पश्चात् प्रवेश करके भद्र प्रणाम करता है)

राजा— भद्र! विदर्भाधिपति ने किस हेतु आपको भेजकर हमें पवित्र किया?

भद्रः- महाराज! भीमरथस्य प्राणेभ्योऽपि प्रिया पुत्री समस्ति।

नलः- (ससम्भ्रमम्) सा खलु दमयन्ती।

भद्रः- ततस्तस्याः प्रातः स्वयंवरविधिं विदर्भाधिपतिर्विधास्यति।

नलः- (स्वगतम्) अहो! धर्मविप्लवः। (पुनः सरोषम्) आः कृतान्तकटाक्षितो मयि प्राणति दमयन्तीं कः परिणोष्यति?

राजा- ततः किम्?

भद्रः- तथा कथञ्चन प्रयतितव्यं यथा श्वः स्वयंवरमण्डपमयोध्याधिपतिरलङ्करोति।

राजा- भद्र! शतयोजनप्रमाणमध्वानं किमेकयैव त्रियामया वयं लङ्घयितुमलम्भूष्णवः?

नलः- (स्वगतम्) अहं तत्र गत्वा धर्मविप्लवं निवारयामि। (प्रकाशम्) देव! मा भैषीः, अहं ते सर्वं समञ्जसमाधास्यामि।

राजा- भद्र! 'एते वयमागता एव' इति निवेदय विदर्भाधिपतेः।

भद्र- महाराज! अपने प्राण से भी प्यारी भीमरथ की एक पुत्री है।

नल-(धबड़ाहट के साथ) निश्चय ही वह दमयन्ती है।

भद्र- अतः विदर्भनरेश भीमरथ कल प्रातःकाल उसके स्वयंवर सभा का अनुष्ठान करेंगे।

नल- (अपने मन में) ओह, यह तो धर्म के लिए उपद्रव उठ खड़ा हुआ। ओह दुर्दैव से तिरस्कृत मेरे जीवित रहते दमयन्ती से कौन विवाह करेगा?

राजा- तो क्या?

भद्र- आप कोई वैसा प्रयत्न कीजिये जिससे कल स्वयंवरसभा को अयोध्या के नरेश सुशोभित करें।

राजा- भद्र! चार सौ कोस की दूरी वाले मार्ग को एक रात्रि में तय करने में हम कैसे समर्थ हो सकते हैं?

नल- (मन ही मन) मैं वहाँ जाकर धर्म के लिए उत्पन्न इस विघ्न को रोकूँगा। (प्रकट में) महाराज! डरें नहीं, मैं आपकी सारी समस्याओं का निदान करूँगा।

राजा- भद्र! 'हम आ ही गये' ऐसा विदर्भ नरेश से कहो।

भद्रः— यथादिशति देवः (इत्यभिधाय निष्क्रान्तः)

राजा— (ऊर्ध्वमवलोक्य) कथमस्तं गतो गभस्तीनामधिपतिः?
कथारसास्वादोपहतचेतोभिरस्माभिः सन्ध्याविधिरप्यतिलङ्कितः।

(नेपथ्ये)

प्रविशन्तीं कैरविणीं सन्ध्यारागानले विरहदुःखात्।

कुवलयपतिरयमेष प्रतिषेद्भुमिवोर्ध्वकर एति॥२४॥

राजा— कथमेष बन्दी चन्द्रोदयं पठति? अमात्य! त्वं स्वं नियोगमशून्यं कुरु। वयमपि सकलदेवताधिचक्रवर्तिनो भगवतो नाभिनन्दनस्य सन्ध्यासपर्याविधिमनुष्ठातुं प्रतिष्ठामहे।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥ षष्ठोऽङ्कः ॥

भद्र— महाराज की जैसी आज्ञा (यह कहकर चला जाता है)।

राजा— (ऊपर की ओर देखकर) तो क्या किरणों के स्वामी सूर्य अस्ताचल को चले गये? नाट्य के कथा रसास्वादन में अपहत चित्त वाले मेरे द्वारा सन्ध्योपासना क्रिया का भी उल्लंघन हो गया।

(नेपथ्य में)

वियोगजन्य दुःख के कारण सन्ध्या कालीन लालिमा रूपी अग्नि में प्रवेश करती हुई कुमुदिनी को मानो निषेध (मना) करने के लिए ऊपर उठे हाथ (किरणों) वाला यह चन्द्रमा आ ही रहा है॥२४॥

राजा— यह क्या, चारण तो चन्द्रोदय का पाठ (वर्णन) करता है? सचिव! तुम अपना कार्य सम्पन्न करो। हम भी समस्त देवों में श्रेष्ठ भगवान् ब्रह्मा के लिए सन्ध्या वन्दन करने के लिए जा रहे हैं।

(यह कहकर सभी चले जाते हैं)

॥ षष्ठ अङ्क समाप्त ॥

सप्तमोऽङ्कः ।

(ततः प्रविशति रथेन राजा बाहुकश्च)

राजा- बाहुक! प्रभातप्राया त्रि^१यामिनी।

सहस्रांशोर्घाम्नां दिशि दिशि तमोर्गर्भितमिदं
कुलायेभ्यो व्योम्नि व्रजति कृतनादं खगकुलम्।
दवीयस्तामेतान्यपि जहति युग्मानि शनकै
रथाङ्गानामस्यां सपदि वरदायास्तटभुवि।।१।।

अपि च यथा पुरः प्राकारनगरागारसन्निवेशाः समुन्मीलन्ति तथा
जाने प्राप्तः पताकी कुण्डिनस्य परिसरम्।

नलः- (स्वगतम्) अहो! दिव्यस्य तेजसः सोऽप्यपूर्वः प्रभावः।
स्मरणमन्त्राभिमन्त्रितमात्रोऽपि तातस्तथा कथञ्चन वाजिनोऽधिष्ठितवान्
यथा जवेन पवनमपि पराजयते। (सहर्षम्) चिरादद्य देवीं द्रक्ष्यामीति
हर्षप्रकर्षेण पुलककोरकितगात्रोऽस्मि। (पुनः सविषादम्) यदि वा-

(पश्चात् रथारूढ राजा और बाहुक प्रवेश करता है)

राजा- बाहुक भोर हो गया।

अन्धकार के गर्भ में पड़ा हुआ यह पक्षी-समूह घोंसलों से निकलकर कलरव
ध्वनि करता हुआ सूर्य के प्रकाश वाले आकाश की प्रत्येक दिशा में (उड़कर) जा
रहा है। धीरे-धीरे वरदा नदी के तट पर चक्रवाक पक्षियों के यह जोड़े भी शीघ्रता
से (अपनी) पारस्परिक दूरी को छोड़ रहे हैं।।१।।

और भी, जैसा कि चहारदीवारी से (युक्त) नगर के भवन-समूह दिखाई पड़
रहे हैं, उससे तो यही ज्ञात होता है कि हम ध्वजा से अलंकृत कुण्डिन नगरी के प्रान्त
भाग में पहुँच गये हैं।

नल- (मन ही मन) ओह, दिव्य तेज का प्रभाव भी विलक्षण है। केवल स्मरण
मन्त्र से अभिषिक्त होकर सूर्यदेव हर प्रकार से वैसे रथ पर आरूढ़ हुए हैं, जो अपनी
गति से वायु को भी पराजित कर रहे हैं। (प्रसन्नतापूर्वक) आज बहुत दिन के बाद

१. क. त्रियामा।

त्यक्ता यद् विपिने वनेचरघने निद्रालुरेकाकिनी
तत् त्यक्त्वापि न जीवितं रहितवानस्मि प्रियप्राणितः।
एतेनाद्भुतकीर्तिमुन्नमयता विस्फूर्जितेनोजितं
वक्रं दर्शयितुं श्रपाकचरितस्तस्याः कथं स्थं सहः? ॥२॥

अपि च—

अपकृत्योपकार्येषु ये भवन्त्यर्थिनः पुनः।
तेषु मन्ये मनुष्यत्वं विधेर्वार्धकविक्रिया ॥३॥

राजा— बाहुक! क्वचिदपि प्रदेशे पताकिनं विधृत्य मार्गश्रमपनयामः।

नलः— (विलोक्य साशङ्कम्) देव! किमिदं स्वयंवरविधिविरुद्ध-
मतिकरुणमालोक्यते? तथाहि—

आक्रन्दः श्रुतिदुर्भगः प्रतिदिशं बाष्पार्द्रगण्डस्थलो
लोकः सर्वत एष वेषघटना पौरेषु शोकोन्मुखी।

देवी (दमयन्ती) को देखूँगा, अतः हर्षाधिक्य से मैं रोमाञ्चित शरीर वाला हूँ। (पुनः
खेद के साथ) अथवा—

हिंसक जीवों से व्याप्त वन में जो अकेली छोड़ी गई उस (दमयन्ती) ने जीवन
का त्याग नहीं भी किया, (तो भी मैं उस) प्रियप्राणी से रहित हो गया हूँ। (तथा)
इस (दमयन्ती के) त्याग से बढ़ने वाली अपकीर्ति से सुन्दर मुख को उसको दिखाने
में हम चाण्डाल कैसे समर्थ (हो सकते) हैं? ॥२॥

उपकार्य में अपकार (अर्थात् जो करना चाहिये उसे न) करके पुनः जो लोग
याचना करने वाले होते हैं, मैं तो यही मानता हूँ कि उसमें मनुष्यत्व का होना विधि
का वार्धक्य अवस्थाजन्यदोष (ही) है ॥३॥

राजा— बाहुक! किसी स्थान पर छत्र का आश्रय कर हम मार्गजन्य थकान दूर
करते हैं।

नल— (देखकर सन्देह के साथ) देव! स्वयंवर अनुष्ठान के विपरीत अत्यन्त
कष्टकारक यह क्या देख रहे हैं? जैसा कि—

प्रत्येक दिशा में श्रवणेन्द्रियों के लिए अत्यन्त-कष्टदायक करुण-विलाप (तथा)
अश्रुओं से भीगे कपोल प्रदेश वाले पूर्णतः शोकाकुलजन नगर में आवास द्वार पर

विश्रान्ताखिलगीतवाद्यविधयः सङ्गीतशालाभुवो
वार्ताक्षिप्तजनस्य पुञ्जिभिरितः पर्याकुला वीथयः ॥४॥

राजा— (विलोक्य) बाहुक! यथाऽयं मन्दमन्दरुदितः ससंरम्भमितस्ततः
परिधावति पौरलोकस्तथा जाने सम्प्रत्येव कोऽपि विपत्स्यते।

इतः प्रारभ्यन्ते निचितचितयः पश्य भृतकैः

प्रयाति प्रत्याशं विषमतमतूर्यध्वनिरितः।

द्विजन्मानोऽप्येते निधनघनविच्छेदचकिताः

ससंरम्भं धावन्यपरिचितशूकास्तत इतः ॥५॥

नलः— देव! एतं वृद्धब्राह्मणं पृच्छामि।

(ततः प्रविशति गृहीतयष्टिर्गमनाकुलचेता वृद्धो ब्राह्मणः)

(उपसृत्योच्चैःस्वरम्) आर्याय!

ब्राह्मणः— नियोजयतु यजमानः।

एकत्रित (हो रहे) हैं। संगीतशाला में होने वाली समस्त गीति और वाद्ययन्त्रों का बजना बन्द हो चुका है (तथा) इधर परस्परवार्ता करते हुए लोगों की भीड़ से गलियाँ व्यस्त (भरी हुई) हैं ॥४॥

राजा— (देख करके) बाहुक! जिस तरह से धीरे-धीरे रोते हुए नगर वासी शीघ्रता के साथ इधर-उधर दौड़ रहे हैं, उससे तो यही लगता है कि कोई विपत्ति में पड़ा है।

देखो, इधर नौकर-चाकर लकड़ी को एकत्रित कर चिता बना रहे हैं। इधर से तुरही (नामक वाद्य-विशेष) की अत्यन्त भयावह ध्वनि प्रत्येक दिशा में फैल रही है, करुणा से अनभिज्ञ ये ब्राह्मण लोग भी किसी की मृत्यु के कारण प्राप्त होने वाले धन के छूट जाने के भय से इधर-उधर शीघ्रता से दौड़ रहे हैं ॥५॥

नल— राजन्! इस वृद्ध ब्राह्मण से पूछता हूँ।

(पश्चात् लाठी पकड़े हुए जाने के लिए व्याकुल वृद्ध ब्राह्मण प्रवेश करता है)

(पास जाकर जोर से) आर्य, आर्य!

ब्राह्मण— यजमान आज्ञा करें।

नलः— वैदेशिकत्वादनभिज्ञोऽस्मि वृत्तान्तस्य, तत् कथय किमिदमतितरा करुणम्?

ब्राह्मणः— महाभाग! किं कथयामि मन्दभाग्यः? अकाण्डक्रोधसंरुद्ध-चेतसा वेधसा सर्वसंहारः प्रारब्धोऽद्य विदर्भपतिकुटुम्बस्य।

राजा— कथमिव?

ब्राह्मणः प्राणेभ्योऽपि प्रिया विदर्भभतुरिकैव पुत्री।

नलः— (स्वगतम्) तत् किं देवी विपन्ना? अतः परमपि विधिर्विकारं किं किमपि दर्शयिष्यति? (प्रकाशम्) तत् किं तस्याः?

ब्राह्मणः— अद्य प्रातरेकेन केनापि वैदेशिकेन राजकुले तत् किमपि प्रकाशितं येन सा चितामधिरोढुमध्यवसिता। पश्य पुरः पुरस्यादवीयसि देशे निकषा सहकारतरुखण्डं तस्याश्चित्तिर्वर्तते। अपरास्वप्येतासु तिसृषु तस्या एव परिकरलोकः प्रवेक्ष्यति। तदनुजानीहि मां प्राणात्यय-समयप्रवर्त्यमानदानप्रतिग्रहणार्थमुपगन्तुम्।

नल— परदेशी होने के कारण इस घटना से अनभिज्ञ हूँ, अतः कहिये कि यह अत्यन्त करुण विलाप क्यों (हो रहा है)

ब्राह्मण— मान्यवर! मन्दभाग्य मैं क्या कहूँ। अनवसर में क्रोध के कारण अवरुद्ध हृदय वाले विधाता ने आज विदर्भनरेश के सम्बन्धी का सर्वनाश उपस्थित कर दिया है।

राजा— वह कैसे?

ब्राह्मण— प्राण से भी प्यारी विदर्भपति भीमरथ की एक ही पुत्री है।

नल— (मन ही मन) तो क्या देवी दमयन्ती विपत्ति में पड़ी है? अतः इसके पश्चात् विधि का विशोभ क्या-क्या दिखायेगा? (प्रकट में) तो उसको क्या हुआ?

ब्राह्मण— आज प्रातःकाल कोई एक परदेशी ने राज परिवार में ऐसा कुछ कहा जिससे वह (दमयन्ती) चिता में जाने का निश्चय कर ली। देखो, सामने नगर के समीपवर्ती भाग में आम्रवृक्ष के समीप उसकी चिता है। तीन और भी चिता है जिसमें उसके परिजन प्रवेश करेंगे। इसलिए प्राणनाश के समय दान में दिये जाने वाले धन को लेने के लिये जाने की आज्ञा दें।

राजा—(सविचिकित्समात्मगतम्) अहो! सर्वातिशायी द्विजन्मनां निसर्गसिद्धो लोभातिरेको यदयमन्त्येऽपि वयसि वृथा वृद्धो निधनधनप्रतिग्रहान्न विरमति।

नलः— ब्रजस्व सिद्धये।

ब्राह्मणः— स्वस्ति महाभागाय (इत्यभिधाय मन्दं मन्दं निष्क्रान्तः)

राजा— बाहुक! विप्रलब्धाः केनापि वयं स्वयंवरसमाह्वानेन। तद् यावत् कोऽप्यस्मानुपलक्षयति तावदित एव स्थानान्निवर्तय पताकिनम्।

नलः— देव! क्षणमस्मिन्नेव स्थाने श्रमोऽतिवाह्यताम्, यावदहमप्रतो गत्वा सम्यग् निर्णयामि।

(राजा तथा करोति)

(परिक्रम्य विलोक्य) कथमियं देवी प्राणपरित्यागसमयोचितनेपथ्या चिताभ्यर्णे कपिञ्जला सह वर्तते! अयमपि कलहंसोऽसावपि खरमुख इयमपि मकरिका।

राजा— (आश्चर्यचकित सा अपने मन में) ओह! ब्राह्मणों का स्वभावतः सिद्ध लोभाधिक्य सभी का अतिक्रमण करने वाला है, जिसके कारण मरणकालीन दान के धन को ग्रहण करने से इस वृद्धा अवस्था में भी विरत नहीं होता है।

नल— कार्यसिद्धि (धन प्राप्ति) के लिए (आप) जाँय।

ब्राह्मण— मान्यवर का कल्याण होवे, (यह कहकर धीरे-धीरे निकल जाता है)।

राजा— बाहुक! स्वयंवर में बुलाने के बहाने हम किसी से ठगे गये हैं। अतः जब तक हमें कोई देख न ले उससे पहले इस स्थान से ही अपनी नगरी लौट चलें।

नल— देव! कुछ देर इसी स्थान पर थकान को दूर करें, जब तक कि मैं आगे जाकर इस पर ठीक-ठीक निर्णय लूँ।

(राजा वैसा ही करता है)

(धूमकर तथा देख करके) क्यों यह देवी (दमयन्ती) प्राणत्याग के समय के अनुकूल वस्त्र पहनकर कपिञ्जला के साथ चिता के समीप विद्यमान है? यह कलहंस, खरमुख और यह मकरिका भी है।

(ततः प्रविशन्ति यथानिर्दिष्टाः सर्वे)

दमयन्ती- (सास्रम्) (१) कपिञ्जले! पज्जालेहि जलणं जेण मे दुक्खमोक्खं करेदि।

कपिञ्जला-(२) भट्टिणि! विलंबेहिं विलंबेहिं कित्तियाइं पि दियहाइं, जाव भट्टा सव्वं सुद्धिं लहेदि। न हु पहियजणसंकहाओ अवितहाओ हवंति।

दमयन्ती-(३) कपिञ्जले! अलाहि विलंबेण। न हु एदं असुदपुव्वं वत्तं सुणीय पाणे धरेदुं सक्केमि। अवि य न हवंति अलियाओ असुहसंसिणीओ वत्ताओ।

नलः- (स्वगतम्) का पुनरशुभशंसिनी वार्ता? भवतु पृच्छामि। (उपसृत्य दमयन्तीं) आर्ये! किमर्थं त्रैलोक्याद्भुतभूतरूपसम्पत्तिपावनं वपुरात्मनो बह्वावाहुतीक्रियते? विरम विरमास्मादध्यवसायात्।

(पश्चात् यथानिर्दिष्ट सभी प्रवेश करते हैं)

दमयन्ती- (अश्रुपूर्ण नेत्रों से) कपिञ्जले! अग्नि जलाओ, जो मेरा दुःख दूर करेगा।

कपिञ्जला- स्वामिनि! रुको कुछ दिन रुको जब तक कि स्वामी सभी प्रकार की पवित्रता को प्राप्त कर लेते हैं। निश्चय ही पथिकजन की कथायें सत्य नहीं होती हैं।

दमयन्ती- कपिञ्जले! देर करने से क्या लाभ। निश्चय ही नहीं सुनने योग्य इस कथा (वृत्तान्त) को सुनकर मैं जीवन धारण करने में समर्थ नहीं हूँ। और भी, अशुभ को प्रकाशित करने वाली कथायें असत्य नहीं होती हैं।

नल- (अपने मन में) तो फिर अशुभ को प्रकाशित करने वाली वार्ता क्या है? अच्छा, पूछता हूँ। (समीप जाकर दमयन्ती से) आर्ये! तीनों लोक में अद्भुत रूप-

(१) कपिञ्जले! प्रज्वालय ज्वलनं येन मे दुःखमोक्षं करोति।

(२) भट्टि! विलम्बस्व विलम्बस्व कियतोऽपि दिवसान् यावद् भर्ता सर्वा शुद्धिं लभेत।

(३) कपिञ्जले! अलं विलम्बेन। न खल्वेतदश्रुतपूर्वं वृत्तं श्रुत्वा प्राणान् धारयितुं शक्नोमि। अपि च न भवन्त्यलीका अशुभशंसिन्यो वार्ताः।

दमयन्ती-(१) वेदेसिग! न संपदं अवसरो नियचरिदकहणस्स। ता
जदि दे दाणेण इच्छा ता गिण्ह, आहु अन्नदो वच्च।

कलहंसः- (उपसृत्य) वैदेशिक! शृणु वह्निप्रवेशनिमित्तम्।

नलं रन्तुं चेतस्तरलमनलं वाऽस्य विरहे
सतीभावो यस्यामथ च जगतां विश्रुततमः।
इयं सा क्षीराक्षी तदपि निषधक्षोणिपतिना
विना दोषोन्मेषादधिवनमपास्ता कथमपि॥६॥

नलः- आः! कथमद्य प्रातरेव चण्डालचरितस्य तस्य पापीयसो
निषधाभर्तुरभिधानं त्वया स्मारितोऽस्मि?

सौन्दर्य की श्री वाली अपने शरीर का अग्नि में आहुति क्यों दे रही हो। विरत हो जाओ, अपने इस दृढ़ निश्चय से विरत हो जाओ।

दमयन्ती- वैदेशिक! सम्प्रति आत्मजीवनी कहने का समय नहीं है। हाँ, यदि तुम दान लेना चाहते हो, तो दान ग्रहण करो अन्यथा अन्यत्र जाओ।

कलहंस- (पास जाकर) वैदेशिक! अग्नि में प्रवेश करने का कारण सुनो।

जिसका हृदय नल में रमण करने के लिये व्याकुल है अथवा इस (नल) के वियोग में अग्नि तुल्य है और लोक में जिसमें सतीत्व अत्यन्त प्रसिद्ध है। (यद्यपि) यह दूध के समान अत्यन्त पवित्र है तथापि वह निषधदेश के स्वामी नल के द्वारा कोई दोष दिखाये बिना किसी न किसी प्रकार वन के मध्य में छोड़ दी गई॥६॥

नल- ओह, क्यों आज प्रातःकाल ही चाण्डाल सदृश आचरण करने वाला उस महान् पापीष्ट, निषधदेश की रक्षा नहीं करने वाला नाम से कहा जाने वाला मैं तुम्हारे द्वारा स्मरण किया गया हूँ?

दमयन्ती- (क्रोधित हुए की तरह अपने मन में) वह दुर्मुख कौन है, जो आर्यपुत्र की निन्दा करता है! (प्रकट में) वैदेशिक! मैं पति के द्वारा जंगल में नहीं छोड़ी गई, किन्तु स्वयं मार्ग-भ्रष्ट हो गई।

(१) वैदेशिक! न साम्प्रतमवसरो निजचरितकथनस्य। तद् यदि ते दानेनेच्छा तद् गृहाणाथवाऽन्यतो ब्रज।

दयमयन्ती— (सरोषमात्मगतम्) (१) को एष दुम्भुहो अज्जउत्तं निंददि? (प्रकाशम्) वइदेसिग! नाहमरण्णे पइणा परिचत्ता, किन्तु सयं मग्गदो परिब्भट्ठा।

कपिञ्जला— (२) पहिय! जं कलहंसो कहेदि तं सच्चं।

कलहंसः— निषघाधिपतिरिदानीं विपन्न इति श्रूयते। तत इयं देवी चितामधिरोहति।

नलः—बाले! यस्त्वामेकाकिनीमनिमित्तमरण्ये त्यजति तदर्थमेतत् त्रिलोकीलोचनोत्सवो वपुरग्निसात् क्रियत इति न मे मनसि समीचीनमाभाति। अपि च मुग्धे! किं पावकदग्धैः स एव प्रियः प्राप्यते? तैस्तैः शुभैरशुभैर्वा कर्मभिर्भिन्नवर्तिनीसञ्चरिष्णवः सर्वे जन्तवः।

कलहंसः— पान्थ! नायं तस्यैव प्रियस्य प्राप्त्यर्थं न च धर्मार्थं प्रयत्नः, किन्तु क्षत्रियाचारानुचारार्थं प्रियाप्रियनिवृत्त्यर्थं च।

कपिञ्जला— पथिक! कलहंस जो कहता है वही सत्य है।

कलहंस— उस निषधदेश के महाराज विपत्ति में पड़े है ऐसा सुनी है। इसलिए यह देवी (दयमयन्ती) चिता में प्रवेश कर रही है।

नल— बाले! जो तुमको बिना किसी कारण के जंगल में अकेली छोड़ (सक)ता है उसके लिये इस तीनों लोक के नेत्रों के लिये आनन्ददायक शरीर को अग्नि में जला रही हो, यह मेरे मन में उचित प्रतीत नहीं होता है। और भी, मुग्धे! क्या अग्नि में जलाने से वह प्रिय (नल) प्राप्त होगा? (अपने) उन-उन शुभ-अशुभ कर्मों से विपरीत मार्ग पर भ्रमण करने वाले सभी जीव हैं।

कलहंस— पथिक! न तो यह उस प्रिय(नल) की प्राप्ति के लिये और न धर्म प्राप्ति के लिये ही प्रयास कर रही है, किन्तु क्षत्रियधर्म के अनुकूल आचरण करने के लिए और प्रिय के अमङ्गल की शान्ति के लिये।

(१) क एष दुर्मुख आर्यपुत्रं निन्दति? वैदेशिक! नाहमरण्ये पत्या परित्यक्ता, किन्तु स्वयं मार्गतः परिभ्रष्टा।

(२) पथिक! यत् कलहंसः कथयति तत् सत्यम्।

१. ख. ग. चरणा.

नलः- (स्वगतम्) अहो! कौतुकम्! एतामहमरण्ये व्यालानां बलिं कृतवान्। इयं पुनर्ममाप्रियनिवृत्त्यर्थं प्राणान् परित्यजति।

स्वमेकः पररक्षार्थं विनिहन्ति विपत्तिषु।

स्वरक्षार्थं परं त्वन्यश्चित्रं चित्रा मनोगतिः॥७॥

दमयन्ती- (१) कपिञ्जले! उवणेहि हुयासणं जेण चिदं पज्जालेमि।

कपिञ्जला- (२) भट्टिणि! अहं वि हुयासणमणुसरिस्सं।

दमयन्ती- (३) कपिञ्जले! मा एवं भण। तए अंबा संघारियव्वा।

कपिञ्जला- (४) भट्टिणी पुप्फवदी वि तुह मग्गं अणुसरिदुमिच्छदि, परं भट्टा वारेदि।

दमयन्ती- (५) संतं संतं पडिहदममंगलं। णं अंबा तायवुद्धत्तणे चलणसुस्सुसिणी भविस्सदि।

नल- (मन ही मन) ओह, आश्चर्य है! मैंने इसको जंगल में हिंसक जीवों का भोजन बनाया। फिर भी यह मुझ नल के अमङ्गल की शान्ति के लिये प्राण का त्याग करती है।

हृदय की इच्छा भी बड़ी विचित्र है— कोई विपत्ति में पड़े दूसरे की रक्षा के लिए स्वयं को मार डालता है, (तो) कोई अपनी रक्षा के लिए दूसरे को॥७॥

दमयन्ती- कपिञ्जले! अग्नि लाओ, जिससे चिता को प्रज्वलित करूँ।

कपिञ्जला- स्वामिनि! मैं भी अग्नि में प्रवेश करूँगी।

दमयन्ती- कपिञ्जले! ऐसा मत कहो। तुम्हें माता को सांत्वना देनी है।

कपिञ्जला- स्वामिनी पुष्ववती भी तुम्हारे मार्ग का अनुगमन करना चाहती है, किन्तु स्वामी रोक रहे हैं।

दमयन्ती- पाप शान्त हो, अमङ्गल का नाश हो। माता ही तो पिता के बुढ़ापे में चरणों के सेवा करने वाली होंगी।

(१) कपिञ्जले! उपनय हुताशनं येन चितां प्रज्वालयामि।

(२) भर्त्री! अहमपि हुताशनमनुसरिष्यामि।

(३) कपिञ्जले! मैवं भण। त्वयाऽम्बा सन्धारयितव्या।

(४) भर्त्री पुष्ववत्यपि तव मार्गमनुसरितुमिच्छति, परं भर्ता वारयति।

(५) शान्तं शान्तं प्रतिहतममङ्गलम्। नन्वम्बा तातवार्धक्ये चरणशुश्रूषिणी भविष्यति।

कपिञ्जला- (१) भट्टा वि तुह दुक्खेण शोवजीविदो संभावीयदि।

नलः- (स्वगतम्) उपस्थितः सर्वसंहारस्तदतः परं नार्हामि गोपयितुमात्मानम्। (प्रकाशम्) बाले! यदि ते पतिः कुतोऽपि सन्निधीयते, तदा निवर्तसे साहसादस्मात्?

दमयन्ती- (२) पहिय! किं मं उवहसेसि? नत्थि मे इत्तियाइं भागधेयाइं, जेहिं पुणो वि अज्जउत्तं पिच्छामि। कपिंजले! उवणेहि जलणं।

(कपिञ्जला ज्वलनमुपनयति। दमयन्ती चितां प्रज्वालयति)

कलहंसः- देवि! प्रथममहमात्मानं भस्मसात् करोमि।

खरमुखः- (३) नहि नहि अहं पढमं।

मकरिका- (४) चिट्ठंदु सव्वे वि, पढमं अहं चिदाए पविसिस्सं। न सक्केमि तुम्हाण मरणं पिच्छिदुं।

कपिञ्जला- तुम्हारे दुःख के कारण पिता भी थोड़े ही दिन जीवित रहेंगे।

नल- (मन ही मन) सर्वनाश उपस्थित हो गया अतः अब अपने आपको छिपाने में समर्थ नहीं हूँ। (प्रकट में) बाले! यदि तुम्हारा पति यहीं कहीं पास में हो, तो अपने इस दृढ़निश्चय से विरत हो जाओगी?

दमयन्ती- पथिक! मेरा उपहास क्यों करते हो? मेरा इतना बड़ा भाग्य नहीं है जिससे पुनः आर्यपुत्र को देखूँ। कपिञ्जले! अग्नि लाओ।

(कपिञ्जला अग्नि लाती है। दमयन्ती चिता जलाती है)

कलहंस- देवि! पहले मैं स्वयं को भस्म करता हूँ।

खरमुख- नहीं, नहीं पहले मैं।

मकरिका- सभी ठहरें, पहले मैं चिता में प्रवेश करती हूँ। तुम लोगों के मरण को मैं नहीं देख सकती हूँ।

(१) भर्तापि तव दुःखेन स्तोकजीवितः सम्भाव्यते।

(२) पथिक! किं मामुपहससि? न सन्ति ममैतावन्ति भागधेयानि, यैः पुनरप्यार्यपुत्रं पश्यामि। कपिञ्जले! उपनय ज्वलनम्।

(३) नहि नहि अहं प्रथमम्।

(४) तिष्ठन्तु सर्वेऽपि, प्रथममहं चितां प्रवेक्ष्यामि। न शक्नोमि युष्माकं मरणं द्रष्टुम्।

नलः- (स्वगतम्) उक्तं 'भुजगरूपधारिणा तातेन 'यदि ते स्वरूपेण प्रयोजनं भवति तदा मामनुस्मरेः'। (पटं प्रावृत्य स्मरणं नाटयति। पुनरात्मानं विलोक्य) कथं नल एवास्मि जातः।

दमयन्ती-(१) भयवं हुयासण! नमो दे। भयवंतो लोकपाला! कधेहि एदं मह चरिदं परलोगगयस्स अज्जउत्तस्स।

(नेपथ्ये)

हा वत्से! क्व मामेकाकिनं चरमे वयसि परित्यज्य प्रयासि? (२) हा हरिणनयणे! मयंकवयणे! सिरीससोमाले! वत्से! किं अत्तणो मरणेण भीमरहं मारेसि?

दमयन्ती- (आकर्ष्य) (३) नूणं मं वारिदुं तादो अंबा य समागच्छदि, ता लहुं पविसेमि। (चितां प्रदक्षिणीकृत्याधिरोद्धुमिच्छति)

नल- (अपने मन में) सर्परूप को धारण करने वाले पिता ने कहा था 'यदि तुम्हें अपने रूप की आवश्यकता हो; तो मेरा स्मरण करना'। (कपड़े से ढककर स्मरण करने का अभिनय करता है। पुनः अपने आपको देखकर) मैं तो नल रूप वाला ही हो गया हूँ।

दमयन्ती- भगवन् अग्नि! नमस्कार करती हूँ। भगवन् लोकपालो! मेरे इस वृत्तान्त को परलोक गये आर्यपुत्र से कहो।

(नेपथ्य में)

हा पुत्रि! वृद्धा अवस्था में मुझे अकेली छोड़कर कहाँ जाती हो? हा मृगाक्षि! चन्द्रमुखि! पुष्प सदृश कोमल अङ्गोवाली पुत्रि! अपनी मृत्यु के द्वारा अपने पिता भीमरथ को क्यों मारती हो?

दमयन्ती- (सुन करके) निश्चय ही मुझे रोकने के लिये पिता और माता आ रहे हैं, तो शीघ्र प्रवेश करती हूँ (चिता की प्रदक्षिणा करके) चिता में प्रवेश करना चाहती है)।

(१) भगवन् हुताशन! नमस्ते। भगवन्तो लोकपालाः! कथयतैतन्मम चरितं परलोकगतायार्यपुत्राय।

(२) हा! हरिणनयने! मृगाङ्गवदने! शिरीषसुकुमारे! वत्से! किमात्मनो मरणेन भीमरथं मारयसि?

(३) नूनं मां वारयितुं तातोऽम्बा च समागच्छति, तल्लपु प्रविशामि।

१. ख. ग. भुजंग०।

नलः— (ससम्भ्रमं बाहौ गृहीत्वा)

येनाकस्मात् कठिनमनसा भीषणायां कराल-

व्यालानां त्वं वनभुवि हतेनातिथेयीकृतासि।

निर्लज्जात्मा विकलकरुणो विश्वविश्वस्तघाती

पत्याभासः सरलहृदये! देवि! सोऽयं नलोऽस्मि॥८॥

(दमयन्ती प्रत्यभिज्ञाय परिरभ्य चोच्चैःस्वरं रोदिति। कलहंसादयः सर्वे प्रणम्य रुदन्ति)

न प्रेम 'रचितं चित्ते न चाचारः सतां स्मृतः।

त्यजता त्वां वने देवि! मया^२ दारुणमाहितम्॥९॥

यस्तवापि प्रेम्णा न प्रसाद्यते, सोऽहं सर्वथा खलु खलप्रकृतिरस्मि।

न प्रेम नौषधं नाज्ञा न सेवा न गुणो न धीः।

न कुलं न बलं न श्रीर्दुर्जनस्य प्रशान्तये॥१०॥

नल— (वेगपूर्वक दोनों भुजाओं को पकड़ करके)

हे मुग्धे! देवि! जिस कठोर हृदय नीच के द्वारा जंगल में हिंसक जीवों की अतिथि सेवा के लिये तुम छोड़ दी गई, वह लम्पट, दया रहित समस्त विश्वास को तोड़ने वाला पति रूपी छायापुरुष मैं नल हूँ॥८॥

(दमयन्ती पहचान कर आलिङ्गन करके जोर से रोती है। कलहंसादि सभी प्रणाम करके रोते हैं)

हे देवि! तुमको वन में छोड़ते हुए निष्ठुरता को सम्पन्न करने वाले मैंने न तो हृदय में स्नेह का सृजन किया और न ही सज्जनों के आचरण का स्मरण किया॥९॥

जो तुम्हारे प्रेम (स्नेह) से भी प्रसन्न नहीं होता है, वह मैं निश्चय ही नितान्त दुष्ट प्रकृति वाला हूँ। (क्योंकि)

दुर्जन को शान्त करने के लिए न(तो) स्नेह, न औषधि, न आज्ञा, न सेवा, न गुण, न बुद्धि, न वंश, न सामर्थ्य (और) न लक्ष्मी (ही) समर्थ है॥१०॥

१. ख. ग. विहि.। २. ख. ग. महा.।

किञ्च-

छिन्नेषु रावणे तुष्टः शम्भुर्दशसु मूर्द्धसु।

शतेऽपि शिरसां छिन्ने दुर्जनस्तु न तुष्यति।।११।।

कलहंसः- किमिदं विषादमूर्च्छालेनानौचित्यपिच्छलं विपद्यते देवेन। न खलु सतामग्रणीर्निषधाधिपतिः प्रलयेऽपि खलो भवितुमर्हति।

नलः- देव्या अपि दाक्षिण्यमधिमनसमनादधानः कथं नास्मि खलः?

परसम्पत्समुत्कर्षद्वेषो दाक्षिण्यहीनता।

द्वयमेतत् खलत्वस्य प्रथमं प्राणितं स्मृतम्।।१२।।

अलं कृत्वा वा दुष्टचरितस्मरणम्। कथय तावत् केनेदमङ्गल-
मावेदितम्?

कलहंसः- देव! एकेन वैदेशिकेन भस्मकनाम्ना खञ्जकुण्ठेन मुनिना।

और, भगवान् शंकर(तो) रावण के दस सिर कटने पर (ही) प्रसन्न हो गये, किन्तु दुर्जन (तो) सौ सिर के कटने पर भी प्रसन्न नहीं होता है।।११।।

कलहंस- खिन्नताजन्य मूर्च्छा के कारण अनौचित्यपूर्ण यह क्या कह रहे हैं राजन्! निश्चय ही निषधदेश के स्वामी आप सज्जनों में अग्रगण्य हैं, (क्योंकि) आप तो प्रलय काल में भी दुर्जन नहीं हो सकते हैं।

नल- देवी दमयन्ती की शिष्टता को भी अपने हृदय में नहीं धारण करने वाला मैं दुर्जन कैसे नहीं हूँ?

दूसरे की सम्पत्ति की वृद्धि से ईर्ष्या करना (और) उदारता से रहित होना ये दो दुर्जनता के कारण हैं (उक्त दोनों में से) मैंने पहले (अर्थात् शिष्टता को नहीं जानने) का (ही) प्रत्यास्मरण किया।।१२।।

अथवा दुश्चरित का याद करना बेकार है। तो यह कहो (कि) किसने इस अमङ्गल की सूचना दी?

कलहंस- देव! एक परदेशी भस्मक नामवाले लंगड़े और विकलांग मुनि ने।

नलः- (सरोषम्) तं दुरात्मानमिहानयत।

(ततः प्रविशति नियन्त्रितभुजस्तापसः)

(प्रत्यभिज्ञाय साक्षेपम्) आः पाप! स एवासि येनाहमरण्ये प्रतार्य देवीं सन्त्याजितः।

तापसः- नाहमरण्ये जगाम, न च त्वां प्रतारयामास।

नलः- (सरोषम्) अरे! अपसर्प कर्णेजप! आद्यून! ब्रह्मराक्षस! अतिजाल्म! अन्नदावानल! साम्प्रतमपि मां प्रतारयसि? ताडयत भोः! दुरात्मानमेनं कशाभिः।

(प्रविश्य कशापाणयस्तापसं ताडयन्ति)

तापसः- (साक्रन्दमुच्चैःस्वरम्) मा मा ताडयत, सत्यमावेदयामि।

नलः- आवेदय।

तापसः- लम्बोदर एवाहम्। मया विदर्भनिर्वासितः कूबरान्तिकं घोरघोणो नीतः घोरघोणेनैव कपटकैतवं कूबरोऽध्यापितस्ततस्त्वं पराजितः।

नल- (क्रोध के साथ) उस दुष्टात्मा को यहाँ लाओ।

(पश्चात् हाथ बँधे हुए तपस्वी प्रवेश करता है)

(स्मृति का अभिनय करके, आक्षेपपूर्वक)

अरे पापी! तुम वही हो जिसने मुझे वन में ठगकर देवी का परित्याग करवाया।

तापस- न तो मैं जंगल में गया और न ही तुमको ठगा।

नल- (क्रोध के साथ) अरे जासूस पिशुन! औदरिक ब्रह्मपिशाच! कुकर्मी! अन्नदावानल! अभी भी मुझे ठग रहे हो?

अरे मारो, इस दुष्टात्मा को चाबुक से मारो।

(चाबुक लिये प्रवेश करते हैं और तपस्वी को मारते हैं)

तापस- (रोता हुआ जोर से) मत मारो मुझे मत मारो, सत्य बात कहता हूँ।

नल- कहो।

तापस- मैं लम्बोदर ही हूँ, मैंने विदर्भदेश से निकाले गये घोरघोण को कूबर के समीप लाया। घोरघोण ने ही कूबर को द्यूत-क्रीड़ा की शिक्षा दी। पश्चात् (उस कूबर

घोरघोणोपदेशेन च मया त्वमरण्ये दमयन्तीं त्याजितः। इहागत्य
त्वन्मरणप्रवादः कृतः।

नलः— (सरोषम्) अये! शूलामेनं दुरात्मानमारोपयन्तु। यदि वा
तिष्ठतु, घोरघोणेन सहायं व्यापादयिष्यते।

कलहंसः— देव! दृष्टो दुरोदरविनोदविपाकः?

नलः— तुभ्यं शपे परमतो विरतोऽस्मि (तस्मात्)

तस्माद् दुरोदरविनोदकलङ्कपङ्कात्।

यस्मात् प्रवृत्तमतिशायि विषादसाद-

दैन्यापमानघटनापटु नाट्यमेतत्।।१३।।

देवि! कथय तावन्मया त्यक्ता सती वने किमनुभूतवत्यसि?

दमयन्ती—(१) जं मए रन्ने अणुभूदं तं लदापाशच्छेदपेरंतादो
नाडयादो अज्जउत्तेण दिडुं। अणंतरं सत्थवाहेण अयलउरे रिउवन्नस्स पासे
अहं नीदा।

ने) आपको पराजित किया। और घोरघोण की आज्ञा से मैंने आपसे जंगल में दमयन्ती का त्याग करवाया। यहाँ आकर आपके मृत्यु का मिथ्या प्रचार किया।

नल— (क्रोध के साथ) अरे! इस दुष्टात्मा को शूली पर चढ़ा दो। अथवा ठहरो,
घोरघोण के साथ ही मार डालना।

कलहंस— देव! जूए के खेल का परिणाम देख लिया!

नल— तुमको मैं शाप देता हूँ (तथा) आज से उस जूए के खेल के आनन्द से जायमान कलङ्करूपी कीचड़ से अलग हो गया हूँ। जिससे खिन्नताजन्य क्लान्ति से दुर्दशा और अनादर की योजना में कुशल यह नाटक अत्यधिक विस्तार को प्राप्त हुआ।।१३।।

देवि! तो यह कहो कि मेरे द्वारा वन में छोड़ दिये जाने पर तुमने क्या अनुभव किया?

दमयन्ती— मैंने वन में जो अनुभव किया वह तो लता रूपी फन्दे के काटे जाने तक की गई अभिनय-क्रिया से आर्यपुत्र ने देखा ही है। पश्चात् सार्थवाह के द्वारा अचलपुरवासी ऋतुपर्ण के समीप मैं लाई गई।

(१) यन्मयाऽरण्येऽनुभूतं तल्लतापाशच्छेदपर्यन्तान्नाटकाद् आर्यपुत्रेण
दृष्टम्। अनन्तरं सार्थवाहेनाचलपुर ऋतुपर्णस्य पार्श्वेऽहं नीता।

नलः- ततस्ततः।

दमयन्ती-(१) तदो कमेण इध समागदाए मए सुणिदं जधा-
'दधिवन्नस्स सूवगारो सुरियवागं करेदि।' तदो मए चिंतियं 'अज्जउत्तं
विणा न अन्नो सुरियवागविज्जं जाणादि।' अणंतंरं अज्जउत्तपरिक्खणत्थं
नाडयं कारुण कलहंसखरमुह-मयरियाओ पेसिदाओ।

नलः- कलहंस! कथय कथं त्वमत्रायातोऽसि?

कलहंसः- देवीमेकाकिनीं विदभेषु समागतामाकर्ण्य खरमुख-
मकरिकाभ्यां सहाहमिहायातोऽस्मि।

दमयन्ती--(२) पच्छा अज्जउत्तस्स इहागमणत्थं अलियं सयंवरपवादं
कडुय पुरिसो पएसिदो।

नलः- देवि! क्षमस्व मया निर्निमित्तमपाकृतासि।

नल- उसके बाद, उसके बाद।

दमयन्ती- पश्चात् यहाँ आई हुई मैंने धीरे-धीरे जैसा कि 'दधिपर्ण का रसोइया
सूर्य कि किरणों से भोजन बनाता है' सुना तब मैंने विचार किया 'आर्यपुत्र के सिवा
दूसरा सूर्यपाकविधि नहीं जानता है'। इसके बाद आर्यपुत्र की परीक्षा लेने के लिए
नाटक करके कलहंस, खरमुख और मकरिका भेजी गई।

नल- कलहंस! कहो, तुम यहाँ कैसे आये हो?

कलहंस- अकेली देवी का विदभदेश में आगमन सुनकर खरमुख और
मकरिका के साथ यहाँ आया हूँ।

दमयन्ती- पश्चात् आर्यपुत्र को यहाँ आने के लिए स्वयंवर का मिथ्या प्रचार
करके पुरुष को भेजा।

नल- देवि! क्षमा करो, मेरे द्वारा तुम बिना किसी कारण के छोड़ी गई हो।

(१) ततः क्रमेणात्र समागतया मया श्रुतं यथा— 'दधिपर्णस्य सूपकारः
सूर्यपाकं करोति'। ततो मया चिन्तितम् 'आर्यपुत्रं विना नान्यः सूर्यपाकविद्यां
जानाति'। अनन्तरमार्यपुत्रपरीक्षणार्थं नाटकं कृत्वा कलहंस-खरमुख-मकरिकाः
प्रेषिताः।

(२) पश्चादार्यपुत्रस्येहागमनार्थमलीकं स्वयंवरप्रवादं कृत्वा पुरुषः प्रेषितः।

दमयन्ती- (१) मह निमित्तं घोरघोणेन ईदिसमवत्थं णं अज्जउत्तो लंभिदो। ता अहं अज्जउत्तस्स अवराहिणी, न उणो मह अज्जउत्तो।

कलहंसः- साधु देवि! साधु पतिव्रतानामेष एव वाग्विभवः। देवोऽपि देवीमपहाय किमनुभूतवान्?

नलः- देवीमपहाय क्रमेणाहम् 'एहि महापुरुष! त्रायस्व माम्' इति प्रतिमुहुर्व्याहरन्तं दवानलज्वालाजटालवपुषमेकमाशीविषमद्राक्षम्।

सर्वे- (सकौतुकम्) ततस्ततः।

नलः- ततः स दवानलाकृष्टो मां दष्ट्वा विकृतरूपं कृतवान्। देवतारूपं च विधाय 'सोऽहं तव पिता महाराजनिषधस्त्वत्कृपया समागतवान्' इति व्याहरत्।

दमयन्ती-(२) तदो

दमयन्ती- मेरे कारण घोरघोण के द्वारा आर्यपुत्र ने इस अवस्था को प्राप्त किया है।

कलहंस- साधु देवि! साधु, पतिव्रताओं की वाणी का यही धन है। महाराज ने भी देवी को छोड़कर क्या अनुभव किया?

नल- देवी को छोड़कर मैं धीरे से 'पुरुषश्रेष्ठ! आओ, मेरी रक्षा करो'। ऐसा प्रत्येक क्षण बुलाने वाले दावाग्नि की ज्वाला में जटाजूटधारी शरीरवाले एक सर्प को देखा।

सभी- (कौतूहल के साथ) उसके बाद, उसके बाद।

नल- पश्चात् दवानल से निकाला गया वह सर्प मुझे काटकर विकृतरूप वाला बना दिया। देवरूप को धारण करके 'मैं तुम्हारा पिता महाराज निषध हूँ और तुम्हारी कृपा से (यहाँ) आया हूँ' ऐसा कहा।

दमयन्ती- उसके बाद।

(१) मम निमित्तं घोरघोणेन ईदृशीमवस्थां नन्वार्यपुत्रो लम्भितः। तदहमार्यपुत्रस्यापराधिनी, न पुनर्ममार्यपुत्रः।

(२) ततः।

नलः- 'मा भैषीरतः परं द्वादशसु वर्षेषु पुनः प्रियादर्शनं ते भविष्यति' इत्यभिधाय तावत् तिरोऽभूत्। ततोऽहं क्रमेण सूपकारवृत्त्या दधिपर्णाभ्यर्णं स्थितवान्।

(नेपथ्ये)

प्रवर्त्यन्तां मङ्गलानि, प्रसाध्यन्तां मौक्तिकस्वस्तिकैः प्राङ्गणभुवः, प्रवर्त्यन्तां सङ्गीतकानि। ननु मनोरथानामप्यभूमिर्वत्सायाः प्रिया प्रियप्राप्तिरभूत्।

कलहंसः- (ससम्भ्रमम्) कथं विदर्भाधिपतिरितोऽभ्येति?

(ततः प्रविशति पुष्पवत्या सह राजा भीमरथः। सर्वे ससम्भ्रममुत्थाय प्रणमन्ति)

राजा- (नलं प्रति) 'यो दमयन्तीं परिणेष्यति तस्याहं राज्यभ्रंशं करिष्यामि' इति स्वप्रतिज्ञा घोरघोणेन समर्थिता। घोरघोणः पुनः किल कलचुरिपतेर्दमयन्तीपरिणयनमभिलाषुकस्य चित्रसेनस्य मेषमुखनामा प्रणिधिः। अयमपि घोरघोणशिष्यो लम्बोदरश्चित्रसेनस्यैव कोष्ठकाभिधानश्चर एव।

नल- 'बारह वर्ष के बाद पुनः तुम्हें अपनी प्रिया का दर्शन होगा अतः डरो नहीं'। पश्चात् मैं धीरे-धीरे रसोइये का कार्य करता हुआ दधिपर्ण के घर में रहने लगा।

(नेपथ्य में)

मङ्गल ध्वनि करें, मौक्तिक मणि द्वारा स्वस्तिक चिह्न से आङ्गन की भूमि को सजाइये संगीत प्रारम्भ करें, मेरी आशाओंसे बढ़कर भी मनोरथ स्वरूप प्रिय की प्राप्ति प्राण प्यारी पुत्री दमयन्ती को हो गयी।

कलहंस- (वेगपूर्वक) तो क्या विदर्भ देश के स्वामी भीमरथ इधर आ रहे हैं? (पश्चात् पुष्पवती के साथ भीमरथ प्रवेश करता है। सभी शीघ्रता से उठकर प्रणाम करते हैं)

राजा- (नल के प्रति) 'जो दमयन्ती से विवाह करेगा मैं उसका राज्य नाश कर दूँगा', इस प्रकार की अपनी प्रतिज्ञा को घोरघोण ने पूरा किया। पुनः घोरघोण कलचुरिपति के साथ दमयन्ती के विवाह की इच्छा वाला चित्रसेन का मेषमुख नामक गुप्तचर है। घोरघोण का शिष्य यह लम्बोदर भी चित्रसेन का ही कोष्ठक नामक दूत है।

कलहंसः— देव! निषधाधिपते! तेऽमी चित्रसेन-मेषमुख-कोष्ठकाः, यान् मत्तमयूरोद्यानस्थितिर्देवो लेखे दृष्टवान्।

राजा— निषधापते! परिणतवयसो वयं धर्मकर्माहर्हाः। तद् गृहाणेदमस्मदीयं विदर्भाधिराज्यम्।

नलः— देव! अहमात्मीयमेव राज्यं कपटकैतवहारितमादास्ये।

पुष्पवती— (१) वत्स(च्छ)! एसा दमयन्ती पुणो वि तुह समप्पिदा। ता जं ते पडिहादि तं करिज्जासु।

नलः— अहं देव्या दमयन्त्या पतिव्रताव्रतेनैव क्रीतस्तदतः परं मामनुकूलयन्ती देवी मल्लिकां धवलयति, घनसारं सुरभयति, मृगाङ्गं शिशिरयति।

कलहंसः— किमतः परं प्रियतमाधीयते देवस्य?

नलः— कलहंस! अतः परमपि प्रियमस्ति? त्वयैव तावद् देवी प्रथममस्मासु परमानुरागमानीता। भवतैव कुसुमाकरोद्याने संघटिता।

कलहंस— देव! निषधदेश के स्वामि! ये वही चित्रसेन, मेषमुख और कोष्ठक हैं, जिन्हें महाराज ने मत्तमयूर वाले उद्यान में विद्यमान लेख में देखा था।

राजा— निषधदेश के स्वामि! अवस्था के अनुकूल हम धार्मिक अनुष्ठान के योग्य हो गये हैं। अतः हमारे इस विदर्भराज्य को ग्रहण करें।

नल— घूत-क्रीड़ा में हार गये अपने राज्य को ही मैं ग्रहण करूँगा।

पुष्पवती— पुत्र! फिर भी, यह दमयन्ती तुम्हें समर्पित करती हूँ। अतः तुम्हें जो उचित प्रतीत हो वही करना।

नल— मैं तो देवी दमयन्ती के पातिव्रत धर्म से ही खरीद लिया गया हूँ इसलिए मुझे अत्यन्त अनुकूल करती हुई चमेली पुष्प को स्वच्छ बना रही है, कर्पूर को सुगन्धित करती, चन्द्रमा को शीतल करती है।

कलहंस— इसके अतिरिक्त महाराज का कौन सा प्रिय किया जाय।

नल— कलहंस! इसके अतिरिक्त भी प्रिय वस्तु है? आप ही ने देवी का अत्यधिक स्नेह हमारे प्रति किया। आपने ही कुसुमाकर उद्यान में मिलाया। आपने

(१) वत्स! एषा दमयन्ती पुनरपि तुभ्यं समर्पिता। ततो यत् ते प्रतिभाति तत् कुर्याः।

त्वमेवास्मान् नटकपटधारी ज्ञातवान्। किमपरं त्वमेवास्य
दमयन्तीसङ्घटनानाटकस्य सूत्रधारः।

कलहंसः- तथापीदमाशास्यते-

दुरोदरकलङ्कतः कृतविराम चन्द्रोज्ज्वला-
मवाप्य निजसम्पदं पदमचिन्त्यशर्मश्रियः।
यशोभिरनिशं दिशः कुमुदहासभासः सृज-
न्नजातगणनाः समाः परमतः स्वतन्त्रो भव॥१४॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

॥सप्तमोऽङ्कः॥

॥इति नलविलासनाटकम्। कृतिरियं रामचन्द्रस्य१॥

ही नट के कपट वेष को धारण करने वाले हमको पहचाना। अधिक क्या, आप ही दमयन्ती समागम रूपी नाटक के सूत्रधार हैं।

कलहंस- फिर भी यह आशीर्वाद देता हूँ—

धूत-क्रीड़ा के कलङ्क से विरत हो चन्द्रमा के सदृश निर्मल अपनी सम्पत्ति (राज्य) को प्राप्त करके अनिर्वचनीय प्रमोदलक्ष्मी के पद को प्राप्त करें। (तथा) कुमुद-पुष्पवत् अपने यश से निरन्तर दिशाओं को स्वच्छ बनाते हुये अगण्य वर्षों तक स्वतन्त्र होवें॥१४॥

(यह कहकर सभी निकल जाते हैं)

॥सप्तम अङ्क समाप्त॥

इस प्रकार रामचन्द्रसूरि की कृति नलविलास नाटक का हिन्दी अनुवाद समाप्त हुआ।

१. क. संवत् १४८४ वर्षे भाद्रसुदि १० लिखितम्। ख. ग. नाटकं समाप्तं। छ। कृतिरियं श्रीहेमचन्द्रसूरिशिष्यश्रीरामचन्द्रसूरीणां॥छ॥

पद्यानुक्रमणिका

पद्यानि	अङ्कः	पद्यानि	अङ्कः
अकाण्डकोपिनो.	४/७	आगन्तुकोऽनुरागं.	२/१८
अकृताखण्ड.	१/१०	आत्मन्यपत्ये.	१/१३
अखिलानां बिसिनीनां.	२/२४	आपाकपिञ्जर.	१/११
अजल्प्यं जल्पामः.	३/९	आमन्त्रिता वयमतः.	३/४
अत्यन्तकमनीयं.	२/१०	आलावहासपरिरंभणाइं.	३/२१
अथ तीव्रक्षुधा.	६/२०	आस्तां क्षयं किमिह.	३/१
अद्याभूद् भगवान्.	४/२३	आस्तां मर्मपरिज्ञानं.	३/११
अधिकमधिवहन्ती.	४/३	आः! किं भविष्यति.	२/८
अधिका वर्णना.	२/९	आः स्त्रीरत्न! पतिव्रते.	६/१७
अनुभूतं न यद्.	६/७	इतः प्रारभ्यन्ते.	७/५
अपकृत्योपकार्येषु.	७/३	इमौ प्रेङ्खे कर्णौ.	३/२३
अपारे कान्तारे.	६/२२	इह अत्थि घोरघोणो.	२/१६
अप्या समपिओ.	६/९	उत्कर्णयन् वनविहारि.	३/८
अभिनभः प्रसृतै.	३/३	उत्तंसकौतुकनवक्षत.	३/६
अमीभिः संसिक्तै.	३/२७	उन्मीलदलशतपत्र.	४/२२
अयमवनिपतीन्दु.	४/६	उभयाभिमुख्यभाजां.	५/४
अर्वागृष्टितया.	५/७	एकाकिन्यबला.	६/१९
अविदितमर्मा.	३/१७	एगागिणी अहं.	६/१०
अशेषाणां मध्ये.	१/१८	एते निर्झरझात्कृतैः.	५/९
असौ पाखण्डिचाण्डालो.	२/२३	एनामरण्यभुवि.	६/१३
अस्तमयति पुनरुदयति.	५/८	कच्चित् काननदेवताः.	५/१९
अस्याः क्षोणिः	६/१२	कर्णेजपं क्षतमुदो.	३/३०
अहंयूनामहंकारं.	५/६	कल्पान्तकल्प्यमुप.	६/१८
आकुञ्चितैर्विकसितै.	४/१	कविः काव्ये रामः.	१/२
आक्रन्दः श्रुतिदुर्भगः.	७/४	कान्तास्तवाहमधरीकृत.	३/२९

पद्यानि	अङ्कः	पद्यानि	अङ्कः
कामं कामं कुसुम.	१/२१	दासस्तस्य.	१/१९
कामं शाट्यव्यपोहेन.	२/१२	दुरोदरकलङ्कतः.	७/१४
कार्कश्यभूः स्तनतटी.	२/६	दुष्टसङ्गः कुमारस्य.	२/२०
काव्यं चेत् सरसं.	२/२	दृष्टे! द्रष्टुमितिः स्पृहां.	३/२२
काश्मीरेश्वर एष.	४/८	देवीनीविच्छिदालोल!.	५/१५
कुचकलशयोर्वृत्तं.	३/१९	देवीं वाचमविक्रेयां.	१/१४
कृतमिषशतं यद्.	४/२	न गीतशास्त्रमर्मज्ञा.	३/१०
कृत्याकृत्यविदोऽपि.	५/१	न तथा वृत्तवैचित्री.	६/२३
कौशाम्बीपतिरयमु.	४/९	न प्रेम नाप्यभिजनं.	६/३
क्व तद् भ्रूविक्षेप.	५/११	न प्रेम नौषधं.	७/१०
घनं प्रेमग्रन्थिं.	५/१३	न प्रेम रचितं.	७/९
चन्द्रोद्यानसरांसि.	३/२४	नयननलिनपेयं.	४/२१
चलकमलविलासा.	२/५	नलं रन्तुं चेतस्तरलमनलं.	७/६
चापल्यं दृशि शाश्वतं.	४/१४	न स मन्त्रो.	१/९
चित्रं त्रस्तैणशावाक्षि.	३/२५	नास्मार्षं नयमस्मि.	६/२
छिन्नेषु रावणे.	७/११	निद्राच्छेदे क्व दयित!.	५/२०
जनः प्रज्ञाप्राप्तं.	१/७	निर्मायो यः कृपालुर्यः.	२/१३
जन्मिनां पूर्वजन्माप्त.	२/१९	परसम्पत्समुत्कर्षद्वेषो.	७/१२
जयति स पुरुषविशेषो.	६/५	परिमलभृतो वाताः.	३/२
ताराविलासरुचिरं.	४/१८	प्रकर्षपदमन्तिमं.	४/१९
तावन्मतिः स्फुरति.	५/२	प्रबन्धा इक्षुवत्.	१/४
तुभ्यं शपे परमतो.	७/१३	प्रबन्धानाधातुं.	१/३
त्यक्ता यद् विपिने.	७/२	प्रविशन्तीं कैरविणीं	६/२४
त्रैलोक्योदरवर्ति.	४/१७	प्रियतमावदनेन्दुविलोकितैः.	३/५
त्वया तावत् पाणिः.	५/१४	प्रेङ्गाविघट्टनरुषा.	३/१२
दर्पाध्मातविरोधि.	४/६	भजन्ते कार्याणि.	२/२२
दात्यूहकुक्कुभ.	१/१२	भयतरलकुरङ्गीनेत्र.	३/१६

पद्यानि	अङ्कः	पद्यानि	अङ्कः
भ्रातश्चूत! वयस्य केसर!०	५/१७	वैदर्भीरीतिमहं.	१/१
मञ्जीराणि रणन्ति.	२/३	शान्तात्माऽपि खलः०	१/२०
मांसदृशो गुणदोषौ.	३/२०	शुभा वा लोकस्य.	२/२१
मातः कुञ्जरपत्नि!०	६/८	शृङ्गारसौरभरहस्यजुषां.	३/१४
मातः प्रसीद वसुधे!०	६/१५	शौण्डीरेषु भयोज्ज्वलेषु.	२/१४
मां वा प्रीणय नैषधस्य.	६/२१	श्रुतीनां पीयूषं.	१/६
मा विषीद कृतं बाष्पैः०	५/५	श्रुते! बाधिर्यं त्वं कलय.	६/११
मुक्ताहार! विहारमातनु.	६/१४	संयोगे श्रीर्मदो.	१/२२
मुग्धाङ्गनानयनपात.	३/२८	स एष सुभगाग्रणीः०	४/११
यथा मुख्यस्य सौन्दर्यं.	२/१५	सखीशङ्काशङ्कु.	३/१८
यथा यथा प्रतापाग्निः०	४/१२	सङ्ख्यायामिव.	२/५
यदि वा द्यूतकारस्य.	५/१६	समेऽपि देहदेशत्वे.	१/१५
यस्यां मृगीदृशिदृशो.	४/१०	सर्वथा कैतवं निन्द्यं.	२/११
यात्रायां किल यस्य.	४/१६	सर्वेषामपि सन्ति.	३/१३
येनाकस्मात् कठिनमनसा.	७/८	सहस्रांशोर्धाम्नां दिशि.	७/१
राज्यं हारितवानहं.	६/१	सहि! चक्कवायदइए!०	६/६
रेवासीकरवारिवेपथुवपुः०	४/१५	सान्निध्यात् पितुरानतं.	४/४
लंबत्यणी ति नामं.	२/१७	सुस्थे हृदि सुधासिक्तं.	५/१०
लावण्यपुण्य.	१/१७	सौदामिनीपरिष्वङ्गं.	३/३१
वक्त्रं चन्द्रो.	१/१६	स्थिरं कृत्वा चेतः०	४/२०
वक्त्रेन्दुः स्मितमातनोद.	३/२६	स्पृशति न मणिज्योत्सना.	५/१८
वदनशशिनो.	२/७	स्पृहां लोकः काव्ये	१/८
विटचेष्टया यया किल.	३/१५	स्फुरति तिमिरे घूकव्राते.	६/४
विन्यस्याभिनवोदये.	४/२४	स्फुरन्त्युपायाः०	५/३
विश्वस्य श्रवणेन्द्रियं.	२/४	स्मेराक्षि! क्षितिचक्र.	४/५
विश्वासघातिनमकृत्यकरं.	५/१२	स्वमेकः पररक्षार्थं.	७/७
वैदर्भीतनुवर्णनां.	२/१	स्विद्यन्नितम्बभरपूर.	३/७
		हा देव दिणोसर!०	६/१६

हमारे महत्वपूर्ण प्रकाशन

1. Studies in Jain Philosophy — Dr. Nathmal Tatia Rs. 100.00
2. Jain Temples of Western India — Dr. Harihar Singh Rs. 200.00
3. Jain Epistemology — I. C. Shastri Rs. 150.00
4. Concept of Panchashila in Indian Thought —
Dr. Kamala Jain Rs. 50.00
5. Concept of Matter in Jain Philosophy —
Dr. J. C. Sikdar Rs. 150.00
6. Jaina Theory of Reality — Dr. J. C. Sikdar Rs. 150.00
7. Jaina Perspective in Philosophy and Religion —
Dr. Ramjee Singh Rs. 100.00
8. Aspects of Jainology, Vol.1 to 5 (Complete Set) Rs. 1100.00
9. An Introduction to Jaina Sadhana —
Dr. Sagarmal Jain Rs. 40.00
10. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास (सात खण्ड) सम्पूर्ण सेट Rs. 560.00
11. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास (दो खण्ड) Rs. 340.00
12. जैन प्रतिमा विज्ञान - डॉ० मारुतिनन्दन तिवारी Rs. 120.00
13. जैन महापुराण - डॉ० कुमुद गिरि Rs. 150.00
14. वज्जालग (हिन्दी अनुवाद सहित) - पं० विश्वनाथ पाठक Rs. 80.00
15. धर्म का मर्म - प्रो० सागरमल जैन Rs. 20.00
16. प्राकृत हिन्दी कोश - सम्पादक डॉ० के० आर० चन्द्र Rs. 120.00
17. स्याद्वाद और सप्तभंगी नय - डॉ० भिखारी राम यादव Rs. 70.00
18. जैन धर्म की प्रमुख साध्वियाँ एवं महिलाएँ -
डॉ० हीराबाई बोरदिया Rs. 50.00
19. मध्यकालीन राजस्थान में जैन धर्म -
डॉ० (श्रीमती) राजेश जैन Rs. 160.00
20. जैन कर्म-सिद्धान्त का उद्भव एवं विकास -
डॉ० रवीन्द्रनाथ मिश्र Rs. 100.00
21. महावीर निर्वाणभूमि पावा : एक विमर्श -
भगवन्तीप्रसाद खेतान Rs. 60.00
22. गाथासप्तशती (हिन्दी अनुवाद सहित) -
पं० विश्वनाथ पाठक Rs. 60.00
23. सागर जैन-विद्या भारती भाग १, २
(प्रो० सागरमल जैन के लेखों का संकलन) Rs. 200.00
24. मूलाचार का समीक्षात्मक अध्ययन - डॉ० फूलचन्द जैन Rs. 80.00

पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी - ५